संस्कृतविद्यापीठग्रन्थमालायाः अष्टसप्ततितमं पुष्पम्

पारिभद्रीय-महामहोपाध्याय-जीमूतवाहनकृतः

दायभागः

अनुवादिका सम्पादिका च
प्रो॰ नीना डोगरा



श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली-110016

प्रकाशकः
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
कुतुब सांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

आई.एस.बी.एन : 81-87987-52-9

प्रकाशनवर्षः - 2012

मूल्यम् : 270/- ₹

मुद्रकः
अमरप्रिंटिंगप्रैसः
देहली-११०००९
दूरभाषः : 9871699565, 8802451208

भूमिका

विदन्त्येव विज्ञा यद् विश्वस्य ज्ञान-विज्ञान-विमर्शपरम्परासु अतिमहदवदानं वरीवर्त्यते भारतीयप्रज्ञायाः। अस्या प्रज्ञायाः परमप्रकर्षं विभावयामः अस्माकं शास्त्रपरम्परासु। एताश्च शास्त्रपरम्परा आवेदेभ्यः प्रसृता अद्यावधि विकासं यान्तीति न संशीतिः। विद्- ज्ञाने, विद्- सत्तायाम्, विद्लृ लाभे तथा विद् - विचारणे इति धातुचतुष्टयविनिष्पन्नो वेदशब्दः चतुरस्रतां ज्ञानप्रवाहस्य द्योतयति। विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, अथवा विन्दन्ते लभन्ते, विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुजाः सत्यविद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः- इति ऋषिदयोनन्दोक्तेः। वेद्यते ज्ञायते अनेनेति वेदः इत्युक्त्यापि वेदस्य ज्ञानस्रोतस्त्वं सिध्यति।

अथैतेषां वेदानाम् अतिप्राचीनकालात् शाखा-चरण-परिषद्भिः संरक्षणं प्रसारश्च समजायत। तथैव शाखा-चरण-परिषत्सु शास्त्रपरम्पराऽपि प्रसारं विकासं चापेदे। संहितानां शाखास्तासु तासु गुरुशिष्यपरम्परासु अभ्यस्ताः। चरणशब्दः शाखा-विशेषाध्ययनपरैकतापन्नजनसङ्घवाची' इति जगद्धरोक्तेः शाखाविशेषमधीयानां जनानां समाजश्चरण इति न्यगद्यत। तथा चरणानां सङ्घा एव परिषदिति प्रोक्ताः। परिषत्सु विज्ञाः पण्डिता अवश्यं भवेयुरिति व्यवस्था आसीत्। दर्शन-तर्क-धर्मशास्त्रादिष्वबाह्या एकविंशतिर्विप्राः प्रत्येकं परिषदि स्युरिति मनोः याज्ञवल्क्यस्य च लक्षणात्। परिषदि अभ्यस्ताः ग्रन्थाः पार्षदा इत्यहिताः।

अस्या ज्ञानपरम्परायाः महिमा उपनिषत्सु परां काष्ठां ययौ। उपनिषत्सु वेदप्रतिपाद्यब्रह्मविद्यायाः पुनः सन्धानं विहितम्, तत्कृते च गुरुशिष्यपरम्पराप्रथिता काऽपि संवादशैली ऋषिभिराविष्कृता। इयं शैली दार्शनिकीं पद्धतिमेव प्रथयति। प्रश्नोऽनुप्रश्नोऽनतिप्रश्ननिवारणं व्याख्याऽनुव्याख्या दृष्टान्त आख्यायिकोर्ध्वप्रवचनं चेत्यष्टावस्याः अङ्गानि सन्ति।

संस्कृतविद्यापीठग्रन्थमालाया अष्टसप्ततितमं पुष्पम्

पारिभद्रीय–महामहोपाध्याय–जीमूतवाहनकृतः

दायभागः

प्रधानसम्पादकः
प्रो. राधावल्लभत्रिपाठी
कुलपतिः

अनुवादिका सम्पादिका च
प्रो. नीना डोगरा



श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली

प्रकाशकः
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
कुतुब सांस्थानिकक्षेत्रम्
नवदेहली-११००१६

आई.एस.बी.एन : 81-87987-52-9

प्रकाशनवर्षः - 2012

मूल्यम् : 270/- ₹

मुद्रकः
अमरप्रिंटिंगप्रैसः
देहली-११०००९
दूरभाषः : 9871699565, 8802451208

भूमिका

विदन्त्येव विज्ञा यद् विश्वस्य ज्ञान-विज्ञान-विमर्शपरम्परासु अतिमहदवदानं वरीवर्त्यते भारतीयप्रज्ञायाः। अस्या प्रज्ञायाः परमप्रकर्षं विभावयामः अस्माकं शास्त्रपरम्परासु। एताश्च शास्त्रपरम्परा आवेदेभ्यः प्रसृता अद्यावधि विकासं यान्तीति न संशीतिः। विद्- ज्ञाने, विद्- सत्तायाम्, विद्लृ लाभे तथा विद् - विचारणे इति धातुचतुष्टयविनिष्पन्नो वेदशब्दः चतुरस्रतां ज्ञानप्रवाहस्य द्योतयति। विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, अथवा विन्दन्ते लभन्ते, विन्दन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुजाः सत्यविद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः- इति ऋषिदयोनन्दोक्तेः। वेद्यते ज्ञायते अनेनेति वेदः इत्युक्त्यापि वेदस्य ज्ञानस्रोतस्त्वं सिध्यति।

अथैतेषां वेदानाम् अतिप्राचीनकालात् शाखा-चरण-परिषद्भिः संरक्षणं प्रसारश्च समजायत। तथैव शाखा-चरण-परिषत्सु शास्त्रपरम्पराऽपि प्रसारं विकासं चापेदे। संहितानां शाखास्तासु तासु गुरुशिष्यपरम्परासु अभ्यस्ताः। चरणशब्दः शाखा-विशेषाध्ययनपरैकतापन्नजनसङ्घवाची' इति जगद्धरोक्तेः शाखाविशेषमधीयानां जनानां समाजश्चरण इति न्यगद्यत। तथा चरणानां सङ्घा एव परिषदिति प्रोक्ताः। परिषत्सु विज्ञाः पण्डिता अवश्यं भवेयुरिति व्यवस्था आसीत्। दर्शन-तर्क-धर्मशास्त्रादिष्वबाह्या एकविंशतिर्विप्राः प्रत्येकं परिषदि स्युरिति मनोः याज्ञवल्क्यस्य च लक्षणात्। परिषदि अभ्यस्ताः ग्रन्थाः पार्षदा इत्यहिताः।

अस्या ज्ञानपरम्परायाः महिमा उपनिषत्सु परां काष्ठां ययौ। उपनिषत्सु वेदप्रतिपाद्यब्रह्मविद्यायाः पुनः सन्धानं विहितम्, तत्कृते च गुरुशिष्यपरम्पराप्रथिता काऽपि संवादशैली ऋषिभिराविष्कृता। इयं शैली दार्शनिकीं पद्धतिमेव प्रथयति। प्रश्नोऽनुप्रश्नोऽनतिप्रश्ननिवारणं व्याख्याऽनुव्याख्या दृष्टान्त आख्यायिकोर्ध्वप्रवचनं चेत्यष्टावस्याः अङ्गानि सन्ति।

आवेदेभ्यः प्रसृतायामस्यां परम्परायां नाना ज्ञानधाराः परस्परं सङ्गच्छन्ते संवदन्ति च। तथाहि - षड्वेदाङ्गानि, आस्तिकनास्तिकदर्शनसम्बद्धाः परःसहस्रं ग्रन्थाः आयुर्वेदाद्युपवेदग्रन्थास्तथा च काव्यशास्त्रललितकलाविषयकं वा साहित्यमिति सर्वथा निरवधिर्वरीवर्ति सुरसरस्वत्याः साहित्यभाण्डागारः। धर्मशास्त्रग्रन्थानामस्मिन् साहित्यराशौ विद्यते अनितरसाधारणं महत्त्वम्। न केवलं मनु-याज्ञवल्क्य-पाराशर-प्रभृतीनां शताधिकाः स्मृतिग्रन्था धर्मशास्त्राणि वा, अपितु तास्ताः स्मृतीराश्रित्य विरचिताष्टीकाग्रन्था अपि विविधानुष्ठान-सामाजिकविधान-प्रायश्चित्त-दायभागादिव्यवस्थासु नवीनसंविधानं व्यवस्थापयन्तो विद्यन्ते। तेषु मिताक्षराकारो जीमूतवाहनो सविशेषं दायभागविषये नवीनं विवेचयति। लोकोपकारि स्वतन्त्रं नवीनं चास्य चिन्तनं स्त्रीधनदायादिविषये विशिष्य संवेदनाप्रवणं वर्तते। अथ चायं मनीषी मीमांसादर्शनगतानाम् अनुषङ्गप्रभृतिसिद्धान्तानामत्यन्तं तर्कसम्मतं समीचीनमुपयोगं विधत्ते स्वकीये प्रतिपादने। एतस्य दायभागग्रन्थं सम्यक् सम्पाद्य विद्यापीठग्रन्थमालायां प्रकाशनाय दत्तवतीभ्यो नीनाडोगरामहाभागाभ्यः साधुवादाः। गरीयानयं ग्रन्थो भारतीयपरम्पराणां प्रचाराय अभ्युत्थानाय उपकारकः स्यादित्याशासे। एतत्प्रकाशनसमायोजनाय विद्यापीठस्य शोधप्रकाशनविभागाय सम्यङ् मुद्रणाय च मुद्रकायापि साधुवादान् वितरामः।

राधावल्लभः त्रिपाठी

भूमिका

भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है वह धर्म-श्रुति, स्मृति, सदाचार, आत्मतुष्टि आदि प्रमाणों से सिद्ध है। इस विषय का विशेषरूप से धर्मसूत्रों में विवेचन है। श्रुति, स्मृति, वृत्ति, व्याख्या, उपव्याख्या तथा निबन्ध ग्रन्थों से धर्मशास्त्र का बृहत् विशालकाय होने के कारण यह महान् दुरूह विषय है। धर्म शब्द की निष्पत्ति धृ धृति से हुई है जिसका सामान्य धर्म है– **धरतीति धर्मः अर्थात् यः धारयति अथवा येन विश्वमिदं धृतं रक्षितं स धर्मः।** याज्ञवल्क्य महर्षि ने धर्म के चौदह स्थान माने हैं **तद्यथा पुराणं न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य चतुर्दशा।** याज्ञवलक्य 1/3

इस प्रकार वेदशास्त्र का अध्ययन धर्मकोटि में माना जाता है। वैशेषिक दर्शनानुसार **'यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः सः धर्मः' ''धर्मशास्त्र से अभिप्राय–धर्मस्य शास्त्रम्"** अर्थात् **''शास्+ष्ट्रन्-शिष्यतेऽनेन इति शास्त्रम्''** जिसके बहुत से अर्थ हैं यथा–आज्ञा, समादेश, नियम, विधि, वेदधर्मशास्त्रग्रन्थ, विद्याविभाग, विज्ञानादि। वस्तुतः यह प्राचीन विधिशास्त्र ही है।

धर्मशास्त्र में मुख्यतः विषय सामग्री को तीन भागों में बांट सकते हैं–आचार भाग, व्यवहार भाग एवं प्रायश्चित भाग। जहाँ पर वर्ण धर्म, आश्रमधर्म, वर्णाश्रमधर्म एवं साधारण धर्म की चर्चा की गई है वह आचार भाग है। जहाँ पर गुण धर्म की चर्चा है वह व्यवहार भाग है और जहाँ पर निमित्त धर्म की चर्चा है वह प्रायश्चित भाग है।

गुण धर्म के अन्तर्गत राजा के राज्याभिषेक की चर्चा की गई है। प्रजापालन उसका परम धर्म बताया है। व्यवहार का अवलोकन करना राजा का प्रमुख धर्म है? व्यवहार विधि के अन्तर्गत अष्टादश व्यवहार पदों की गणना की गई है। इनमें से एक व्यवहार पद दाय भाग है। दायभाग का सामान्य अर्थ सम्पत्ति का विभाजन है। इससे सम्बन्धित

अनेक विद्वानों के अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें दायभाग की चर्चा की गई है तद्यथा जीमूतवाहन, विज्ञानेश्वर लक्ष्मीधर, शूलपाणि, वाचस्पतिमिश्र, श्रीनाथ आचार्य चूडामणि, श्रीकर, रघुनन्दन, मिसरुमिश्र, वरदराजादि।

प्रस्तुत ग्रन्थ में जीमूतवाहन विरचित दायभाग पुस्तक की चर्चा की जाएगी। जैसा कि हम सब जानते हैं कि दायभाग व्यवहार पद में दो मुख्य विषयों–विभाजन एवं दाय का निरूपण किया गया है। लगभग एक सहस्त्रवर्षों से दो सम्प्रदाय प्रसिद्ध रहे हैं जो मिताक्षरा एवं दायभाग संज्ञाओं से द्योतित हो रहे हैं क्योंकि इन नामों वाले दो ग्रन्थों ने ही प्रमुखता ग्रहण की। दायभाग का प्रचलन बंगाल में रहा और भारत के अन्य भागों में मिताक्षरा का प्रभाव रहा है।

बंगाल के धर्मशास्त्रकारों में से एक धर्मशास्त्रकार जीमूतवाहन हैं। इनके तीन ज्ञात ग्रन्थ प्रकाशित हैं यथा–कालविवेक, व्यवहारमातृका एवं दायभाग। ये तीनों ग्रन्थ धर्मरत्न नाम वाले एक बृहद ग्रन्थ के तीन अंग मात्र हैं।

दायभाग नामक ग्रन्थ का हिन्दू कानूनों में विशेषतः रिक्थ, विभाजन, स्त्रीधन आदि में बहुत अधिक योगदान है। विधिवेत्ता व्यक्तियों के लिए यह बहुत अधिक उपयोगी ग्रन्थ है। बंगाल तथा वहां जहां मिताक्षरा का प्रभाव नहीं है, इन विषयों में दायभाग ही एकमात्र प्रमाण माना जाता रहा है।

'दायभाग' ग्रन्थ की चर्चा से पूर्व इसके रचयिता जीमूतवाहन के विषय एवं काल निर्धारण की संक्षेप में चर्चा करना आवश्यक है।

जीमूतवाहन ने अपनी प्रतिभा के आधार पर बंगाल के नए सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित किया जो कि दायभाग समुदाय के नाम से विख्यात हुआ। उन्होंने प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया है कि दायभाग सम्बन्धी उनका विवेचन मन्वादिशास्त्रकारों के अनुसार है।

जीमूतवाहन सम्भ्रान्त एवं प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न हुए थे। एडुमित्र की कुल कारिका से ज्ञात होता है कि जीमूतवाहन भट्टनारायण की सातवीं पीढ़ी के थे। भट्टनारायण की वंशावली में क्रम से बटु, मणिभद्र, धनञ्जय, विधु, हल एवं चतुर्भुज का परिचय प्राप्त होता है।

'जीमूतवाहन के पिता चतुर्भुज, पितामह हल तथा प्रपितामह विधु थे और उनके भाई का नाम बिल्वमंगल था।[1] जीमूतवाहन कुशाग्र बुद्धि, वेद वेदांग के सूक्ष्मवेत्ता तथा विभिन्न विषयों में निष्णात थे।[2]

जीमूतवाहन के वैयक्तिक जीवन के विषय में बहुत अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती इनके ग्रन्थों की पुष्पिका में इन्हें "पारिभद्रीय[3] महामहोपाध्याय" कहा गया है। व्यवहरमातृका तथा दायभाग[4] के अन्तिम अध्याय से भी यही समर्थित होता है कि ये पारिभद्र कुल में उत्पन्न हुए। ऐसा भी दृष्टिगत होता है कि ये परिहल या परिगार्ह के राढ़ीय ब्राह्मणों में यह कुल अभी तक विद्यमान है।[5] गोपालचन्द्र सरकार ने जीमूतवाहन का निवास स्थान पारिग्राम माना है। यह ग्राम बर्दवान जिले के अन्तर्गत गुसरकर स्टेशन से पांच मील दूर उत्तर पूर्व में अजय नदी के दक्षिणीय तट पर स्थित है।[6] श्रीदत्त और हेमाद्रि ने-परिभद्र' शब्द को 'फरहद' एवं 'निम्ब' के रूप में प्रसिद्ध माना है। परिभद्र के विषय में ऐसा भी मत है कि संभवत: यह पद वृक्ष विशेष के नाम से ग्राम के रूप में प्रयुक्त होता हुआ उनके कुल के साथ सम्बन्धित हो गया।[7]

कतिपय विद्वानों की धारणा है कि जीमूतवाहन राढ़ा के निवासी थे।[8] कालविवेक के एक प्रसंग से ज्ञात होता है कि भाद्रपद के चार दिन अवशिष्ट रहने पर उज्जयिनी में अगस्त्य तारे का उदय होता है और राढ़ा में भाद्रपद के सात दिन अवशिष्ट रहने पर अगस्त्य का उदय होता है।[9]

---

1. शण्डिल्यगोत्र....चतुर्भुजसुतावुभौ।। दायतत्त्व की भूमिका, पृ. 42
2. तस्मिन् काले वङ्गदेश..............महाव्रत:।। दायतत्व की भूमिका
3. पारिभद्रकुलोद्भूत: श्रीमान्जीमूतवाहन:। विदुषां परितोषाय निर्ममे न्यायमातृकाम्।।
   Hist. of Dh. Vol. I, Pt. II, p. 702
4. परिभद्रकुलोद्भूत: श्रीमान् जीमूतवाहन:।
   दायभागं चकारेमं विदुषां संशयच्छिदे।। -दायभाग 15/3
5. Hist. of Dh. Vol. I, Pt. II, p. 707
6. दायतत्त्व भूमिका, पृ. 43
7. JASB Vol. XI, 1915, p. 320
8. Hist. of Dh., Vol. I, pT. II, pp. 707-708
9. कालविवेक, पृ. 290-91

ग्रन्थकार ने इस प्रसंग में राढ़ा और उज्जयिनी में जो विषमता दिखलाई है उससे प्रतीत होता है कि वह अपने निवास स्थान (राढ़ा) से गणना किया करता था।[1]

जीमूतवाहन की तिथि के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन ही है। इनका काल 11वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक का माना जा सकता है। जीमूतवाहन ने धारेश्वर भोजदेव एवं गोदिन्दराज का उल्लेख किया है, अतः वे 11वीं शताब्दी के पूर्व नहीं रखे जा सकते हैं। इसी प्रकार उनके उद्धरण शूलपाणि, वाचस्पति मिश्र एवं रघुनन्दन की कृतियों में पाए जाते हैं, अतः वे 15वीं शती के मध्यभाग के बाद नहीं जा सकते। कालविवेक की एक हस्तलिखित प्रति में घटकसिंह नामक व्यक्ति के पुत्र की कुण्डली है जिस पर शक संवत् 1417 (अर्थात् 1495 ई.) अंकित है। अतः जीमूतवाहन का काल 1400 ई. के बाद का नहीं माना जा सकता है। कालविवेक की कालचर्चा करते हुए जीमूतवाहन ने एक स्थान पर 1091-1092 ई. की गणना की है। लेखक को समीप के काल की चर्चा और गणना ही सुविधाजनक लगती है। अतः जीमूताहन 1090 तथा 1130 के मध्य में हुए होंगे क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि 12वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी तक किसी भी धर्मशास्त्रकार ने जीमूतवान का नाम नहीं लिया है। हाललता, कुल्लूक के भाष्य आदि ने उनकी कहीं भी चर्चा नहीं की है। विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जीमूतवाहन ने मिताक्षरा की आलोचना की है। इससे यह कहा जा सकता है कि जीमूतवाहन मिताक्षरा के बाद तो आए, किन्तु उनकी तिथि की मध्य कड़ी क्या है यह कहना कठिन है। जीमूतवाहन विरचित दाय भाग ग्रन्थ में निर्दिष्ट विधिभाग का व्यापक प्रभाव आज भी हिन्दू विधि व्यवस्था पर देखा जा सकता है।

इस ग्रन्थ में पन्द्रह अध्याय हैं। यह ग्रन्थ आचार्य की कक्षाओं के पाठ्यक्रम में लगा हुआ है। मूल ग्रन्थ यद्यपि संस्कृत भाषा में उपलब्ध है तथापि इसका कहीं पर भी हिन्दी अनुवाद उपलब्ध नहीं है। अतः छात्रों की कठिनाई को देखते हुए मैंने बहुत समय पूर्व हिन्दी अनुवाद

---

1. JASB Vol XI, 1915, p. 321

करने का संकल्प कर लिया था और आज अथक परिश्रम के बाद मैं पाठकों के समक्ष (हिन्दी अनुवाद) प्रस्तुत कर रही हूँ। हिन्दी अनुवाद के साथ-साथ कोलब्रुक के अंग्रेजी अनुवाद को भी पढ़ने का अवसर प्राप्त होगा। इसमें केवल छात्र वर्ग ही लाभान्वित नहीं होंगे अपितु हमारे विधिशास्त्र के अध्येताओं के लिए भी उपयोगी होगा और इसे पुस्तकालयों के साथ-साथ कानून के सामान्य पाठक भी खरीदेंगे, ऐसी आशा है।

संक्षेप में दायभाग विषय की चर्चा की जाती है जिससे पाठक सरलतापूर्वक विषय को समझ सकें यथा-

प्रथम अध्याय में दाय एवं विभाग की परिभाषा प्रस्तुत की गई है। उन्होंने दाय शब्द की व्युत्पत्ति 'दा' धातु से बताई है अर्थात् जो दिया जाता है वह दाय है किन्तु दाय में 'देना' क्रिया गौण है क्योंकि मृतकादि स्वयं स्वत्व का त्याग नहीं कर सकते। अतः यहाँ मुख्य बात है स्वत्व की निवृत्ति एवं पर स्वत्व की उत्पत्ति। स्वत्व की निवृत्ति कई प्रकार से हो सकती है जैसे मृत, संन्यासी एवं पतित हाने पर। "'दीयत' इति **व्युत्पत्त्या दाय शब्दः ददाति प्रयोगश्च गौणः, मृतप्रव्रजितादिस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्तिफलसाम्यात् न तु मृतादीनां तत्र त्यागोऽस्ति।**" दा. भा. 1/4 इसी प्रकार विभाग की परिभाषा के प्रसंग में जीमूतवाहन ने कहा है कि विशेष रूप से विभक्त करना या स्वत्व का बोधन करना ही विभाग कहलाता है।

विशेषेण भजनम्, स्वत्वज्ञापनं वा विभागः। दा. भा. 1/9

इसी अध्याय के अन्त में उन्होंने पितृधन विभाग के दो काल बताए हैं-

(1) पिता के समाज से पतित होने निस्पृह होने, मर जाने पर जब सम्पत्ति पर स्वत्व समाप्त हो गया हो।

(2) स्वत्व होने पर उसकी इच्छा से सम्पत्ति का विभाजन। **तस्मात् पतितत्वनिस्पृहत्वोपरमैः स्वत्वापगम इत्येकः कालः, अपरश्च सति स्वत्वे तदिच्छात इति कालद्वयमेव युक्तम्।** दा.भा. 1/44

द्वितीय अध्याय में पितामहधन विभाजन के काल एवं विधि का

निरूपण किया गया है। जीमूतवाहन के अनुसार पितामह धन विभाजन का एक काल माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् है और दूसरा काल वह है जब माता के रजोधर्म से निवृत्त होने पर पिता की इच्छा होती है–

तस्मात् पितामहादिधनस्यापि पित्रोरभाव इत्येको विभागकालः। तथा मातुर्निवृत्ते रजसि पितुरिच्छात इत्यपरः। दा.भाग. 2/7

पितामहधन के विभाजन की विधि में दो सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं–

(1) पितामहधन में पिता (पुत्र) पुत्र (पौत्र) का समान विभाजन नहीं होता अपितु पितामह धन का विभाजन करते हुए पिता स्वयं दो भाग प्राप्त करता है।

(2) पितामह धन का पिता अपनी इच्छा से पुत्रों में न्यून या अधिक भाग नहीं कर सकता।

तृतीय अध्याय में सवर्ण पुत्रों के विभाजन की विधि बताई गई है। जीमूतवाहन ने माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् सवर्णपुत्रों के विभाजन के सम्बन्ध में दो विकल्प दिए हैं–(1) समविभाजन अथवा (2) उद्धार विभाजन।

"इदानीं सवर्णभ्रातृणां विभागः, विशोद्धारिपूर्वको वा, सम एव वेति विकल्प।" दा.भा. 3/24

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत तीन परिच्छेद हैं–

प्रथम परिच्छेद में स्त्रीधन के स्वरूप का विवेचन करते हुए बताया है कि अध्याग्नि (विवाह के समय अग्नि के समक्ष दिया गया धन) अध्यावाहनिक (पतिगृह जाते समय वधू को दिया गया द्रव्य) प्रीतिदत्त, भाई-माता और पिता द्वारा दिया गया द्रव्य स्त्रीधन कहलाता है।

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तञ्च प्रीतित स्त्रियैः।
भ्रातृ-मातृ-पितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्॥

मनुस्मृति 9/194 दा.भा. 4/1/4

इसके अतिरिक्त अलग-अलग धर्मशास्त्रकारों के मतों को प्रस्तुत करते हुए स्त्रीधन के स्वरूप की विस्तृत चर्चा की गई है और वहीं पर

यह भी बताया गया है कि पति यदि दुर्भिक्षादि के समय स्त्रीधन के बिना निर्वाह करने में असमर्थ हो तो वह स्त्रीधन ले सकता है, अन्यथा नहीं–

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रतिरोधके।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता न स्त्रियै दातुमर्हमति।।

याज्ञ. स्मृ. 2/148, दा.भा. 3/1/24

द्वितीय परिच्छेद में स्त्रीधन के विभाग का निरूपण करते हुए बताया है कि माता के मरने पर सब सहोदर भ्राता और सहोदर बहनें माता के धन को बराबर-बराबर प्राप्त करते हैं–

जनन्यां संस्थितायान्तु समं सर्वे सहोदराः।
भजेरन् मातृकं रिक्थं भगन्यश्च सनाभयः।।[2]

मनु. 9/192 दा.भा. 4/2/1

माता का धन पुत्रियों को मिलता है–इस प्रसंग में द्वितीय परिच्छेद में विस्तृत चर्चा की गई है। तृतीय परिच्छेद में निस्सन्तान स्त्री के स्त्रीधन के अधिकारयों की चर्चा की गई है और पिण्डदान के क्रम से अधिकार क्रम का वर्णन किया गया है यथा–

प्रथम देवर सपिण्ड होने से मृत स्वामिनी के धन का अधिकारी होता है क्योंकि वह मृत स्त्री को उसके पति को तथा पति द्वारा दिए जाने वाले तीन पितृ पूर्वजों को पिण्ड दान करता है। देवर के अभाव में मृत स्त्री के पति के बड़े भाई के पुत्र एवं छोटे भाई के पुत्र का अधिकार है। वे पितृण्य स्त्री (चाची) को, उसके पति को और भर्तृदेय दो पितृपूर्वजों को पिण्ड देते हैं।

अतः सपिण्ड होने से उनका पितृव्यस्त्री के धन में अधिकार है। इनके अभाव में भागिनी पुत्र जो कि असपिण्ड है, वह (मौसी के) धन का अधिकारी है। वह मातृ भगिनी को और पुत्र द्वारा दिए जाने वाले पितादि तीन पूर्वजों को पिण्ड देता है। इसके अभाव में भर्ता की बहन का पुत्र मातुलानी (मामी) को धन का अधिकारी होता है। वह भर्ता द्वारा दिए जाने वाले तीन पूर्वजों को, मातुलानी को उसके पति को पिण्ड देता है। इसके अभाव में भाई के पुत्र का (मत स्त्री के भाई के पुत्र का पिता

की बहन (बुआ) के धन में अधिकार है। वह पिता, पितामह और पितृ भगिनी (बुआ) को पिण्ड देता है। उसके अभाव में जामाता (पुत्री के भर्ता) का श्वश्रू के धन में अधिकार है। वह श्वश्रू और श्वशुर को पिण्डदान करता है।

प्रथमं देवर..........श्वश्रूधनेऽधिकारीति।। दा.भा.4/3/37

पंचम अध्याय में विभाग के अनधिकारियों की विस्तृत चर्चा की गई है तद्यथा–

अनंशौ क्लीब पतितौ जात्यन्ध बधिरौ तथा।
उन्मत्त जड़ मूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रयाः।।

मनु 9/20 दा.भा. 5/7

अर्थात् नपुंसक पतित, जन्मान्ध, बधिर उन्मत्त, जड़ मूक एवं इन्द्रिय दोषी को अंश देने कार निषेध किया गया है। फिर भी इनके भरण-पोषण की व्यवस्था की गई है–

भर्त्तव्यास्ते निरंशकाः।। याज्ञ.स्मृ. 2/41, दा.भ. 5/10

षष्ठ अध्याय में दो परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में विभाज्य एवं अविभाज्य सम्पत्ति का निरूपण किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में विद्या धन की चर्चा की गई है।

अविभाज्य सम्पत्ति के प्रसंग में जीमूतवाहन का मत है कि संयुक्त परिवार में यदि कोई सदस्य संयुक्त सम्पत्ति की सहायता के बिना निज के विशेष उद्यम से धन का अर्जन करता है तो उस पर उस व्यक्ति विशेष का ही अधिकार होता है। इस प्रकार की सम्पत्ति का दायादों में विभाजन नहीं होता यथा स्वधन एवं श्रम से अर्जित सम्पत्ति, विद्याधन, शौर्यधन, पूर्व में असामर्थ्यादि से डूबी हुई और बाद में निजी प्रयत्न से उद्धृत क्रमागत द्रव्य आदि आते हैं तद्यथा

अनुपघ्नन् पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जयेत्।
स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति।।

मनु.स्मृ. 9/208 दा.भा. 6/1/3

विभाज्य धन के प्रसंग में कात्यायन को उद्धृत करते हुए कहा है कि–पितामहधन, पितृधन किसी अन्य दायाद द्वारा स्वयं अर्जित धन दायादों में विभाज्य होता है–

पैतामहञ्च पित्र्यञ्च यच्चान्यत् स्वयमर्जिम्।
दायादानां विभागे तु सर्वमेतद् विभज्यते।।

दा.भा. 6!1/1

द्वितीय परिच्छेद में विद्याधन की विस्तृत व्याख्या की है। इनका मत है कि किसी भी विद्या से प्राप्त किए गए धन पर अर्जक का ही अधिकार होता है। परन्तु इसका अपवाद है कि साधारण धन के अनुपघात से यदि कोई विद्याध्ययन करके विद्याधन प्राप्त करता है तो उस पर सम या अधिक विद्वान् का अधिकार होता है। न्यूनविद्या वाले के अधिकार का निराकरण किया गया है। परन्तु यदि विद्याध्ययन करने वाले भाई के कुटुम्ब का भरण–पोषण दूसरा अविद्वान् भाई निजी धन एवं श्रम से करता है तो उसके विद्याधन में अविद्वान भाई का भी अधिकार होता है।

तन्त्रोच्चरितं विद्यापदमुमाभ्यां समाधिकपदाभ्यां सम्बध्यते, तेन समविद्याधिकाविद्यानां दातव्यम् न्यूनविद्याविद्ययोः पुनरनधिकारः। दा.भा. 6/1/22 **यदि विद्यामभ्यस्तो भ्रातुः कुटुम्बमपरः भ्राता स्वधनव्ययशरीरायासाम्यां संवर्धयति, तदा तद्विद्योपार्जितधने तस्याप्यधिकारः।**[2] दा.भाग. 6/1/16

सप्तम अध्याय में विभाग के अनन्तर उत्पन्न पुत्र का विभाग बतलाया गया है। जीमूतवाहन का कथन है कि विभाजन के अनन्तर उत्पन्न पुत्र पितृधन का अधिकारी होता है। इस संदर्भ में पिता की पुत्र सन्तान दो स्थितियों में हो सकती है और दोनों स्थितियों में इसका भिन्न–भिन्न भाग है–

(1) यदि विभाजन किए बिना ही (अविभक्त) पिता की मृत्यु हो जाती है और उस समय माता के गर्भ लक्षण विहित नहीं होते। ऐसी स्थिति में जब पुत्र विभाजन कर लेते हैं और तदनन्तर पुत्र की उत्पत्ति होती है तो वह विभाजन के अनन्तर उत्पन्न पुत्र उन

विभक्त भाइयों से अपना भाग प्राप्त करता है।

विभागानन्तरं यस्य गर्भाधानम्, स विभक्तजः विभक्तेनः जनितः गर्भाधानादृते जनकस्य जननव्यापाराभावात्। अतो यद्यज्ञातगर्भायामेव स्त्रियां विभक्तः पुत्रा तदनन्तरं जातो भ्रातृभ्य एव भागं गृह्णीयात्। द्रा. भा. 7/4

(2) पिता जब अपने जीवनकाल में पुत्रों में विभाजन कर देता है और तदनन्तर पुत्र की उत्पत्ति होती है तो वह विभक्तज पुत्र पिता का भाग प्राप्त करता है **"विभक्तजः पित्र्यमेव।"** दा.भा. 7/3

अष्टम अध्याय के अन्तर्गत जीमूतवाहन ने विभाजन के बाद दायाधिकारी के वापिस आने पर उसके अधिकार की चर्चा की है–

कृतेऽकृते विभागे वा रिक्थं यत्र प्रदृश्यते।
सामान्यञ्चेद्भवेत् यत्तु तत्र भागहरस्तु सः।। दा.भा. 8/1

उनके अनुसार ऋण, खेत, घर और लेख्य जो पितामह के हैं, विदेश से बहुत समय पश्चात् आए हुए व्यक्ति को यदि भाग न मिला तो वह भी भाग का अधिकारी होता है। दा.भा. 8/2

नवम अध्याय में सवर्ण पुत्रों के विभाजन की विधि के लिए दो विकल्प दिए हैं–

(1) ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या एवं शूद्रा स्त्री से उत्पन्न पुत्र क्रमशः तीन, दो, डेढ़ तथा एक भाग प्राप्त करता है।

(2) ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या एवं शूद्रा स्त्री से उत्पन्न पुत्र क्रमशः चार, तीन, दो एवं एक भाग प्राप्त करता है।

त्र्यशं दायाद्हरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः।
वैश्याजस्सार्द्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत्।। दा.भा. 9/12

दशम अध्याय में पुत्रिका और औरसपुत्र के बीच समान विभाजन की चर्चा की गई यदि वे दोनों समान वर्ण के हैं–**पुत्रिकौरसयोस्तु सवर्णत्वे सति।** दा.भा. 10/5

परन्तु यदि वे असमान वर्ण के हैं तो उनका असवर्ण भाइयों के समान विभाजन होता है– **असवर्णत्वे तु तयोरसवर्णौरसपुत्रवदेव विभागः।**[2] दा.भा. 10/5

एकादश अध्याय में अपुत्र मृत व्यक्ति के धन विभाग की चर्चा की गई है। इस प्रसंग में याज्ञवल्क्य का एक श्लोक प्रस्तुत किया जाता है–

"पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा।
तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः।
एषमभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः॥[2]

दा.भा. 11/1/4, याज्ञ. स्मृ. 2/136-137

इस श्लोक के आधार पर सबसे प्रथम धन की अधिकारिणी पत्नी को माना है। इसी को दृष्टि में रख करके प्रस्तुत अध्याय छः परिच्छेदों में विभक्त है।

प्रथम परिच्छेद में बताया गया है कि पुत्रहीन व्यक्ति के मर जाने पर उसकी चल एवं अचल सम्पत्ति पर सहोदर भाई-चाचा एवं दौहित्र आदि के विद्यमान होने पर भी पत्नी का अधिकार स्वीकार किया गया है। जीमूतवान ने यह उत्तराधिकार क्रम पारलौकिक कल्याण के सिद्धान्त पर निर्धारित किया है। सामान्य रूप से पिण्डदान का अधिकार न होने के कारण दायभाग सम्प्रदाय में स्त्रियों को उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया गया तथापि पत्नी, दुहिता, माता, पितामही एवं प्रपितामही– इन पांच स्त्री सम्बन्धियों को उत्तराधिकारी माना गया है, क्योंकि जीमूतवाहन का कहना है कि शास्त्र में विशेष वचनों के द्वारा इनके अधिकार को स्वीकार किया गया है।

जीमूतवाहन का कथन है कि विधवा पत्नी अपने पति की भाईयों से संसृष्ट या असंसृष्ट विभक्त या अविभक्त किसी भी अवस्था में मृत्यु होने पर सर्वप्रथम अधिकार प्राप्त करती है।

द्वितीय परिच्छेद में पत्नी की मृत्यु के पश्चात् मृतधनी के धन पर पुत्री का अधिकार बताया है और बृहस्पति के मत का समर्थन करते हुए दौहित्र का अधिकार स्वीकार किया है। इनके अनुसार पितादि बन्धुओं के रहते हुए जिस प्रकार दुहिता पुत्र के माध्यम से पिण्डदान करने से पितृधन की अधिकारिणी होती है उसी प्रकार दौहित्र भी मातामह का पिण्डदान करने से उसके धन का अधिकारी होता है–

तस्मात् विवाहोपयुक्तत्वेन पित्रादीनां नरकनिस्तारकत्वात् परिणीतायाश्च पुत्रद्वारेणाप्युपकारकत्वात्, तदर्थं धनं स्वाम्यर्थमेव भवतीति, पत्न्याभावे न्यायं कन्यास्वत्वम्। दा.भा. 11/2/7

क्योंकि पिण्डदान करना दोनों (दुहिता एवं दौहित्र) का धनग्रहण में निमित्त है। **पिण्डदानमेव च द्वयोरेकं निमित्तमनुवर्ति।** दा.भा. 11/2/17

तृतीय परिच्छेद में मृतधनी के धन में पिता का अधिकार बताया गया है। जीमूतवाहन ने अपने मत की पुष्टि के लिए मन्वादि के प्रमाण भी दिए हैं। माता से पूर्व पिता का अधिकार स्वीकार करने के पीछे जीमूतवाहन की पारलौकिक कल्याण की भावना निहित है। उनका मत है कि दौहित्र एक पिण्ड मृतक को देता है तथा दो अन्य पिण्ड उन पितरों (प्रमातामह-प्र-प्रमातामह) को देता है जिनके साथ वह भोग करता है जबकि पिता केवल उन पितरों (पितामह एवं प्रपितामह) को दो अन्य पिण्ड देता है जिनके साथ मृतक भोग करता है। अतः दौहित्र से पिता निकृष्ट है। परन्तु पिता माता से उत्कृष्ट है क्योंकि वह मृत द्वारा भोगे जाने वाले दो अन्य पिण्ड देता है–

न्यायागतश्चैतत् दौहित्रात् परतो मातृतश्च पूर्वं पितुरधिकार इति मृतपिण्डमृतभोग्यान्यपिण्डद्वयदातुदौहित्रात् मृतभोग्यान्य-पिण्डद्वयमात्रदातृतया पितुर्जधन्यत्वात् मात्रादिभ्यस्तु मृतभोग्यान्य-पिण्डद्वयदातृतया बीजस्य चैवं योन्याश्त बीजमुत्कृष्टमुच्यते इति मनुवचनावगतोत्कर्षेण च बलवत्त्वात्। दा. भा. 11/3/3

चतुर्थ परिच्छेद में पिता के अभाव में मृतधनी के धन पर माता का अधिकार माना है। **पितुरभावे मातुरधिकारः।** दा.भा. 11/4/1 याज्ञवल्क्य ने माता के अधिकार में ही पितृव्यादि से पूर्व पितामह एवं

पितामही का अधिकार बतलाया है, उनका पृथक् उल्लेख नहीं किया।

अतएव याज्ञवल्क्येन मातुरधिकारप्रदर्शननैव पितृव्यादिभ्यः पूर्वं पितामहपितामह्योरधिकारस्याप्युक्तत्वात् न पृथगुक्तः। दा.भा. 11/4/6

पंचम परिच्छेद में मृतव्यक्ति के धन पर भाई को रिक्थाधिकारी माना है। भाइयों में सर्वप्रथम सहोदर भ्राता का अधिकार बताया है। उसके अभाव में भिन्नोदर भ्राता का अधिकार होता है–**तत्रापि प्रथमं सोदरस्यैव तदुक्तं सोदरस्य तु सोदरः भ्रातरस्तथेत्युक्तभ्रातुराधिकावसरे प्रथमं सोदरो गृह्णीयादित्यर्थः। तस्य त्वभावे सापत्नो भ्राता एकप्रभवत्वेन तस्यापिभ्रातृशब्दार्थत्वात्।** दा.भा. 11/5/9

परन्तु इसका अपवाद मिलता है कि यदि मृतस्वामी की सहोदर भाइयों से संसृष्ट होकर मृत्यु होती है तो उसके धन पर संसृष्ट सहोदर भाई का अधिकार होता है, भिन्नोदर असंसृष्ट का नहीं। इसी प्रकार यदि मृतस्वामी सहोदर एवं भिन्नोदर दोनों भाइयों से संसृष्ट होकर मृत होता है तो उसके धन पर दोनों का अधिकार होता है अर्थात् दोनों आधी-आधी सम्पत्ति प्राप्त करते हैं क्येंकि दोनों में एक-एक गुण विद्यमान है–**अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्य्योः धनं हरेत्। असंसृष्ट्यापि चादद्यात् संसृष्टो नान्यमातृजः॥** याज्ञ. स्मृ. 2/140 दा.भा. 11/5/13

षष्ठ परिच्छेद में भाइयों के अभाव में भ्रातृपुत्र तथा अन्य उत्तराधिकारियों की चर्चा की गई है। भ्रातृपुत्रों में सर्वप्रथम भ्रातृपुत्र और तत्पश्चात् भिन्नोदर भ्रातृपुत्र का अधिकार बताया है। इनके अभाव में सपिण्ड, सकुल्य एवं समानोदक मृतस्वामी के धन के अधिकारी होते हैं। समानोदक के अभाव में आचार्य और तदुपरान्त शिष्य उत्तराधिकारी है। शिष्य के अभाव में सब्रह्मचारी धन प्राप्त करता है। सब्रह्मचारी के अभाव में एक गोत्र वाला (सगोत्र) और एक प्रवर (समान प्रवर) को धन मिलता है। इन सबके अभाव में ब्राह्मण को धन मिलता है। ब्राह्मण के धन को छोड़कर क्षत्रियादि वर्णों के धन को राजा प्राप्त करता है।

जीमूतवाहन ने याज्ञवल्क्य के वचन का उल्लेख करते हुए कहा है कि वानप्रस्थ संन्यासी एवं ब्रह्मचारी के धन को क्रम से धर्म भाई सत्शिष्य एवं अचार्य प्राप्त करते हैं। इन सबके अभाव में एकतीर्थी या

एकाश्रमी धन ग्रहण करता है।

वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणां रिक्थभागिनः।
क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः।।

याज्ञ.स्मृ. 2/137 दा.भा. 11/6/35

द्वादश अध्याय में संसृष्ट शब्द का लक्षण बताया गया है जिसका सामान्य अर्थ है कि एक बार धन का विभाजन करने के पश्चात् पुनः उसका मिश्रीकरण करना संसृष्ट कहलाता है। बृहस्पति के मत का उल्लेख करते हुए 'संसृष्ट' शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है–विभाजन के पश्चात् जो पुनः पिता, भ्राता एवं पितृव्य के साथ प्रीतिपूर्वक सम्मिलित रहने लगता है तो उसे संसृष्ट कहा जाता है–

विभक्तो यः पुनः पित्रा भ्राता चैकत्र संस्थितः।
पितृव्येणाथवा प्रीत्या स तु संसृष्ट उच्यते।। दा.भा. 12/3

त्रयोदश अध्याय में विभाजन के समय छिपी हुई सम्पत्ति का विभाजन किस विधि से किया जाता है–इस विषय की चर्चा की गई है। जीमूतवाहन ने मनु के आधार पर कहा है कि पूर्व विभाजन के समान ही उस दृष्ट धन का विभाजन होता है। और जो व्यक्ति सम्पत्ति का अपहरण करता है उसे भी अन्य दायादों के समान अंश मिलता है। उसको निरंशक नहीं किया जाता और न ही उसे अल्प अंश दिया जाता है–**पूर्वं यथा यस्य विभागकल्पना कृता, तत्समानैव कार्या न पुनरपहर्तरपहर्तृतया अल्पभागो दातव्यो न दातव्य एव वेति।।** दा.भा. 13/2

चतुर्दश अध्याय में विभाग में संदेह होने पर उसका निर्णय किस प्रकार से हाता है उसका निरूपण किया गया है यथा–दायादों में विभाजन का संशय होने पर ज्ञातियों द्वारा, लेख प्रमाण तथा पृथक् कार्यों से विभाग का निर्णय होता है।

विभागधर्मासन्देहे दायादानां विनिर्णयः।
ज्ञातिभिर्भागलेख्येन पृथक्कार्यप्रवर्तनात्।। दा.भा. 14/1

पंचदश अध्याय में जीमूतवाहन ने अपने को पारिभद्र कुल में उत्पन्न माना है।

ग्रन्थ में आए हुए मीमांसा अधिकरणों की व्याख्या–

1. होलाकाधिकरण न्याय–जैमिनि के मीमांसा दर्शन के प्रथम अध्याय के तृतीय पाद में 15 से 23 सूत्रों तक वर्णन किया गया है।

अलग-अलग देशों में अलग-अलग धर्मों का प्रचलन दिखलाई पड़ता है। उदाहरण के लिए, पूर्व के लोगों में फाल्गुन मास की पौर्णमासी के दिन "होलाका' (वसन्तोत्सव) का दक्षिणात्यों में आन्हीनैबुक (अपने-अपने कुल क्रमानुार करञ्ज अथवा अर्क के बढ़ते हुए पौधे की पूजा) का और उदीच्यों में जेठे के महीने की पौर्णमासी के दिन उद्वृषभ यज्ञ (अर्थात् बैलों को सम्मानित करके उनकी दौड़ का आयोजन) का प्रचलन दिखलाई पड़ता है। यहाँ संशय उत्पन्न हाता है कि इन आचारों का पालन उन्हीं लोगों द्वारा किया जाना चाहिए जहाँ इनका प्रचलन दिखलाई पड़ता है अथवा सबके द्वारा? पूर्वपक्ष का मत है कि इन कृत्यों के आधार के लिए श्रुति का अनुमान करना केवल कुछ निश्चित व्यक्तियों (प्राच्यों, दाक्षिणात्यों आदि) तक ही सीमित रखना चाहिए। **"प्राच्यै होलाका कर्त्तव्या"** अथवा **"उदीच्यै उद्वृषभयज्ञः कर्त्तव्या"** ऐसी श्रुति की कल्पना करनी चाहिए। इसके उत्तर में सिद्धान्तपक्षी का कहना है कि समाज में प्रचलित स्मार्तधर्मों के समर्थन के लिए अवश्य कल्पनीय सामान्य श्रुति की ही कल्पना की जानी चाहिए। अथवा विशिष्ट प्राच्यादि, पदों से रहित-'होलाका कर्त्तव्या' ऐसी श्रुति की ही कल्पना की जानी चाहिए।

2. विश्वजिति सर्वस्वदाने पित्रादीनामदेयत्वाधिकरणम्

इस अधिकरण का उल्लेख मीमांसा के द्वितीय अध्याय में किया गया है। पुत्रार्जित सम्पत्ति के विभाजन के प्रसंग में कहा गया है कि पुत्र द्वारा अर्जित की गई सम्पत्ति में पिता द्वयंश या अर्धंश प्राप्त करता है, पूर्वपक्षी का मत है कि पिता को द्वयंश, पुत्र और वित्त के अर्जन से प्राप्त होते हैं। जीमूतवाहन इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि पिता

का पुत्र में अर्जन नहीं होता, क्योंकि यदि पिता का पुत्र में अर्जन होगा तो पिता पुत्र का भी दान कर देगा जो कि शास्त्र के विरुद्ध है। उपरिनिर्दिष्ट पूर्वमीमांसा के अधिकरण से स्पष्ट है कि पिता का पुत्र में स्वत्व नहीं होता अतएव वह उसका दान भी नहीं कर सकता।

3. समं स्यादक्षुत्वादिशेषस्य

मीमांसा के दशम अध्याय के तृतीय पाद में 53 से 55 तक का उल्लेख किया गया है। इस सूत्र से अभिप्राय है कि यदि विशेष श्रवण न हो तो सम विभाजन करना चाहिए। साधारण स्त्रीधन के प्रसंग में पूर्वपक्ष का मत है कि माता के मरने क बाद उसके साधारण स्त्रीधन में केवल भाइयों/पुत्रों) का और उनके अभाव के अविवाहिता भागिनियों (पुत्रियों) का तुल्य अधिकार होता है क्योंकि पूर्वमीमांसा के 'समं स्यादश्रुत्वाद्विशेषस्य' वचन से समत्व की प्राप्ति सिद्ध है। जीमूतवाहन इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि माता की मृत्यु के बाद उसके (साधारण) स्त्रीधन में भाई (पुत्रों) और अविवाहिता भगिनियों (पुत्रियों) का तुल्य अधिकार होता है। पूर्व मीमांसा के इस न्याय से यही निर्दिष्ट होता है।

4. क्रत्वर्थ पुरुषार्थयोर्जिज्ञासा

जैमिनि के चतुर्थ अध्याय के प्रथम पाद में 1, 2 सूत्र हैं क्रत्वर्थ और पुरुषार्थ के विवाद की चर्चा के प्रसंग में अविभाज्य सम्पत्ति के प्रसंग में श्रीकर का आक्षेप है कि यदि प्रतिग्रह में (प्रतिग्रहीता के) पितृद्रव्य के उपघात को स्वीकार किया जाएगा तो ज्योतिष्टोम याग में कर्त्ता के शरीर धारण के लिए जन्म के दिन से लाया हुआ भोजन (शरीर-स्थिति का हेतु होने के कारण) क्रत्वर्थ हो जाएगा पुरुषार्थ नहीं और यह स्थिति, मीमांसा में क्रत्वर्थ और पुरुषार्थ के विषय में किए गए विवेचन के विरुद्ध हो जाएगी। जीमूतवाहन इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि मीमांसा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भोजन से मनुष्य को साक्षात् तृप्ति का अनुभव होता है और वह पुरुषार्थ है। अतएव द्रव्यार्जन अथवा भोजन पुरुषार्थ ही है, न कि क्रत्वर्थ।

5. अयज्ञिया वे माषाः

मीमांसा के षष्ठ अध्याय के तृतीय पाद में 13 से 20 सूत्र में उल्लेख मिलता है। इस सूत्र से अभिप्राय है कि यज्ञ में मुद्ग का चरु किसी कारण से नष्ट हो जाए तो उसके प्रतिनिधि स्वरूप दूसरा द्रव्य ले लेना चाहिए परन्तु मुद्ग के स्थान पर माष का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि उसका वचन से निषेध किया गया है। विभाजन के समय छिपी हुई किन्तु कालान्तर में प्रकाशित सम्पत्ति के विभाजन के प्रसंग में पूर्वपक्ष का मत है कि साधारण धन में यदि कोई दायाद द्रव्य का अपहरण करता है तो उसे दोष लगता है। पूर्वमीमांसा के 'अयज्ञिया वै माषाः' इस निषेध वचन से जैसे मुद्ग के स्थान पर माषि को प्रतिनिधि स्वरूप लेने का निषेध है उसी प्रकार संयुक्त सम्पत्ति में से दसरे के द्रव्य का अपहरण करने का निषेध है। जीमूतवाहन इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि यज्ञ में माष का माष के रूप में प्रयोग करने का निषेध है किन्तु मुद्ग के चरु में भी यदि कुछ माष के अवयवों का मिश्रण हो जाता है तो आपत्ति नहीं की जाती। प्रकृत प्रसंग में भी केवल परद्रव्य के अपहरण से स्तेय का दोष लग सकता था लेकिन उस द्रव्य में निज के अधिकार का मिश्रण होने से 'आत्मीय बुद्धि' से ग्रहण किए जाने के कारण ऐसे दोष की आपत्ति को कोई प्रसक्ति नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अन्त में मैं इतना कहना चाहूँगी कि दायभाग की संक्षिप्त विषय सामग्री एवं मीमांसा के अधिकरणों की सरल व्याख्या का अध्ययन करते हुए पाठक पुस्तक को सुचारु रूप से समझने में समर्थ हो सकेंगे। अपने इस किंचित-कार्य के लिए विद्यापीठ के प्राक्तन कुलपति महायशस्वी बहुशास्त्रनिष्णात जो मेरे साक्षात् गुरु रहे हैं जिनकी प्रेरणा आशीर्वाद से मेरा मार्ग प्रशस्त हुआ ऐसे तपोमूर्ति स्वर्गीय प्रोफेसर वाचस्पति उपाध्याय जी के पावन चरणों में मैं हृदय से नमन करतील करती हूँ। साथ ही वर्तमान कुलपति प्रो. ऊषा रानी कपूर जी का भी इस अवसर पर आभार अभिव्यक्त करती हूँ। विद्यापीठ के प्रकाशन विभाग से प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय जी एवं अन्य सहयोगियों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ जिन्होंने मुझे आरम्भ से लेकर कार्य

सम्पन्न होने तक अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इस पुस्तक को प्रकाशित करने केलिए परिमल प्रकाशक का धन्यवाद ज्ञापन करना चाहूँगी जिनके सौजन्य से मुझे "Two treatises on the Hindu Law of inheritance by H.T. Colebrook" पुस्तक उपलब्ध हुई। इनके माध्यम से मैं अंग्रेजी अनुवाद पाठकों के समक्ष उपस्थित करने में समर्थ हुई। अपिच मैं विशेष रूप से अमर प्रिंटिंग प्रेस का भी हृदय से आभार व्यक्त करना चाहती हूं जिन्होंने मेरे लेखन कार्य को पुस्तक का रूप प्रदान कर सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया।

विषयसूची

पारिभद्रीय-महामहोपाध्याय-जीमूतवाहनकृत

दायभागः

अथ प्रथमोऽध्यायः

मन्वादिवाक्यान्यविमृश्य येषाम्
यस्मिन् विवादो बहुधा बुधनाम्।
तेषां प्रबोधाय स दायभागः
निरूपणीयः सुधियः शृणुध्वम्॥ 1॥

मन्वादि वचनों की व्याख्या के प्रसंग में बुद्धिमानों के विवाद को दूर करने के लिए दायभाग का निरूपण किया गया है। हे बुद्धिमानों! सुनो।

Subject proposed.

Partition of heritage, on the subject of which various controversies have arisen among intelligent persons (not fully comprehending the precepts of Manu and the rest should be explained for their information. Hear it, O you wise!

अथ दायभागो निरूप्यते। तत्र नारदः-

विभागोऽर्थस्य पित्र्यस्य पुत्रैर्यत्र प्रकल्प्यते।
दायभाग इति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः॥ 2॥

अब दायभाग का निरूपण करते हैं। यथा नारद के मतानुसार जहाँ पैतृक सम्पत्ति का पुत्रों द्वारा विभाजन किया जाता है उस व्यवहार पद को विद्वानों के द्वारा दायभाग की संज्ञा दी गई है।

Partition of heritage, described by Nārada, as a head of actions.

First, the term Partition of Heritage *(dāya-bhāga)* is expounded and, on that subject, Nārada says, "Where a division of "the paternal estate is instituted by sons, that become a "topic of litigation, called by the wise Paritition of Heritage".

पितृत आगतं-पित्र्यम्, तच्च पितृमरणोपजातस्वत्व-मुच्यते। पित्र्यस्येति पुत्रैरिति च द्वयमपि सम्बन्धिमात्रेपलक्षणम्, सम्बन्धिमात्रेण सम्बन्धिमात्रधनविभागेऽपि दायभागपद-प्रयोगात्। अत एव दायभागं विवादपदमुपक्रम्य नारदोऽपि ादिधनविभागमप्युपदर्शितवान्। तथा मनुरपि पित्रदिपद-ैव-

एष स्त्री पुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः।
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत।। 3।।

इत्युपक्रमम्य यावत्सम्बन्धिधनविभागमुक्तवान्।। 3।।

पिता द्वारा आई हुई सम्पत्ति से 'पित्र्यं' अर्थात् पैतृक कहा है। ता के मरण के पश्चात् स्वत्व उत्पन्न होता है। 'पित्र्यस्य' एवं दोनों सम्बन्धि मात्र के उपलक्षण हैं। सम्बन्धियों (पिता, पितामहादि) धन का सम्बन्धियों (पुत्र, पौत्रदि) में विभाजित होना दायभाग पद का अर्थ है। इसलिए 'दायभाग' व्यवहार पद को आरम्भ करते हुए नारद ने भी माता आदि के धन का विभाग दिखलाया है। मनु ने भी पित्रादि पद को प्रारम्भ न करके सम्बन्धि के धन का विभाग कहा है - आप से रति (स्नेह-अनुराग) युक्त स्त्री-पुरुष के धर्म तथा उनके आपत्काल में सन्तान प्राप्ति के विधान को कहा। अब आप लोग दायभाग (पितादि के धन के विभाजन) को सुनें।

Exposition of his text. Inheritance includes succession to the goods of any relation.

What came from the father is "paternal" and this signifies property arising from the father's demise. The expressions "paternal" and "by sons" both indicate any relation: for the term "partition of heritage" is used for a division of the goods

of any relation by any relatives. Accordingly Nārada, having premised "partition of heritage" as a topic of litigation, (see 2) shows, under that head of actions, the distribution of effects left by the mother and the rest. So Manu, likewise, premising inheritance, but without employing the work father or any other specific term, propounds the division of effects of any relative.

दीयत इति व्युत्पत्त्या दायशब्दः, ददातिप्रयोगश्च गौणः, मृतप्रव्रजितादिस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पतिफलसाम्यात्, न तु मृतादीनां तत्र त्यागोऽस्ति॥ 4॥

दाय शब्द की व्युत्पत्ति 'दा' धातु से है अर्थात् जो दिया जाता है वह दाय है किन्तु दाय में 'देना' क्रिया गौण है क्योंकि मृतकादि स्वयं स्वत्व का त्याग नहीं कर सकते। अतः यहाँ मुख्य बात है स्वत्व की निवृत्ति एवं पर स्वत्व की उत्पत्ति। स्वत्व की निवृत्ति कई प्रकार से हो सकती है जैसे मृत, संन्यासी एवं पतित होने पर॥ 4 ॥

Derivation of *dāya*, heritage, from *dā*, to give.

The term "heritage", by derivation, signifies "what is given". However, the use of the verb *(dā)* is here secondary or metaphorical, since the same consequence is produced, namely, that of constituting another's property after annulling the previous right of a person who is dead, or gone into retirement, or the life. But there is no abdication of deceased and the rest in regard to the goods.

ततश्च पूर्वस्वामिसम्बन्धाधीनं तत्स्वाम्युपरमे यत्र द्रव्ये स्वत्वम्, तत्र निरूढो दायशब्दः॥ 5॥

अतः जीमूतवाहन के अनुसार (पूर्व स्वामी के) स्वत्व के उपरम होने पर जिस द्रव्य में (अन्य सम्बन्धी का) स्वत्व होता है उसी में दाय शब्द निरूढ है॥ 5॥

Definition of heritage.

Therefore, the word "heritage" is used to signify wealth,

in which property, dependent on relation to the former owner, arises on the demise of that owner.

ननु किं दायस्य विभागः विभक्तावयवत्वम्, यद्वा दायेन सह विभागात् संयुक्तत्वम्? न तावत् पूर्वः, दायविनाशापत्तेः। नापि द्वितीयः, संयुक्तेऽपि न ममेदं विभक्तं स्वम्, भ्रातुरिदमिति प्रयोगात्॥ 6॥

जीमूतवाहन ने दाय शब्द पर विचार करने के उपरान्त समस्तपद - दायविभाग पर विचार प्रारम्भ करते हुए पहले पूर्व पक्ष के रूप में तीन सम्भावनाओं को प्रस्तुत किया है - 1. दायस्य विभागः, 2. दायेन सह विभागः, 3. सम्बन्धाविशेषात् सर्वेषां सर्वधनोत्पन्नस्य स्वत्वस्य द्रव्यविशेषे व्यवस्थापनं विभागः। प्रथम विग्रह के अनुसार यदि दाय का अवयवों में विभाजन किया जाए तो उसका स्वरूप ही नष्ट हो जाता है यथा - एक ही गाय का यदि परिवार के अनेक सदस्यों में विभाजन किया जाए तो उसके अवयवों का अनेक व्यक्तियों में पृथक्-पृथक् विभाग हो जाने पर निश्चय ही वह नष्ट हो जाती है और वह परिवार के सभी सदस्यों के लिए निष्प्रयोजन हो जाती है। अतः इस व्याख्या को मान्य नहीं कहा जा सकता है।

दूसरी व्याख्या - दायेन सह विभागः अर्थात् दाय के साथ विभाजन ऐसा विग्रह करने से संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में सब भाइयों का संयुक्त स्वामित्व होने पर कोई भाई यह नहीं कह सकता कि अमुक सम्पत्ति मेरी है क्योंकि उसमें अन्य भाईयों का भी स्वत्व विद्यमान् है। अतः दायविभाग को संयुक्तावयव भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।।6।।

Partition is not a splitting of the chatterl; nor the separation of it from the co-heir's goods.

Is the partition of heritage a splitting of the divided thing into integrate parts? Or does partition consist in the chattel's not being united with the heritage of a co-heir? The first position is not correct; for the heritage itself would be destroyed. Nor is the second accurate; for though goods be conjoined, it may be said, "this chattel which was before parted, is not my "property,

but my brother's".

न च सम्बन्धाविशेषात् सर्वेषां सर्वधनोत्पन्नस्य स्वत्वस्य द्रव्यविशेषे व्यवस्थापनं विभाग इति वाच्यम्। सम्बन्ध्यन्त-रसद्भावप्रतिपक्षस्य सम्बन्धस्यावयवेष्वेव विभागव्यङ्ग्य-स्वत्वापादकत्वात्, कृतस्नपितृधनगतस्वत्वोत्पादविनाशकल्पना-गौरवात्, यथेष्टविनियोगफलाभावेनानुपयोगाच्च।। 7 ।।

तीसरी व्याख्या के अनुसार समान सम्बन्धियों (जैसे पुत्रों, भाईयों आदि) का मत स्वामी की सम्पूर्ण सम्पत्ति में पहले संयुक्त स्वामित्व होता है और तदनन्तर विभाजन के द्वारा उसी संयुक्त द्रव्य में से उन्हें पृथक्-पृथक् रूप से द्रव्य विशेष की प्राप्ति होती है। इस तीसरी व्याख्या के खण्डन के लिए तीन युक्तियाँ दी गई हैं -

1. 'सर्वधनोत्पन्नस्य स्वत्वस्य' इस अंश के अनुसार सब भाईयों का सम्पूर्ण सम्पत्ति में संयुक्त स्वामित्व उत्पन्न नहीं होता अपितु प्रत्येक भाई का अपने अपने अवयव पर ही स्वत्व होता है। इसलिए 'अवयवेष्वेव' शब्द पर बल दिया गया है।

2. जीमूतवाहन के अनुसार इस व्याख्या में कल्पना गौरव है क्योंकि पहले पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति में सब भाईयों के संयुक्त स्वामित्व की उत्पत्ति स्वीकार की गई है और फिर उसी संयुक्त स्वामित्व का पृथक्-पृथक् द्रव्यों में व्यवस्थापन कर नाश किया गया है।

3. सब भाइयों का सम्पूर्ण सम्पत्ति में संयुक्त स्वामित्व होने पर उसी संयुक्त स्वामित्व का द्रव्य विशेष में व्यवस्थापन करने से कोई भी भाई उसका स्वेच्छा से विनियोग (दान, विक्रय एवं उपभोग) नहीं कर सकता।। 7 ।।

Nor a distribution of a general right particulars.

Nor can it be affirmed, that partition is the distribution to particular chattels of a right vested in all the co-heirs, through the sameness of heir relation, over all the goods. For relation, opposed by the co-existent claim of another relative, produces a right (determinable by partition) to portions only of the estate:

since it would be burdensome to infer the vesting and diversting of rights to the whole of the paternal estate; and it would be useless, as there would not result a power of aliening at pleasure.

उच्यते - एकदेशोपात्तस्यैव भूहिरण्यादावुत्पन्नस्य स्वत्वस्य विनिगमनाप्रमाणाभावेन वैशेषिकव्यवहारानर्हतया अव्यवस्थितस्य गुटिकापादिना व्यञ्जनम् विभागः ॥ 8 ॥

विभाजन से पूर्व चल या अचल सम्पत्ति (भू हिरण्यादि) के किसी एक ही भाग में उत्पन्न स्वत्व के नियामक प्रमाण के अभाव होने से 'यह किसका अंश है' इस प्रकार का विशिष्ट व्यवहार नहीं हो सकता। अतः जहाँ विशेष रूप से स्वत्व की व्यवस्था न हो वहाँ गुटिकापात (लाटरी आदि) द्वारा स्वत्व की अभिव्यक्ति ही विभाग है।। 8 ॥

Definiton of partition.

The answer is : Partition consists in manifesting (or in particularising) by the casting of lots or otherwise, a property which has arisen in lands or chattels, but which extended only to a portion of them, and which was previously unascertained, being unfit for exclusive appropriation, because no evidence of any ground of discrimination existed.

विशेषेण भजनम्, स्वत्वज्ञापनं वा विभागः॥ 9 ॥

अतः विशेषरूप से विभक्त करना या स्वत्व का बोधन करना ही विभाग कहलाता है।। 9 ॥

Its literal meaning

Or partition is a special ascertainment of property, or making of it known (by reference of a particular share to a particular person).

यत्रापि चैकं दासीगवादिकं बहुसाधारणम्, तत्रापि तत्तत्कालविशेषवहनदोहनफलेन स्वत्वं व्यज्यते।

तदाह बृहस्पतिः-

एकां स्त्रीं कारयेत् कर्म यथांशेन गृहे गृहे।
उद्धृत्य कूपवाप्यम्भस्त्वनुसारेण गृह्यते।।
युक्त्या विभजनीयं तदन्यथानर्थकं भवेत्।। इति
इदं श्लोकार्द्धत्रयं नानास्थानस्थम्, न तु क्रमिकम्।।10।।

जहाँ एक दासी, गाय या अन्य वस्तु सबके साधारण होते हैं वहाँ पर क्रमानुसार उनसे कार्य करवाना चाहिए जैसे गाय से दोहन तथा दासी से वहन आदि। इस प्रकार उस काल विशेष में कार्य करवाने से स्वत्व हो जाता है। बृहस्पति के अनुसार - यदि एक काम करने वाली दासी हो तो अपने अंशानुसार बारी बारी से विभिन्न घरों में उससे काम कराया जाये। कुएँ, बावड़ी, पानी की नाली (सेतु) का अपने हिस्से के अनुसार उपयोग करना चाहिए। अतः इनका युक्तिपूर्वक विभाग करना चाहिए अन्यथा वे निरर्थक हो जायेंगी। विषय की जानकारी के लिए बृहस्पति के उपर्युक्त तीनों श्लोकों के अंश भिन्न-भिन्न स्थानों से लिए गए हैं। ये सभी क्रम से नहीं हैं।। 10 ।।

The definition holds good in the case even of a single article : the right to which may be shared as provided by Bṛhaspati.

Even in the case where a single article, as a female slave, a cow, or the like, is common to many, the property is severed by separate use, in varying burdens or in milking, during specific periods, in turn, as directed by Bṛhaspati. "A single female slave should be employed on labour in the houses (of the several coheirs) successively, according to the number of shares:- and water of wells or ponds is drawn for use according to need (without stint)- such property (as is regularly not divisible) should be distributed by equitable adjustment; else it would useless (to the owners.)" These three half stanzas occur in many places, (as quotations from this auther) though not found in their regular order (in his Institutes of Law).

ननु 'पितर्यूर्ध्वं गते पुत्रा विभजेयुर्द्धनं पितुरि'ति नारदवचनात् पितुर्धनम् विभजेयुरित्यन्वयात्, विभागात् पूर्वं न तत्र पुत्राणां स्वत्वम्, न च विभागस्य स्वत्वकारणता, असम्बन्धिधनेऽप्यतिप्रसङ्गात्॥ 11 ॥

जीमूतवाहन ने पूर्वपक्षी नारद के वचन को उद्धृत करते हुए लिखा है कि- माता-पिता की मृत्यु के बाद ही पुत्रों के द्वारा पितृधन का विभाजन किया जा सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि विभाजन से पूर्व पुत्रों का पितृधन में स्वत्व नहीं है। दूसरी ओर विभाज़न से स्वत्व की उत्पत्ति होती है यह सिद्धान्त भी स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा मान लेने से असम्बन्धी के धन में भी (किसी अन्य असम्बन्धी के) स्वत्व की उत्पत्ति की शंका होने लगेगी॥ 11॥

Partition does not create right.

Does it not follow from the text of Nārada, (let sons regularly divide the wealth when the father is dead") which authorises sons to divide their father's effects after his decease, that son's have not property therein before partition? nor can partition be a cause of property, since that might be misunderstood as extending even to the goods of a stranger.

उच्यते-पित्रादिनिधनानन्तरमेवास्मदीयं धनमिति प्रयोगात्, एकपुत्रे च विभागं विनैव स्वत्वस्वीकाराच्च। सम्बन्धिनिधनमेव स्वत्वकारणम्, अतः नातिप्रसङ्गः॥ 12॥

उपर्युक्त शंका के उत्तर में जीमूतवाहन का कहना है कि - लोकव्यवहार में पिता की मृत्यु के बाद ही पुत्रों द्वारा पितृधन के विषय में ''यह हमारा धन है'' ऐसा प्रयोग किया जाता है और इसी तरह पिता की मृत्यु के बाद (बिना विभाग के ही) पिता के एकमात्र पुत्र के द्वारा पितृधन पर अपना अधिकार स्वीकार किया गया है। 'सम्बन्धिनिधनम्' ही स्वत्वोत्पत्ति का कारण है। ये दोनों ही शब्द स्वत्व के उपरम का निर्देश करते हैं और सम्बन्धी शब्द असम्बन्धी के धन में विभाग से स्वत्व की उत्पत्ति की आशंका का निराकरण करता है।

But the demise of a relation is its cause.

The answer is this: since it is the practice of people to call an estate their own, immediately after the demise of their father or other predecessor; and the right of property is acknowledged to vest without partition in the case of an only son; the demise of the relative is the cause of property. Consequently there is no room for any misconstruction.

नन्वर्जयितृव्यापारोऽर्जनम्, अर्जनाधीनस्वामिभाव-श्चार्जयिता, तेन पुत्रव्यापारो जन्मैवार्जनं युक्तम्, अतो जीवत्यपि पितरि पुत्राणां तत्र स्वत्वम्, न तु तन्निधनात्। अतएवोक्तं 'क्वचिज्जन्मैव यथा पित्र्ये धने'॥ 13 ॥

यहाँ पर एक शंका है कि अर्जयितृ अर्थात् लाभ प्राप्त करने वाले के कर्म को अर्जन कहते हैं। अर्जन के अधीन स्वामिभाव रखने वाला अर्जयिता होता है। इस प्रकार पुत्र का जन्म से ही अर्जन होता है, मृत्यु के बाद नहीं। इसलिए कहा गया है कि - कहीं जन्म से भी स्वत्व होता है जैसे पैतृक सम्पत्ति में॥ 13॥

Acquisition of property by birth.

Acquisition is the act of the acquirer; and one, who has the state of ownership dependent on acquisition, is the acquirer. Is not birth, therefore, as the act of the son, rightly deemed his mode of acquisition; and have not sons, consequently, a proprietary right, during their father's life, (even without his being degraded or otherwise disqualified); and not by reason of his demise? and, therefore, is it declared "in some cases brith along (is a mode of acquisition) as in the instance of a paternal estate".

नैतत्, मन्वादिविरोधात्। यथा -

ऊधर्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम्।
भजेरन् पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः॥

मनु. 1-103॥ 14 ॥

मन्वादि के विरोध होने से यह मत ठीक नहीं है। यथा माता-पिता के मरने पर सब भाई एकत्रित होकर पैतृक (पितृ सम्बन्धी) सम्पत्ति को बराबर बाँट लें क्योंकि उन दोनों (माता-पिता) के जीवित रहते हुए (वे पुत्र) उनकी सम्पत्ति को लेने में असमर्थ रहते हैं।। 14।।

Shown to be an erroneous supposition.

That is not correct: for it contradicts Manu and the rest. "After the (death of the) father and the mother, the brethren, being assembled, must divide equally the paternal estate: for they have not power over it, while their parents live."

जीवतोरपि पित्रोः पुत्राणां कुतो न विभाग इत्याशङ्कायाम्, इदमुत्तरम्, तदानीमस्वामित्वादिति।। 15 ।।

मनु के द्वारा पुत्रों के अनधिकार का यह निर्देश केवल उनके अस्वातन्त्र्य को बतलाने के लिए नहीं किया गया है अपितु उनके स्वत्व के अभाव को बतलाने के लिए ही किया गया है।। 15।।

Manu, (see 14) denies the son's right in his father's life-time.

This text is an answer to the question, why partition among sons is not authorised, while their parents are living : namely "because they have not ownership at that time".

न च भार्या पुत्रश्चेत्यादिवत् अस्वातन्त्र्याभिप्राय-मितिवाच्यम्; तदानीं स्वत्वे प्रमाणाभावात्। भार्यादिषु तु 'यत्ते समधिगच्छन्ति'-अर्जयन्तीति स्वत्वे सिद्धे, युक्तमस्वातन्त्र्य-वर्णनम्।। 16 ।।

मनु के एक अन्य श्लोक में (8/416) भार्या, पुत्र और दास को अस्वतन्त्र कहा है किन्तु वहाँ अर्जन के कारण (स्वार्जित) द्रव्य पर उनका स्वत्व एक सिद्ध वस्तु है।। 16 ।।

His text cannot intend mere dependence and control.

It should not be argued, that the text intends want of independence, like another passage of the same author,

concerning acquisitions by a wife or son: for there is no evidence of property then vested; but, in the other instance, dependence is rightly supposed to be meant, since property is suggested by the phrase "what they earn" or acquire.

किञ्च स्वोपात्तेऽपि तेषामस्वामित्वे स्वधनसाध्य-वैदिककर्मोच्छेदात् श्रुतिविरोधः स्यात्॥ 17 ॥

इस स्वत्व की पुष्टि श्रुति के वचन से भी होती है जिसमें स्वार्जित द्रव्य के द्वारा धार्मिक कर्तव्यों के पालन का विधान है।।17।।

The son's property in his own gains is requisite to his performance of religious rites therewith.

Besides, it would contradict revealed law, if these person had not ownership even in that which is by them earned; since religious rites, enjoined by holy writ and which must be effected by means of their own wealth, would be prevented.

देवलश्च पितृधने अस्वाम्यमेव स्पष्टयति -

तथा पितर्य्युपरते पुत्रा विभजेयुर्धनं पितुः।
अस्वाम्यं हि भवेदेषां निर्दोषे पितरि स्थिते।।18।।

देवल भी पिता के धन में अस्वामित्व को स्पष्ट करते हैं यथा पिता के मरने पर पुत्र पिता की सम्पत्ति का विभाजन करें। पिता के निर्दोष रहने पर पुत्रों का अस्वामित्व होता है।। 18।।

Devala denies the son's right in the goods of his father yet living.

Devala, too, expressly denies the right of sons in their father's wealth. "When the father is deceased, let the sons divide the father's wealth : for sons have not ownership while the father is alive and free from defect."

किञ्च जीवत्यपि पितरि पितृधने पुत्राणां स्वामित्वे पितुरनिच्छयापि विभागः स्यात्, जन्मनैव स्वत्वमित्यत्र प्रमाणाभावाच्च। अर्जनरूपतया जन्मनः स्मृतावनधिगमात्।।19।।

और क्या पिता के जीवित रहते हुए पिता के धन में पुत्रों का स्वामित्व होगा तो पिता की अनिच्छा होने पर भी विभाग होगा, दूसरी बात है कि जन्म से पितृधन में पुत्रों का स्वत्व प्रमाणित करने वाले शास्त्र में कोई वचन नहीं मिलता और न ही स्मृति ग्रन्थों में जन्म को अर्जन के हेतु के रूप में कही स्वीकार किया गया है।। 19 ।।

No authority declares a right by birth.

Besides, if sons had property in their father's wealth, partition would be demandable even against his consent : and there is no proof, that property is vested by birth alone; nor is birth stated in the law as means of acquisition.

क्वचिज्जन्मैवेति च जन्मनिबन्धनत्वात् पितापुत्र-सम्बन्धस्य, पितृमरणस्य च स्वत्वकारणत्वात् परम्परया वर्णनम्।। 20 ।।

'क्वचिज्जन्मैव यथा पित्र्ये धने' यह शास्त्र वचन पुत्रों का पितृधन में जन्म से स्वत्व सिद्ध नहीं करता अपितु पिता-पुत्र के सम्बन्ध की ओर संकेत करता हुआ केवल उस परम्परा की ओर निर्देश करता है जो पिता की मृत्यु होने पर पुत्र को दाय ग्रहण करने का अधिकारी बनाते हैं।। 20 ।।

Relation of father and son and demise of the father, are causes of property.

In some places it is alleged : but there, by the mention of birth, the relation of father and son and the demise of the father are mediately indicated as causes of property.

अन्यव्यापारेणान्यस्य स्वत्वमविरुद्धं शास्त्रमूलत्वादस्य। दृष्टञ्च लोकेऽपि दाने हि चेतनोद्देशविशिष्टत्यागादेव दातृव्यापारात् सम्प्रदानस्य द्रव्ये स्वामित्वम्।। 21 ।।

अन्य के व्यापार से (पिता की मृत्यु) अन्य का (पुत्रों का) स्वत्व होता है यह शास्त्र के विरुद्ध नहीं है। लोक में भी देखते हैं कि दान में देने वाले (दाता) के व्यापार से लेने वाले का द्रव्य में स्वत्व

होता है। अर्थात् देने वाला उस वस्तु का त्याग करेगा तभी लेने वाले का स्वत्व होगा।। 21 ।।

A right may accrue to one by the act of another; as in donation.

The right of one may consistently arise from the act of another : for an express passage of law is authority for it; and that is actually seen in the world, since, in the case of donation, the donee's right to the thing arises from the act of the giver; namely, from his relinquishment in favour of the donee who is a sentient person.

न च स्वीकरणात् स्वत्वम्, स्वीकर्तुरिव दातृत्वापत्तेः। परस्वत्वापत्तिफलेन हि दानरूपता, तच्फलं सम्प्रदानाधीनम्, यथा- देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागं कुर्वन्नपि यजमानो न होता, किन्तु तस्यैव त्यागस्य होमाभिधाननिमित्तं प्रक्षेपं कुर्वन् ऋत्विगेव होतेत्युच्यते, तद्वदत्रपि स्यात्। किञ्च मनसा पात्रमुद्दिश्येत्यादिशास्त्रे स्वीकारात् प्रागेव दानपदं दृष्टम्।।22।।

स्वीकार करने से स्वत्व नहीं होता है क्योंकि स्वीकार करने में भी देने वाले (दातृ) की आपत्ति है। पर स्वत्व की उत्पत्ति के फल से दान होता है। इसमें फल (लाभ) देने वाले के अधीन होता है यथा देवता के उद्देश्य से वस्तु का त्याग करने वाला यजमान स्वयं 'होता' नहीं कहलाता अपितु आहुति देने वाला ऋत्विक् ही 'होता' कहलाता है। इतना ही नहीं मनसापात्रमुद्दिश्येत्यादि शास्त्र में प्रतिग्रहीता की स्वीकृति के बिना भी दान होता है क्योंकि वहाँ पर दाता के स्वत्व की निवृत्ति ही मुख्य क्रिया है।। 22 ।।

मनसा पात्रमुद्दिश्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्।
दाता तत्फलमाप्नोति प्रतिग्राही न दोषभाक्।।

मन से पात्र को उद्देश्य करके जल के मध्य में खड़ा होकर जल दे। देने वाला उसका फल प्राप्त करता है। ग्रहण करने वालों को कोई दोष नहीं है। इस श्लोक में स्वीकार से पहले दानपद बताया है।

Acceptance of a gift is not the cause of property.

Neither is property created by acceptance; since it would follow, that the acceptor was the giver : for gift consists in the effect of raising another's property; and that effect would here depend on the donee, in like manner as a votary, though making a relinquishment of a thing offered to a deity, is not a sacrificer; but the priest alone is so denominated, as performing the act of presenting its relinquishment, which act was the purpose of the ceremony termed a sacrifice. Besides the word gift occurs in passages of law as signifying something antecedent to acceptance.

ननु ग्रहणम् - स्वीकारः, अभूततद्भावे च्विप्रयोगात्। अस्वं स्वं कुर्वन् व्यापारः स्वीकारो भवति, कथं तत् प्रागेव स्वत्वम्।। 23 ।।

पूर्वपक्षी व्याकरण का सहारा लेते हुए कहता है कि वस्तुतः दान में भी ग्रहीता के स्वत्व की उत्पत्ति उसके स्वीकार करने से होती है। स्वीकार शब्द 'च्वि' प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न हुआ है और अभूततद्भाव समास है जिसका अर्थ है जो स्व नहीं है उसको स्व कराना। अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वत्व कैसे पहले उत्पन्न हो सकता है?।। 23।।

A doubt proposed. How can the property precede the appropriation?

Is not receipt acceptance? for the affix, in the word *svīkāra*, implies a thing becoming what it before was not; and the act of making his own (swan curvan) what before was not his, constitutes appropriation or acceptance *(svīkāra).* How then can property be antecedent to that?

उच्यते-उत्पन्नमपि स्वत्वं सम्प्रदानव्यापारेण ममेदमिति ज्ञानेन यथेष्टव्यवहारर्हं क्रियत इति स्वीकारशब्दार्थः। याजनाध्यापनसाहचर्याच्च प्रतिग्रहस्य स्वत्त्वमजनयतोऽपि अर्जनरूपता च विरुद्धा, याजनादौ दक्षिणादानादेव स्वत्वात्।।24 ।।

कहा जाता है कि स्वत्व की उत्पत्ति वस्तुतः दाता के निज स्वत्व की निवृत्ति से ही होती है किन्तु ग्रहीता के स्वीकरण रूप व्यापार से केवल यथेष्ट व्यवहार योग्यता सिद्ध होती है। शास्त्र में याजन और अधयापन के साहचर्य से प्रतिग्रह का भी निर्देश किया गया है क्योंकि जैसे उनमें दक्षिणा का दान किया जाता है, वैसे ही प्रतिग्रह में भी अन्य के द्वारा दान किया जाता है। स्वत्व की उत्पत्ति दाता के दान रूप व्यापार (अर्थात् निज स्वत्व की निवृत्ति) से ही होती है न कि प्रतिग्रहीता के स्वीकरण रूप व्यापार से।। 24।।

Answer. Receipt and acceptance are means of acquisition, those not creating property, but rendering it disposable.

The answer is, though property had already arisen, it is now by the act of the donee, subsequently recognising it for his own, rendered liable to disposal at pleasure : and such is the meaning of the term "acceptance" or "appropriation". From its association with teaching and assisting at sacrifices, receipt *(pratigraha)* is without question, a mode of acquisition, though it do not immediately create property : for, in the case of assisting at sacrifices and so forth, property in wealth so gained arises solely from the gift of the reward.

पितृनिधनकालीनं वा जीवनमेव पुत्रस्यार्जनं भविष्यति। किञ्च भ्रात्रादिधने तन्मरणात्, तन्मरणकालीनजीवनाद्वा भ्रात्रन्तरादेः स्वत्वमकामेनापि वाच्यम्।। 25 ।।

अतः पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति पिता के निधन के कारण स्वत्व निवृत्ति होने पर ही होती है और विभाजन के द्वारा भाइयों को अपने अपने द्रव्य का ज्ञापन होता है।। 25 ।।

Survival may constitute the right of succession. Either that, or demise, must do so.

Or the survival of the son, at the time of his father's demise, may constitute his acquisition. Besides, in the case of goods left by a brother or other relative, the property of the rest of the brethren or other heirs, must, however reluctantly be

acknowledged to arise either from his death or from the survival of the rest at the time of his decease.

अतः ''ऊर्ध्वं पितुश्चे' त्यादि (मनु 9,104) तत्कालीनस्वत्वज्ञापनार्थं तदानीमेव चेच्छाप्राप्तं विभागमनुवदति, प्राप्तत्वात् विधानानुपपत्तेः॥ 26 ॥

मनु के श्लोक ऊर्ध्वं पितुश्चेत्यादि के अनुसार माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्रों का तत्काल स्वत्व होता है। अतः उसी समय विभाजन कर लेना चाहिए क्योंकि विभाजन नियम एवं काल नियम को बतलाता है॥ 26 ॥

Manu, before cited, declares property, on the father's demise, by authorizing partition then.

Hence (that is, because property is not vested in sons, while the father lives, or because property is not by birth, but by survival, or because the demise of the ancestor is a requisite condition) the passage before cited, beginning with the words "after the (death of the) father," being intended to declare property vested at that period, (namely, at the moment of the father's decease) recites partition which, of course, then awaits the pleasure (of the successor). For it cannot be a precept, since the same result (respecting the right of partition, at pleasure), was already obtained (as necessary consequence of a right of property).

न च नियमः सम्भवति। 'एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया'। इति मनुविरोधात्। दृष्टार्थत्वाच्च विभागस्य न तन्नियमः, कालनियमो वा सम्भवति ॥ 27 ॥

जीमूतवाहन ने विभाजन के नियम को स्वीकार नहीं किया है क्योंकि नियम से अदृष्ट फल की प्राप्ति होती है परन्तु विभाजन तो साक्षात् फल प्रदान करता है। इस प्रसंग में मनु का श्लोक एवं सह वसेयु - इत्यादि का मत है कि 'पिता की मृत्यु के पश्चात् भाई पृथक रहे अथवा सम्मिलित होकर रहें उनकी इच्छा पर निर्भर है क्योंकि दोनों प्रकार से ही धर्म की वृद्धि होती है। मनु के इस कथन से स्पष्ट है कि

विभाजन दृष्टार्थ को बतलाता है न कि अदृष्टार्थ को। अतः विभाजन को नियम नहीं माना जा सकता।। 27 ।।

He neither enjoins partition nor restricts it to that time.

Nor can it be a restrictive injunction. For, as that is contrary to the text of Manu, "Either let them thus live together; or let them dwell apart for the sake of religious merit;" and as it produces visible consequences only (not any unseen or spiritual result), it can neither be an injunction for an immediate partition, nor a limitation of the time.

किञ्च पितर्युपरते इत्यनन्तरकाल एव विभागः स्यात्, न तु परस्तादपि जातेष्टिवत् जातप्राणवियोगापत्तिसमानस्यात्र विरोधस्याभावात्, पितुपरमानन्तरस्य च यावज्जीवनपर्यन्तस्य स्वेच्छात एव प्राप्तवात्।। 28।।

विभाजन काल नियम भी नहीं है क्योंकि काल नियम होने से पिता की मृत्यु के तत्काल पश्चात् ही विभाजन करना पड़ेगा तभी अदृष्ट फल की प्राप्ति होगी जैसा कि जातकर्म संस्कार में पुत्र के उत्पन्न होने के तत्काल पश्चात् ही संस्कार किया जाता है क्योंकि बाद में करने से बालक की मृत्यु का भय रहेगा। अतः जातकर्म के समान विभाजन को काल नियम स्वीकार नहीं किया जा सकता। पिता के स्वत्व की निवृत्ति के अनन्तर पुत्रों के जीवन काल में किसी भी समय किसी भी दायाद की इच्छा से विभाजन हो सकता है इसके लिए कोई निश्चित समय निर्धारित नहीं किया जा सकता।। 28 ।।

It would be a limitation to that particular moment: Or would be superfluous if taken with greater latitude.

Besides, partition would be admissible, only at the moment immediately following the father's decease and not at any later period; for there is not in this instance, as in that of a sacrifice on the birth of a child, an objection analogous to the hazard of the new born infant's life : and partition to be made at any time after the father's demise, while the sons live and at their pleasure, is already obtained (as a necessary result of obvious

reasoning, without need of a special precept for the purpose.

अतो जीवति पितरि, सत्यपि पुत्राणां स्वाम्ये, विभागनिषेधार्थं मनुवचनम् वाच्यम्, तच्चान्याय्यम्; अस्वार्थपरत्वापत्तेः।। 29 ।।

मनु के श्लोक (9/104) के अनुसार माता-पिता के जीवित रहते हुए पुत्रों का स्वामित्व होने पर भी विभाजन का निषेध है। जीमूतवाहन का मत है कि मनु के वचन में शब्दों से तो पुत्रों के स्वत्व की प्राप्ति नहीं हो रही। यदि स्वार्थ नहीं लेंगे तो अस्वार्थ लेने पर कठिनाई उत्पन्न हो जाएगी जो कि उचित नहीं है।। 29।।

It cannot intend a prohibition a prohibition in the father's life-time.

Therefore, the text of Manu must be argued (by you) to intend the prohibiting of partition, although the son's right subsist during the life of the father. But that is not maintainable. For it would thus bear an import not its own.

अतो जीवतोः पित्रोर्धने पुत्राणां स्वाम्यं नास्ति, किन्तू-परतयोरिति ज्ञापनार्थं मन्वादिवचनम्। एकः शब्दः, अपरश्चार्थः।।30।।

अतः माता-पिता के जीवनकाल में पुत्रों का स्वत्व नहीं होता अपितु पिता के स्वत्व की निवृत्ति से ही पुत्रों का स्वत्व होता है।।30।।

Manu correctly interpreted, denies the right of sons during the life of parents and affirms it after their demise.

Hence the texts of Manu and the reset (as Devala See 18) must be taken as showing, that sons have not a right of ownership in the wealth of the living parent, but in the estates of both when deceased. One position is conveyed by the terms of the text; the other by its import.

न चोपरममात्रमेव विवक्षितम्, किन्तु पतितप्रव्रजित-त्वाद्युपलक्षयति, स्वत्वविनाशहेतुतासाम्यात्।। 31।।

स्वत्व की निवृत्ति मृत्यु से ही विवक्षित नहीं है अपितु पतित, संन्यासी आदि से भी स्वत्व की निवृत्ति होती है। इन तीनों में स्वत्व के विनाश की साम्यता पाई जाती है।। 31 ।।

Demise includes other causes of divestiture of property.

Mere demise is not exclusively meant for that intends also the state of a person degraded, gone into retirement, or the like; by reason of the analogy, as occasioning an extinction of property.

तदाह नारदः -

'भातुर्निवृत्ते रजसि दत्तासु भगिनीषु च।
विनष्टे वाप्यशरणे पितर्य्युपरतस्पृहे'।। 32।।

(ना0 स्मृ0 13-3-30)

विनष्टे-पतिते, अशरणे-गृहस्थाश्रमरहिते। यदा निवृत्ते नापि मरणादिति पाठः, तदा रमणान्निवृत्ते जीवति निस्पृह इति पाठान्तरमनाकरम्।। 33 ।।

नारद ने कई प्रकार से स्वत्व की निवृत्ति बतलाई है यथा माता के रजोधार्म से निवृत्त होने पर, भगिनियों के विवाहित होने पर पिता के पतित, गृहस्थाश्रमरहित एवं किसी भी प्रकार की स्पृहा न होने पर।। 32-33 ।।

Nārada enumerates several.

Accordingly Nārada says: "When the mother is past childbearing, and the sisters are married, or if the father be lost, or no longer an householder, or if his temporal affections be extinct.

His text explained. Various readings noticed.

"Lost" signifies degraded: "no longer a householder," having quitted the order of a householder. If the reading be "when he is exempt from death" then the sense is when being exempt from death (that is alive), he is devoid of affections." The variation in the reading is unfounded.

अत्रप्युपरत-स्पृहत्वादिना पुत्रणां स्वत्वं पितृधने भवतीति ज्ञापनादयमेकः कालो विभागश्चेच्छाप्राप्तोऽनूद्यते।। प्राप्त्यनु-सारित्वाच्चानुवादस्य, स्वामित्वाच्च प्राप्तेः।।34।।

यहाँ पर (नारद के श्लोक से) उपरतस्पृहादि अर्थात् किसी प्रकार की स्पृहा का अभाव पिता के धन में पुत्रों के स्वत्व का कारण होता है। यह विभाजन का एक काल पुत्रों की इच्छा से होता है।। यहाँ एक शंका उपस्थित होती है कि इच्छा की तो प्राप्ति है नहीं तो उसका अनुवाद किस प्रकार होगा? क्योंकि नियम है कि 'प्राप्तिपूर्वक प्रतिषेधः' अर्थात् निषेध उसी का होता है जिसकी प्राप्ति हो। जीमूतवाहन का इस सम्बन्ध में मत है कि पिता के स्वत्व की निवृत्ति होने पर ही पुत्रों का स्वामित्व होता है। इसके साथ ही इच्छा सम्बद्ध है अर्थात् स्वामित्व में ही इच्छा का अनुवाद है।। 34 ।।

By authorising partition, he declares property to be then vestd.

Here also, to show that the sons' property in their father's wealth arises from such causes as the extinction of his worldly affections, this one period of partition, known to be at their pleasure, is recited explanatorily : for the recital is conformable to the previous knowledge; and the right of ownership suggests that knowledge. The recital is conformable to the previous knowledge - How is it a recital of what was known to at their will; since will is not even mentioned? The author replied, "It is conformable to the previous knowledge". Without will, there is no partition, therefore, by declaring parition, will is suggested. The recital of partition conforms to that. (*Maheśvara*).

एकस्यापि स्वधने स्वाम्यादेकेच्छयापि विभागप्राप्तेः 'समेत्ये' ति (मनु 9-104) सहितत्वं पक्षप्राप्तमनूद्यते। अन्यथा साहित्यवत् बहुत्वस्याप्यवगतेः द्वयोर्विभागो न स्यादेव, द्वयोर्विभागप्रतिपादकशास्त्राभावात्।। 35।।

मनु के श्लोक 9/204 में समेत्य शब्द अधिक भाइयों के विभाजन का निर्देश करता है। अतः एक या दो भाइयों का विभाजन ही नहीं होगा। इस शंका का समाधान करते हुए कहा जाता है कि एक पुत्र का भी स्वधन में स्वामित्व होने पर उसकी इच्छा से विभाजन हो सकता है। 'समेत्य' शब्द में एक या एक से अधिक भाइयों का समावेश है क्योंकि समेत्य शब्द को यदि अधिक भाइयों के अर्थ में लेंगे तो दो भाइयों का विभाजन ही नहीं होगा क्योंकि शास्त्र में ऐसे वचनों का अभाव है।। 35।।

Partition may be demanded by any one of the co-heirs.

Since any one parcener is proprietor of his own wealth, partition at the choice even of a single person is thence deducible, and concurrence of heirs, suggested as one case of partition, is recited explanatorily in the text the brethren being assembled etc." Else, since assemblage implies many, there could be no distribution between two; for no passage of law expressly propounds a division between two co-heirs.

ननूपरते पितरि ज्येष्ठ एव धनाधिकारी, नेतरे। यथा-

'ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात् पित्र्यं धनमशेषतः।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा।।'

मनु0 9-105।

ज्येष्ठोऽत्र पुन्नामनरकव्यावर्तकोऽभिप्रेतः, न तु जीवदपेक्षः। यथा मनुः-

'ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः।
पित्तृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति।।'
'यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते।
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान् विदुः।।'36।।

मनु0 9-106, 107।

ननु कहकर पूर्वपक्ष एक अन्य आक्षेप करता है कि पिता की मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र ही धन का अधिकारी होता है, शेष नहीं यथा

ज्येष्ठ पुत्र ही पिता के सम्पूर्ण धन को प्राप्त करता है। शेष भाई इस तरह जीवन व्यतीत करते हैं जिस प्रकार पिता के जीवनकाल में करते थे। जीमूतवाहन के अनुसार यहाँ ज्येष्ठ से अभिप्राय 'पुं' नामक नरक से रक्षा करना है न कि जीवित रहने की अपेक्षा यथा मनु के मतानुसार ज्येष्ठ पुत्र की उत्पत्ति मात्र से मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है और पितृ ऋण से छूट जाता है वही सब कुछ प्राप्त करने का अधिकारी होता है। अपि च पिता जिस पुत्र के उत्पन्न होने से पितृऋण से छूट जाता है और अमृतत्त्व को प्राप्त करता है वही धर्म से उत्पन्न पुत्र है, अन्य (कनिष्ठ पुत्र) काम वासना से उत्पन्न पुत्र हैं।। 36।।

Is not the first born sole heir? as hinted by Manu.

Is not the eldest son alone entitled to the estate, on the demise of the co-heirs? and not the rest of the brethren? for Manu says: "The eldest brother may take the patrimony entire; and the rest may live under him, as under their father." And here eldest intends him who rescues his father from the hell called *Put,* and not the senior survivor. "By the eldest, as soon as born, a man becomes father of male issue and is exonerated from debt to his ancestors; such a son, therefore, is entitled to take the heritage. That son alone, on whom he devolves his debt, and through whom he tastes immortally, was begotten from a sense of a duty : others are considered as begotten from love of pleasure."

नैतत्। सर्वेच्छाधीनज्येष्ठाधिकारश्रुतेः। यथा नारदः -

'विभृयाद्वेच्छतः सर्वान् ज्येष्ठो भ्राता यथा पिता।
भ्राता शक्तः कनिष्ठो वा शक्त्यपेक्षा कुले स्थितिः।।

(ना0 स्मृ0 13-5।)

सर्वेच्छया कनिष्ठोऽपि शक्तः सन् बिभृयादिति।। ज्येष्ठता चातन्त्रम्।

यथा मनुः -

'एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया।
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक् क्रिया।

मनु: 9-111।

सह पृथग्वेति पदाभ्याम्, काम्ययेति चेच्छाया विकल्पकत्वं दर्शयति॥37॥

यह ठीक नहीं है। सब की इच्छा से ही ज्येष्ठ पुत्र को अधिकार प्राप्त. है जैसे नारद ने कहा है -

ज्येष्ठ भाई सब की इच्छा से अन्य भाइयों का पिता के समान पालन करे। अथवा छोटा भाई भी समर्थ होने पर अन्य भाइयों का पालन कर सकता है क्योंकि परिवार की स्थिति शक्ति पर निर्भर है अर्थात् योग्यता की अपेक्षा रखती है। इस प्रकार सब की अनुमति से छोटा भाई भी समर्थ होने पर पालन कर सकता है। ज्येष्ठता अतन्त्र है। अर्थात् स्पष्ट नियम नहीं है। यथा मनु ने कहा है - इस प्रकार वे (छोटे भाई) एक साथ रहें अथवा धर्म की इच्छा से अलग अलग रहें। अलग अलग रहने से (पंचमहायज्ञादि कार्य सब भाइयों को अलग अलग करने के कारण) धर्मवृद्धि होती है अतएव भाइयों को अलग-अलग रहना भी धार्मयुक्त है।

सह एवं पृथक् - इन पदों में इच्छा से विकल्प बताया है॥37॥

No But he, or any capable brother, may assume the management with the consent of the rest, as declared by Nārada.

Not so : for the right of the eldest (to take charge of the whole) is pronounced dependent on the will of the rest. Thus Nārada says: "Let the eldest brother, by consent, support the rest, like a father; or let a younger brother, who is capable, do so the prosperity of the family depends on ability. By consent of all even the youngest brother being capable may support the rest. Primogeniture is not a positive rule. For Manu declares: "Either let them thus live together, or let them live apart for the

sake of religious merit : since religious duties are multiplied apart, separation is, therefore, lawful. By the terms "together or apart" and "for the sake," he shows it optional at their choice.

तदेवं पितृस्वत्वापगम एकः कालः अपरश्चानपगते एव पितुः स्वाम्ये पितुरिच्छयेति कालद्वयम्।। 38 ।।

इस प्रकार विभाजन के दो काल हैं - एक पिता के स्वत्व के अपगम अर्थात् समाप्ति पर और दूसरा उसकी (पिता की) इच्छा पर जब पिता का सम्पत्ति पर अधिाकार है।। 38 ।।

Two periods of partition are admitted.

Thus there were two periods of partition : one, when the father's property ceases; the other by his choice, while his right of property endures.

न पुनः पितर्य्युपरत इत्येकः कालः, पितर्य्युपरतस्पृहे मातुश्च निवृत्ते रजसीत्यपरः, अनिवृत्तेऽपि मातुरजसि पितरि सस्पृहे तदिच्छयेति कालत्रयमादरणीयम्, मातुरजोनिवृत्तेः पित्रुपरतस्पृहत्वविशेषणत्वे।

त्रिंशद्वर्षो वहेत् कन्या हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः।।

मनु 9-24।

इति मनुना विवाहकालविधानात् 'वनं पञ्चाशतो व्रजेद्' इत्याश्रमान्तरगमनकालविधानात्। तदा च रजोनिवृत्तेर्मातुरसम्भवे पितरि चोपरतस्पृहे वानप्रस्थे तत् पुत्रणामिच्छतामप्यविभागप्रसङ्गात्।। 39 ।।

विभाजन के काल सम्बन्धी विषय पर आचार्यों के विभिन्न मत है यथा (1) पिता की मृत्यु के उपरान्त, (2) पिता के उपरतस्पृह होने तथा माता के रजोधर्म से निवृत्त होने पर, (3) माता के रजोधर्म से अनिवृत्त होने पर पिता की इच्छा से विभाजन। यहाँ पर माता की रजोधर्म से निवृत्ति पिता के उपरत स्पृहत्व का विशेषण है।

जीमूतवाहन ने उपर्युक्त मत का खण्डन करते हुए मनु का श्लोक उद्धृत किया है कि तीस वर्ष की अवस्था वाला पुरुष बारह वर्ष की अवस्था वाली सुन्दरी कन्या के साथ विवाह करे। अथवा शीघ्रता करने वाला चौबीस वर्ष की अवस्था वाला पुरुष आठ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे। इस प्रकार मनु द्वारा विवाह काल का विधान करने से 'पचास वर्ष की आयु वाला पुरुष वन जाए' ऐसा कहकर वानप्रस्थ आश्रम में जाने का समय बताया गया हैं इस प्रकार यदि माता की रजोधर्म से निवृत्ति को पिता के उपरतस्पृहत्व का विशेषण मानेंगे तो पुत्रों की इच्छा होने पर भी विभाजन नहीं होगा क्योंकि पिता के वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने के समय आवश्यक नहीं कि माता रजोधर्म से निवृत्त हो (जैसा मनु द्वारा बताई गई विवाह काल की व्यवस्था से स्पष्ट होता है) अत: रजोधर्म से निवृत्ति पिता के उपरतस्पृहत्व का विशेषण नहीं हो सकता।। 39।।

Not three periods; reckoning for one, the time when the ancestor's worldy inclinatins cease, his wife being then incapable of bearing more issue.

But three periods must not be admitted; one, when a father dies; another, when he is devoid of worldly regards, and the mother's courses have ceased; and a third by his own choice, while the mother continues to be capable of bearing children and the father still retains temporal affections. For, if the cessation of the mother's courses be joined, as a condition, with the extinction of the father's worldly inclinations, it might be concluded, that partition could not take place among sons, however desirous of it, when the father becomes a hermit (his temporal propensities being extinguished); since the cessation of the mother's courses cannot yet have happened (while she is still between thirty and forty years of age) : for the nubile age, as ordained by Manu, is twelve years for a girl to be married to a man aged thirty and eight years for one to be espoused by a man aged twenty-four; and the age prescribed for entering into another order if fifty years.

निर्विशेषणमुपरतस्पृहत्वमेव पितृधनविभागकाल इति चेत्, न। अनुपरतस्पृहे पितरि पतितेऽप्यविभागप्रसङ्गात्।।40।।

यदि कहा जाए कि पिता का उपरतस्पृहत्व निर्विशेषण है अर्थात् पिता की स्पृहा का उपरम हो जाने पर ही पितृधन का विभाजन होता है तो यह उचित नहीं क्योंकि इस प्रकार पिता के निस्पृह न होने पर यदि वह पतित है तो भी विभाजन नहीं होगा।। 40 ।।

Or without that condition.

If it be said, the examination of passions, without any ondition annexed to it, marks the period for a division of the er's estate : that is denied; for it might be thence inferred, rtition would not take place, although the father were a d person, if he were not at the same time devoid of regard.

यमप्यपरः कालः इत्यभिधाने कालचतुष्टयापत्तिः – :, पतितत्वम्, निस्पृहत्वम्; इच्छा चेति।। 41 ।।

प्रकार विभाजन के चार काल हो जायेंगे – (1) पिता की पतित, (3) निस्पृह, (4) इच्छा से।। 41 ।।

periods must else be admitted : viz. demise, dation, disregard of worldly objects, choice.

But, if this be pronounced to be another peiod of partition, then four distinct periods would arise: 1. the demise of the father; 2. his degradation; 3. his disregard of secular objects; 4. his own choice.

यच्च कार्य्याक्षमे पितरि पुत्राणां विभागे स्वातन्त्र्यमुक्तम्, तत् वचनानभिज्ञत्वेन। तथा च हारीतः :- ''जीवति पितरि पुत्रणामर्थादानविसर्गाक्षेपेषु न स्वातन्त्र्यम्, कामं दीने, प्रोषिते, आर्त्तिगते वा ज्येष्ठोऽर्थाश्चिन्तयेत्। सुव्यक्तमाहतुः शङ्खलिखितौ 'पितर्यशक्ते व्यवहारान् ज्येष्ठः प्रतिकुर्यात्, अनन्तरो वा कार्यज्ञस्तदनुमतः, न त्वकामे पितरि रिक्थविभागः।

वृद्धे, विपरीतचेतसि, दीर्घरोगिणि वा ज्येष्ठ एव पितृवदर्थान् पालयेदितरेषां ऋक्थमूलं हि कुटुम्बम्, अस्वतन्त्राः पितृमन्तो मातुरप्येवमवस्थितायाः' इति॥ 42 ॥

पिता कार्य करने में असमर्थ हो तो पुत्रों को विभाजन करने की स्वतन्त्रता है। यह वचन अनभिज्ञ है अर्थात् विरुद्ध वचन है। हारीत के अनुसार - पिता के जीवित रहने पर पुत्रों को धन का दान करने में खर्च करने में और आक्षेप करने में स्वतन्त्रता नहीं हैं यदि पिता दीन हो, विदेश गया हो, उसका स्वास्थ्य खराब हो तो बड़ा भाई धन की चिन्ता करे अर्थात् देखभाल करे। शंखलिखित ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि पिता कार्य करने में असमर्थ है तो बड़ा भाई सम्पत्ति को प्राप्त करे अथवा उसकी अनुमति से अनन्तरवर्ती भाई यदि कार्य करने में कुशल है तो वह सम्पत्ति की देखभाल करे। पिता की इच्छा न होने पर सम्पत्ति का विभाजन नहीं होगा। वृद्ध होने पर, मस्तिष्क के विपरीत होने पर, दीर्घ रोग से ग्रस्त होने पर ज्येष्ठ भाई पिता के समान सम्पत्ति को सुरक्षित रखे। कुटुम्ब के पालन के लिए सम्पत्ति ही मूल है। पिता की जीवित रहने पर सब भाई अस्वतन्त्र हैं। इसी प्रकार माता के अवस्थित अर्थात् जीवित रहने पर सब भाई अस्वतन्त्र हैं॥ 42 ॥

The son's power of making a partition, in case of the father's incapacity, is an erroneous supposition : contrary to express passages of Hārīta, Śaṅkha and likhita.

...lleged power of sons to make a partition, when
...ble of business (by reason of extreme age)
...ugh ignorance of express passages of
... Thus Hārīta says : "While the father
...ependent power in regard to the receipt,
...ent of wealth. But, if he be decayed,
...flicted with disease, let the eldest son
... as he pleases." So Śaṇkha and Likhita
... : "If the father be incapable, let the eldest
manage the affairs of the fimily, or, with his consent, a younger brother conversant with business. Partition of the wealth does

not take place if the father be not desirous of it, when he is old, or his mental faculties are impaired or his body is afflicted with a lasting disease. Let the eldest, like a father, protect the goods of the rest; for (the support of) the family is founded on wealth. They are not independent, while they have their father living, nor while the mother survives."

एतद्वचनद्वयं कार्य्याक्षमे दीर्घरोगिणि च पितरि विभागं निषिध्य, ज्येष्ठ एव गृहं चिन्तयेत्, तदनुजो वा कार्यज्ञ इत्याह। अतः न त्वकामे पितरीत्येतदेव कार्य्याक्षमे पितरि रिक्थविभाग इति भ्रान्तलिखितम् ॥ 43॥

इन दोनों वचनों (हारीत एवं शंखलिखित) के अनुसार पिता के कार्य करने में असमर्थ अथवा रोगी होने पर ज्येष्ठ पुत्र ही नहीं अपितु कनिष्ठ पुत्र भी योग्य होने पर कुटुम्ब की देखभाल कर सकता है। अतः पिता के असमर्थ होने पर विरोधी पक्ष वाले जो विभाजन की बात करते हैं उनका यह कथन असंगत है।। 43 ।।

Which forbid partition in such case a[illegible]rovide for the care of the estate. An erroneous[illegible]

These two passages, [illegible] the father is incapable of busine[illegible] a lasting disorder, direct, that t[illegible] the household, or a young[illegible] business. The text last cited[illegible] desire it not:" and it was by m[illegible] incapable of business, partiti[illegible]

तस्मात् पतितत्वनिस्पृ[illegible] इत्येकः कालः। अपरश्च सति स्वत्वे तदिच्छात इति कालद्वयमेव युक्तम्।। 44 ।।

इस प्रकार से पिता के धन के विभाग के दो काल युक्त हैं - (1) पिता के समाज से पतित, निस्पृह, मरने एवं सम्पत्ति पर स्वत्व समाप्त होने पर, (2) स्वत्व होते हुए उसकी इच्छा से सम्पत्ति का विभाजन।। 44 ।।

Two periods are acknowledged : I[st], when the owner's property ceases; 2[nd] when he chooses to divide.

Therefore two periods only are rightly affirmed : one, when property ceases by the owner's degradation from his tribe, disregard of temporal matters, or actual demise; the other by the choice of the father, while his property still subsists.

'मातुर्निवृत्ते रजसि' (ना० 13-3) इति तु पितामहादिधनाभिप्रायम्, निवृत्ते रजसि पुत्रान्तरसम्भावना-भावात्। तदानीमपि पितुरिच्छयैव पुत्राणाम् विभागः, अनिवृत्ते रजसि क्रमागतधनविभागे पश्चाज्जातानां वृत्तिलोपापत्तेः॥ नचासौ युक्तः,

ये जाता येऽप्यजाता वा ये च गर्भेव्यवस्थिताः।
वृत्तिं तेऽपि हि काङ्क्षन्ति वृत्तिलोपो विगर्हितः॥
इति मनुवचनात्॥ 45 ॥

विभाजन के काल के विषय में 'माता की रजोधर्म से निवृत्ति होने पर' मत का खण्डन करते हुए जीमूतवाहन कहते हैं कि माता की रजोधर्म से निवृत्ति पितामहधन से सम्बद्ध है, पितृधन से नहीं, क्योंकि माता के निवृत्तरजस्का होने पर पुत्र के उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती और तभी पिता की इच्छा से पुत्रों में पितामहधन का विभाजन होता है। यदि माता के अनिवृत्त-रजस्का होने पर पैतृक धन का विभाजन होगा तो मनु के वचन का उल्लंघन हो जाएगा। मनु का कथन है कि जो पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं या जो उत्पन्न नहीं हुए या जो गर्भ में स्थित है वे सब भरण की आकांक्षा करते हैं। अतः वृत्ति का अपव्यय निन्दित है।। 45।।

The restriction concerning the father's wife being incapable of child bearing regards the patrimony.

The condition "when the mother is past child-bearing" regards wealth inherited from the paternal grand father. Since other children cannot be borne by her, when her courses have

ceased, partition among sons may then take place : still, however, by the choice of the father. But, if the hereditary estate were divided, while she continued to be capable of bearing children, those, born subsequently, would be deprived of subsistence. Neither would that be right : for a text expresses, "They who are born and they who are yet unbegotten and they who are actually in the womb, all require the means of support : and the dissipation of their hereditary maintenance is censured.

यत एव पितृधने कालद्वयम्, अत एव मनुगौतमादिभिर्मृतपदं परित्यज्य ऊर्ध्वमित्युक्तम्। 'ऊर्ध्वं पितुरि'ति (मनु0 9-104 गौ0 2-21) पितुस्तदा स्वत्वापगमात् तदर्थमेवोर्द्धवमित्युक्तम्। अतोऽयमेको विभागकालः 'ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्त्वि'त्यनेन (मनु0 9-160, ना0 13-43) च सस्पृहे पितरि तदिच्छया विभागकालोऽपरो दर्शितः।। 46 ।।

पितृधान विभाजन के दो काल हैं। मनु-गौतमादि द्वारा प्रयुक्त मृत पद का त्याग करके ऊर्ध्व पद प्रयुक्त किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि पिता की मृत्यु से ही नहीं अपितु इतर कारणों से स्वत्व की निवृत्ति होने पर पुत्रों में विभाजन होता हैं यह विभाजन का एक काल है। दूसरा विभाजन का काल मनु तथा नारद के वचनों से समर्थित होता है जिन्होंने पिता के सस्पृह होने पर उसकी इच्छा से विभाजन स्वीकार किया है।। 46 ।।

Passage of the law intimate one period of partition when property ceases; and author, by the choise of the owner.

It is because there are two periods of partition, in the case of the father's wealth, that Manu, Gautama and others, avoid the word "dead", and use the term "after". Since the father's right then ceases, the term "after" is employed to express that sense. Hence this is one period of partition. Another, regulated by his choice, while he does retain worldly affections, is indicated by the text "a son born after the division".

'दत्तासु भगिनीषु चेति' (नारद 13-3) न कालार्थम्, किन्तु तासामवश्यम् दानार्थम्।

तथा -

यच्छिष्टं पितृदायेभ्यो दत्त्वर्णं पैतृकं ततः।
भ्रातृभिस्तद्विभक्तव्यमृणी न स्याद्यथा पिता॥

ना0 13-32।

इदं नारदवचनं पित्रर्णशोधनावश्यं भावार्थम्, न विभागकालार्थम्॥ 47 ॥

'दत्तासु भगिनीषु चे'ति नारद (133) के श्लोकानुसार यह वचन काल का निर्देश नहीं करते अपितु भगिनियों के विवाह के लिए आवश्यक धन देना चाहिए तथा पैतृक सम्पत्ति में जो भी धन हो यदि किसी को ऋण देना हो तो उसको देकर शेष धन को भाइयों को आपस में बाँट लेना चाहिए जिससे पिता ऋणी न रहे (ना0 13-32) यह नारद का वचन पिता के ऋण को अवश्य दूर करना चाहिए इस अर्थ का निर्देश कहता है, विभाजन के काल का नहीं॥ 47॥

The restriction concerning the marriage of sisters inculcates the obligation of disposing of them in marriage, like an injunction concerning debts of the father.

The condition "and when the sisters are married" does not intend a distinct period, but inculcates the necessity of disposing of them in marriage : as the text of Nārada, "What remains of the paternal inheritance over and above the father's obligations and after payment of his debts, may be divided by the brethren; so that their father continue not a debtor," is intended to inculcate the obligation of paying the father's debts, not to regulate the time of partition.

अस्माच्च नारदवचनादयमर्थः सिद्ध्यति तद्विभागकर्तृभिरुत्तमर्णानुमत्यैव पित्रादिऋणं विभजनीयम् परिशोध्यं वा, शोधनावशिष्टधनविभागप्रतिपादनस्यैतत्प्रयोजनत्वात्। अत एव

मातृधनस्यापि ऋणविशिष्टस्य विभागमाह याज्ञवल्क्यः-

'मातुर्दुहितरः शेषमृणात् ताभ्य ऋतेऽन्वयः' (याज्ञ०स्मृ० 2-118) एतच्च विस्तरेण ऋणादाने वक्ष्यते।। 48 ।।

इस प्रकार नारद के वचन से यह सिद्ध होता है - पितादि की सम्पत्ति में ऋण लेने वालों की अनुमति से ऋण देकर पितादि की सम्पत्ति को बाँट लेना चाहिए। परिशोध्यं वा अथवा शोधन से अवशिष्ट धन को बाँट लेना चाहिए। अतएव माता के धन में भी ऋण से बचे हुए धन में विभाग याज्ञवल्क्य ने बताया है - ऋण से शेष माता के धन को पुत्री विभाग कर ले। यह वचन विस्तार से ऋणादान प्रकरण में कहेंगे।। 48 ।।

For the father's debts must be discharged or be apporitoned on the co-heirs; before partition of his wealth. And the mother's debts, before her goods are divided; as Yājñyavalkya directs.

From that text of Nārada, it results, that co-heirs, making a partition, may apportion the debts of their father or other predecessor, with the consent of the creditors, or must immediately discharge the debts. For such is the purpose of ordaining a partition of the residue after payment of debts. Accordingly Yājñavalkya propounds the distribution of a mother's wealth, remaining over and above her debts. "Daughters share the residue of their mother's property, after payment of her debts : and the male issue, in default of daughters." This will be fully considered under the head of debts.

यद्वा दत्तासु भगिनीषु मातृधन पुत्रैरेव विभजनीयम्, अदत्तासु ताभिः सह साधारणम्, एतच्चावसरे वाच्यम्।।49।।

यदि सब बहनें विवाहित हों तो माता के धन को पुत्रों द्वारा बाँट लेना चाहिए। यदि अविवाहित हो तो सबका साधारण धन होगा। इसका विस्तार से वर्णन स्त्रीधन प्रकरण में बताएंगे।। 49 ।।

The restriction concerning daughters may regard the succession to their mother's goods.

Or the restriction may signify, that the mother's effects should be shared by the sons, if their sisters have been given in marriage; but, if, they be unmarried, the inheritance is held in common with them. This will be explained in due time.

एवं तावत् पितृधनविभागस्य कालद्वयमप्युक्तम्।।50।।

इस प्रकार पिता के धन के विभाजन के दो काल हैं।। 50 ।।

Conclusion. The periods for dividing the father's possessons are two.

It is thus established (by reasoning, as well as by positive law), that two periods exist for the partition of wealth appertaining to a father (whether acquired by himself or inherited from ancestors).

इति पारिभद्रीय-महामहोपाध्याय - जीमूतवाहनकृते धर्मरत्नान्तर्गते दायभागे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः।

द्वितीयोऽध्यायः

सम्प्रति पितामहधनविभागकालोऽभीधीयते। तत्र बृहस्पति :-

'पित्रोरभावे भ्रातृणां विभागः सम्प्रदर्शितः।
मातुर्निवृत्ते रजसि जीवतोरपि शस्यते॥'1॥

अब पितामहधन के विभागकाल का वर्णन किया जाता है। बृहस्पति के मतानुसार माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् भाइयों द्वारा विभाग दिखलाया गया है। पिता के जीवन काल में पिता की इच्छा से यदि माता रजोधर्म से निवृत्त हो चुकी हो॥ 1॥

Bṛhaspati authorises partition when parents are dead, or when no more issue may be expected.

In the next place, the period for the distribution of an estate left by a paternal grandfather or other ancestor, is propounded. On that subject Bṛhaspati says, "On the demise of both parents, participation among brothers is allowed: and even while they are both living, it is right if the mother be past child-bearing."

नास्य वचनस्य पितृधनगोचरत्वम्, 'ऊर्द्ध्वं विभागाज्जातस्त्वित्यस्य (मनु0 9-216, ना. 13/44) निर्विषयत्वापत्तेः। निवृत्ते रजसि पुत्रोत्पत्तेरभावात्। मातृधनविषयत्वञ्चास्य नाशङ्कनीयम्। मातुरेव निर्धनत्वापत्तेः, अतो निवृत्ते रजसीति पितामहादिनधनविषयम्॥2॥

यह वचन पितृधन विषयक नहीं है अपितु पितामहधन से सम्बन्धित है। ऊर्ध्वं विभागात् जातः इत्यादि मनु, नारद के वचन (विभाजन के अनन्तर उत्पन्न, पुत्र पिता के धन को प्राप्त करता है)

निरर्थक हो जाएंगे यदि पितृधन विषयक माना जाए क्योंकि इस स्थिति में माता के रजोधर्म से निवृत्त होने पर पुत्र के उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहेगी। अत: बृहस्पति का वचन पितामहधन विषयक ही है। यदि यह कहा जाए कि 'मातुर्निवृत्ते रजसि' यह पद मातृधन विषयक है तो यह युक्ति भी उचित नहीं है क्योंकि माता के रजोधर्म से निवृत्त होने पर यदि मातृधन का विभाजन होगा तो वह अपने जीवनकाल में ही धनहीन हो जाएगी। अत: माता की रजोधर्म से निवृत्ति पितामह धन विषयक है।। 2।।

This relates to property ancestoral. For the restriction concerning the wife being passed child-bearing regards that.

This passages does not relate to the father's wealth; for the text, concerning the exclusive right of a son born after partition, would be without relevancy: since there can be no son born when the woman is past child-bearing. Nor can it be supposed to relate to the mother's goods; for she would thus be script of her wealth. The condition, that she be past child-bearing must then relate to the estate of the grant-father or other ancestor.

न चेच्छामनपेक्ष्य रजोनिवृत्तेर्विभागनिमित्तत्वं सम्भवति, अनिच्छया विभागाभावात्।।3।।

यदि यह कहा जाए कि माता की रजोधर्म से निवृत्ति मात्र से ही पितामहधन का विभाजन हो जाता है इसमें किसी की इच्छा की अपेक्षा नहीं है तो यह भी उचित नहीं क्योंकि (पिता की) इच्छा के बिना विभाजन करने का अभाव है।। 3।।

It is no reason of partition, independently of the owner's choice.

Neither can the circumstance of her being past child-bearing be a cause of partition, independently of choice: for there can be no partition without a will to make it.

सत्यामिच्छायां कस्येच्छयेत्यपेक्षायाम्, ऊर्ध्वं पितुः पुत्र रिक्थं विभजेयुः निवृत्ते रजसि मातुर्जीवति चेच्छति इति गौतम (22-1-2) वचनात् पितुरेवेच्छातः इति निर्णीयते।।4।।

इस प्रसंग में किसकी इच्छा की अपेक्षा है -गौतम का वचन है कि - पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्र विभाजन करें और माता के रजोधर्म से निवृत्त होने पर पिता की इच्छा से विभाजन होता है।। 4।।

Partition is by the father's choice : as intimate by Gautam.

If it be asked, 'admitting a choice, whose must it be?" The answer is, ' the father's' as deducted from the text of Gautama; "After the (demise of the) father, let sons share his estate. Or while he lives, if the mother be past child-bearing and he desire partition."

अतः पित्रोरभाव इत्येकः कालः। पित्रोरिति द्विवचन-निर्देशात् सोदरभ्रातृणां पितृधनविभागोऽपि मातुरभाव एव कार्य्यः।। 5।।

यहाँ पित्रोरभावः - यह विभाजन का एक काल बताया गया है। 'पित्रोः' इस द्विवचन के निर्देश से माता-पिता दोनों की मृत्यु के पश्चात् ही सहोदर भाइयों में पितृधन का विभाजन होता है। यहाँ माता के भी अभाव का निर्देश दिया गया है।। 5।।

One period of partition is after the death of both parents.

Hence (since such is the import of Bṛhaspati's text) the decease of both parents is one period (for the partition of the grand-father's estate) and since "parents" are here exhibited in the dual number, a division of the father's estate, among brothers of the whole blood, ought (in strictness) to be made only after the decrease of the mother.

न तु मातृधनविभागार्थं मातुरभावस्योपादानम्, जीवतोरपीत्यस्य मातृधनगोचरत्वानुपपत्तेः अन्यधनगोचरत्व-मवश्यं वाच्यम्। तेन तत्रैव विभागे पित्रोरभावे निमित्तम्, तत्रैव जीवतोरपीत्यपिशब्देन जीवनस्यापि शस्तत्वकीर्त्तनात्,

न मातुरभावो मातृधने व्याख्येयं, एतच्च विस्तरेण वाच्यम्।। 6।।

यदि यह कहा जाए कि 'पित्रोरभावे' पद में माता का अभाव मातृधन के विभाजन के लिए प्रयुक्त हुआ है तो यह भी उचित नहीं है। क्योंकि माता का अभाव मातृधन से संबन्धित नहीं है। 'जीवतोरपि' शब्द मातृधन विभाजन का नहीं अपितु अन्य के धन अर्थात् पितामह धन के विषय में कहा गया है। जीवतोरपि में अपि शब्द से माता के जीवन को प्रशंसनीय कहा गया है। उसमें माता-पिता का अभाव निमित्त है। 'माता का अभाव' मातृधन के विषय में नहीं है क्योंकि इसका विस्तार से विवेचन किया गया है।। 6।।

This does not relate to her separate property.

The mention of the mother's demise, does not here imply partition of her goods: since the phrase "even while they are both living" cannot relate to the mother's separate property. It must be understood as relating to the property of another person, for the legality of partition in the instance of survival is there propounded, (as appears from the word even), in the same case, in which the demise of both parents was declared a reasonof distribution. The death of the mother must not be expounded as relative to her goods. This subject will be fully considered in its place.

तस्मात् पितामहादिधनस्यापि पित्रोरभाव इत्येको विभागकालः। तथा मातुर्निवृत्ते रजसि पितुरिच्छात इत्यपरः।। 7।। न तु पितुरिच्छामन्तरेण तस्य विभागः 'अनीशास्ते हि जीवतोः' (मनु 9-104) तथा -

अस्वाम्यं हि भवेदेषां निर्दोषे पितरि स्थिते।
नारद-देवलौ।। 7।।

इस प्रकार पितामहधन विभाजन का एक काल माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् है और दूसरा काल वह है जब माता के रजोधर्म से निवृत्त होने पर पिता की इच्छा होती है। पिता की इच्छा के बिना

विभाजन नहीं होता है उन दोनों के जीवित रहने पर पुत्र स्वामित्व से रहित है।। 7 ।।

One period as above. The other by the choice of the father, provided the mother be past child-bearing.

Therefore the death of both parents is one period for partition of an estate inherited from a grandfather or other ancestor and the other is by the choice of the father when the mother is past child-bearing.

'तथा जीवति चेच्छती (गो0 28-2) ति' तथा 'पितुरनुमत्य दायविभागः' (बौधायनः) तथा 'जीवति पितरि रिक्थविभागोऽनुमतेः' शङ्खलिखितौ। तदेवमादिमनु-नारद-गौतम-बौधायन-शङ्ख-लिखितादिभिरविशेषेण जीवति पितरि पुत्रणां यावद्धनगोचरास्वामित्वस्य पितुरिच्छाधीन- विभागस्य च प्रतिपादनात्, पैतामहधनविभागकालस्य च पृथगेभिरनभिधानात् पैतामहधनगोचरत्वमप्यनीशत्व-पित्रनुमतिवचनानाम्।। 8।।

मनु-नारद-देवल-बौधायन-शंखलिखित के वचनों से भी यही समर्थित होता है कि पिता के जीवित रहने पर पितामह के धन पर पुत्रों का (अर्थात् पौत्रों का) अधिकार नहीं होता और पिता की इच्छा से (पितामह धन का) विभाजन होता है।। 8।।

But not without his consent: as appears from many passages of Manu.

A division of it does not take place without the father's choice: since Manu, Nārada, Gautama, Baudhāyana, Śaṅkha and Likhita and others (in the following passes, "they have not power over it," "they have not ownership while their father is alive and free from defect., "while he lives, if he desire partition," "partition of heritage by consent of the father," "partition of the estate being authorised while the father is living") declare without restriction, that sons have not a right to any part of the estate, while the father is living and that partition awaints his

choice: for these texts, declamatory of a want of power and requiring the father's cnsent, must relate also to property ancestral; since the same authors have not separately propounded a distinct period for the division of an estate inherited from an ancestor.

यत्तु याज्ञवल्क्यवचनम् -

भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा।
तत्र स्यात्-सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः॥
(याज्ञ0 2, 222)

तस्य निरवद्यविद्योद्योतेन द्योतितः तत्त्वतोऽयमर्थः - यत्र द्वयोभ्रात्रो-र्जीवत्पितृकयोरप्राप्तभागयोरेकः पुत्रमुत्पाद्य विनष्टः, अन्यो जीवति, अनन्तरं पिता मृतः, तत्र पुत्र एव तद्धनं प्राप्नोत्वतिसन्निकर्षात्, तदर्थं 'सदृशम् स्वाम्यमि' ति वचनम्। यथा पैतामहधने पितुः स्वाम्यम्, तथैव तस्मिन्न्मृते तत्र पुत्राणामपि, न तत्र सन्निकर्ष-विप्रकर्षाभ्यां कोऽपि विशेषः। पार्वणविधिना पिण्डदानेन द्वयोरपि तदुपकारकत्वाविशेषा-दित्यभिप्रायः॥ 9॥

याज्ञवल्क्य के वचनानुसार पितामह द्वारा उपार्जित भूमि, निबन्ध, द्रव्य पर पिता और पुत्र दोनों का समान स्वामित्व होता है।

याज्ञवल्क्य के वचन की उद्योत कृत व्याख्या यह है कि -'सदृशं स्वाम्यम्' पितामह धन में पितृव्य और भ्रातृपुत्र के सम विभाजन का निर्देश करता है यथा - दो भाई जिनके पिता जीवित हैं, इनमें एक भाई की पुत्रोत्पत्ति के उपरान्त मृत्यु हो जाती है और तत्पश्चात् पिता की भी मृत्यु हो जाती है, ऐसी स्थिति में भ्रातृपुत्र अपने मृत पिता का अंश प्राप्त करता है। इस प्रकार पितामहधन में पितृव्य एवं भ्रातृपुत्र को सम अंश प्राप्त होता है। पितामहधन में जिस प्रकार पिता का स्वामित्व होता है उसी प्रकार पिता के मरने पर उसके पुत्र का स्वामित्व होता है। वहाँ पर सन्निकर्ष और विप्रकर्ष में कोई विशेष नहीं है क्योंकि दोनों ही पार्वणविधि से पिण्डदान करके पिता पितामह का उपकार करते हैं॥ 9॥

A text of Yājñavalkya concerning the equal right of father and son, cited and explained. A grandson, whose father is dead, share with his uncle the grandfather's estate.

The text of Yājñavalkya ("the ownership of father and son is the same in land which was acquired by his father or in a corrody, or in chattels") property signifies, as rightly explained by the learned Udyota, that 'when one of two brothers, whose father is living and who have not received allotments, dies leaving a son, and the other survives; and the father afterwards decease; the text, declaratory of similar ownership is intended to obviate the conclusion, that the surviving son alone obtains his estate, because he is next of kin. As the father has ownership in the grandfather's estate; so have his sons, if he be dead. There is not in that case, any distinction founded on greater or less propinquity, for both equally confer a benefit by offering a funeral oblation of food, as enjoined at solemn obsequies.' Such is the author's meaning.

अत एव मृतपितृ-पितामहकः प्रपौत्रेऽपि पुत्र-पौत्राभ्यां सह तुल्याधिकारी भवति, पिण्डदत्वाविशेषात्।। 10।।

इसी प्रकार प्रपौत्र भी पिता एवं पितामह की मृत्यु के पश्चात् पुत्र एवं पौत्र के समान ही अधिकार प्राप्त करते हैं, क्योंकि वे भी इनको पिण्डदान करने के समान रूप से अधिकारी हैं।। 10।।

And a great granson, whose father and grandfather are dead, shares the great grandfather's property.

Accordingly a great grandson, whose father (as well as grandfather) is deceased, is in like manner an equal claimant with the son and grandson. For he likewise presents a funeral oblation.

जीवति तु पितरि पुत्राणां पितामहधनस्वामित्वे सपुत्रापुत्रभ्रातृद्वयविभागे तत्पुत्राणामपि भागः स्यात्, स्वामित्वाविशेषात्।। 11।।

पिता के जीवित रहते पुत्रों का पितामहधन में स्वामित्व अर्थात् अधिकार यदि होगा तब एक भाई जिसका पुत्र है और दूसरा जो पुत्रहीन

है, इन दोनों भाइयों के विभाजन में जीवित भाई के पुत्रों को भी भाग मिलेगा क्योंकि इनका स्वामित्व भी समान रूप से है।। 11।।

If the text be otherwise expalined, grandsons, whose father is living, would participate with their father and uncle.

But, if sons had ownership during the life of their father, in their grandfather's estate, then, should a division be made between two brothers one of whom has male issue and the other has none, the children of that one would participate, since (according to your opinion) they have equally ownership.

तथा चाप्रकान्तत्वेनातदर्थत्वं वचनस्य, अनेक-पितृकाणामेव प्रक्रमात्।। 12।।

यहाँ शंका करने वाले कहते हैं कि (पूर्वपक्ष आक्षेप करता है) यहाँ पितृव्य एवं भ्रातृपुत्र के सम विभाजन का प्रसंग नहीं है। अतः याज्ञवल्क्य वचन की पूर्वोक्त व्याख्या अनुचित है। जीमूतवाहन ने इसका समाधान करते हुए कहा है कि यह व्याख्या उचित है क्योंकि याज्ञवल्क्य के वचन में भिन्न-भिन्न पिताओं से उत्पन्न पुत्रों के विभाजन का ही प्रसंग चल रहा है।। 12।।

The former interpretation agrees with the context.

It should not be objected that such cannot be the meaning of the text, as not being the subject premised: for the case of grandsons by different fathers, was the proposed subject.

निबन्धः - कार्तिक्यां कार्तिक्यामिदं दास्यामीति यन्निबद्धम्।। 13।।

प्रत्येक कार्तिक मास में मैं दूँगा अर्थात् प्रतिज्ञा से प्राप्त धन निबन्ध कहलाता है।। 13।।

1 Corrody, mentioned in the preceding text explained.

A "Corrody" (see 9) signifies what is fixed by a promise in this form, "I will give that in every month of Kārtika."

द्रव्यं भूसाहचर्यात् द्विपदमभिहितम्।। 14।।

द्रव्य से अभिप्राय भूमि के साहचर्य से दासी है।। 14।।

Chattles intend slaves.

"Chattles" From their association with land, slaves must be here meant.

अयं वा धारेश्वरपुरस्कृतो वचनार्थः इच्छया विभाग-दानप्रवृत्तस्य पितुः पैतामहधने सदृशं स्वाम्यं पुत्रैः सह, न तत्र स्वोपार्जितधन इव न्यूनाधिकविभागमिच्छातः कर्तुमर्हतीति।। 15।।

धारेश्वर ने 'सदृशं स्वाम्यं' वचन की व्याख्या इस प्रकार से की है कि इच्छा से विभाग एवं दान करने में प्रवृत्त पिता का पितामहधन में अपने पुत्रों के साथ समान स्वामित्व है। वहाँ पर (पितामहधन में) स्वार्जित धन के समान स्वेच्छा से न्यून या अधिक विभाग करने के लिए समर्थ नहीं है।। 15।।

Or the text may be understood as forbidding the unequal division of property ancestral.

Or the meaning of the text (see 9) may be as set forth by Dhāreśwara, 'A father, occupied in giving allotments at his pleasure, has equal ownership with his sons in the paternal grandfather's estate. He is not privileged to make an unequal distribution of it, at his choice as he is in regard to his own acquired wealth'.

यथा विष्णुः 'पिता चेत् पुत्रान् विभजेत्तस्य स्वेच्छा स्वयमुपात्तेऽर्थे, पैतामहे तु पितापुत्रयोस्तुल्यं स्वामित्वम्'।। 16।। (17.1.2)

विष्णु का भी यही मत है कि यदि पिता पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन करता है तो उसे स्वार्जित धन में स्वेच्छा से विभाग कर सकता है। परन्तु पितामह धन में पिता और पुत्र का तुल्य अधिकार है।। 16।।

That agrees with a passage of Viṣṇu:

So Viṣṇu says, "When a father separates his sons from himself, his will regulates the division of his own acquired

wealth. But, in the estate inherited from the grandfather, the ownership of father and son is equal."

इदं सुव्यक्तं यदि पिता पुत्रान् विभजति, तदा स्वोपात्तेऽर्थे न्यूनाधिकविभागम् स्वेच्छया पुत्रेभ्यो दद्यात्, पैतामहे तु नैतत्, यस्मात् तत्र तुल्यम् स्वामित्वम्, न पुनः पितुः स्वच्छन्दवृत्तिता।। 17।।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि यदि पिता पुत्रों में विभाजन करता है तो स्वार्जित धन का न्यून या अधिक भाग कर सकता है, स्वेच्छा से पुत्रों को दे सकता है परन्तु पितामहधन में पिता को स्वतन्त्रता नहीं है।। 17।।

The father may dsitribute his own acquisitions as he pleases, but not the patrimony.

This is very clear, when the father separates his sons from himself, he may, by his own choice, give them greater or less allotments, if the wealth were acquired by himself: but no so, if it were property inherited from the grandfather; because they have an equal right to it. The father has not in such case an unlimited discretion.

अतः पितापुत्रयोः पैतामहधने समविभागार्थं 'सदृशं स्वाम्यमिति वचनम् पुत्राणां वा विभागस्वातन्त्र्यार्थमिति मतद्वयमपि हेयम्।। 18।।

इस प्रकार पितामहधन में पिता-पुत्र का समविभाग अथवा 'सदृशं स्वाम्य' के वचन में पुत्रों को विभाग करने की स्वतन्त्रता - यह दोनों मत हेय हैं।। 18।।

The doctrine of the Mītākṣarā, concerning equal participation of father and son, and the right of the latter to require partition, is rejected.

Hence (since the text becomes pertinent by taking it in the sense above stated, or because there is ownership restricted bylaw in respect of shares and not an unlimted discretion);

both opinions that the mention of like ownership provides for an equal division between father and son in the case of property ancestral and that it establishes the son's right to require partition ought to be rejcted.

एवमेवापरमपि वचन व्याख्येयम्॥ 19॥

अन्य प्रकार से इस वचन की व्याख्या की जाती है॥ 19॥

Other texts similarly forbid an equal division.

Other texts should be explained in the very same manner.

अतः पैतामहादिधने पितुर्भागद्वयम्, पितुरिच्छात एव विभागः, न पुत्रेच्छयेति सिद्धम्॥ 20॥

पितामहधन में पिता को दो भाग प्राप्त होते हैं, पिता की इच्छा से विभाजन होता है न कि पुत्रों की इच्छा से, यही सिद्ध होता है॥ 20॥

The father takes a double share as usual; and the partition is by his choice.

It is consequently true, (since the texts above cited do not imply co-ordinate ownership) that the father has his double share of wealth inherited from the grandfather or other ancestor, and that a distribution takes place at the will of the father only and not by the choice of his sons.

यच्च मनुविष्णू –

'पैतृकन्तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात्।
न तत्पुत्रैर्भजेत् सार्द्धमकामः स्वयमर्जितम्'॥

(मनु. 9.209)

स्वार्जितत्वेन हेतुना नाकामो विभजेदिति वदन्तौ स्वयमनर्जिते पैतामहधने पितुरनिच्छयापि पुत्राणां विभागं दर्शयतः। तत्रपि विभागदानप्रवृत्तः पिता पितामहधनं स्वार्जितं नाकामो विभजेत्, अन्यत् पुनरकामोऽपि विभजेदित्यस्वेच्छात एवेत्यर्थः। न पुनः पुत्रेच्छया विभागं ज्ञापयतः॥ 21॥

मनु विष्णु के अनुसार - पैतृक द्रव्य जो उसने (असामर्थ्यादि के कारण) प्राप्त नहीं किया था और पिता ने (अपने सामार्थ्य से) प्राप्त कर लिया था। पिता का स्वयं उपार्जित धन इच्छानुसार वह विभाजित हो अथवा इच्छा न हो तो न करे।

स्वार्जित - इस हेतु के कारण बिना इच्छा के विभाजन न करे - यह कहकर पितामह के अनुद्धृत धन के अतिरिक्त धन में पिता की इच्छा न होते हुए भी पुत्रों की (अर्थात् पौत्रौं की) इच्छा से ही विभाजन होगा। जीमूतवाहन ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि विभाजन एवं दान के इच्छुक पिता द्वारा विभाजन करते समय उद्धृत सम्पत्ति पर उसकी इच्छा है कि उसका पुत्रों के साथ विभाग करे अथवा न करे परन्तु जो पैतामाहिक सम्पत्ति पिता ने स्वयं उद्धृत नहीं की (अर्थात् जो पितामह की स्वार्जित सम्पत्ति है) उसमें पिता की इच्छा न होते हुए भी विभाजन होगा। पुत्र की इच्छा से विभाजन नहीं कहा गया - यह बताया गया है।। 21।।

A passage of Manu and Viṣṇu, exempting from partition the patrimony recovered by the father, unless by his free will, does not authorise the sons to demand partition of other patrimony against his will.

"If the father recover paternal wealth (seized by strangers and) not recovered (by other shares, nor by his own father) he shall not, unless willing, share it with his sons: for in fact it was acquired by him." In this passage, Manu and Viṣṇu, declaring that he shall not, unless willing, share it, because it was acquired by himself, seem thereby to intimate a partition among sons even against the father's will, in the case of hereditary wealth not acquired (that is, recovered) by him. But here also, the meaning is, that a father, setting about a partition, need not distribute the grandfather's wealth, which he retrieved : but must so distribute the rest of it and not according to his own pleasure. Those authors do not thereby indicate partition at the choice of sons.

मणिमुक्तादौ तु पुनः पैतामहे पित्रनर्जितेऽपि स्वार्जित इव पितुरेव स्वाम्यं न्यूनाधिकविभागदानार्हत्वम्। तथा

याज्ञवल्क्यः -

'मणि-मुक्ता-प्रवालानां सर्वस्यैव पिता प्रभुः।
स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न पितामहः'॥

(या0स्मृ0-22)

पितामहश्रुतेस्तद्धनविषयकं वचनम्, मणिमुक्ताद्यु- पादाय, पुनः सर्वस्येत्युपादानात्। सर्वेषां भूम्यादिव्यतिरिक्तानां दानादिषु पितु प्रभुत्वम्, न स्थावरनिबन्धद्रव्याणाम्, तत्रपि सर्वस्येत्युपादानात्। सर्वस्य कुटुम्बवर्तनहेतोर्दानादिनिषेधाः, कुटुम्बस्यावश्यं भरणीयत्वात्॥॥22॥

पितामह के द्वारा अर्जित मणि और मोती पर पिता के स्वार्जित किए धान के समान ही न्यून और अधिक भाग देने का अधिाकार है। यथा याज्ञवल्क्य का वचन है कि मणि, मोती, मूँगा - इन सबका पिता स्वामी है और सम्पूर्ण स्थावर का न पिता और न पितामह स्वामी है। यह वचन पितामहधन से सम्बन्धित है। प्रथम पंक्ति में आया हुआ सर्वस्य पद पिता को भूम्यादिव्यतिरिक्तानां अर्थात् भूमि, निबन्ध और द्रव्य के अतिरिक्त मणि-मुक्तादि चल सम्पत्ति के दानादि करने का अधिकार देता है। द्वितीय पंक्ति में आया हुआ सर्वस्य पद पिता को कुटुम्ब के भरण-पोषण की दृष्टि से सम्पूर्ण स्थावर सम्पत्ति के दानादि करने का निषेध करता है। कुटुम्ब का भरण-पोषण करना चाहिए।। 22।।

Movables, though inherited, may be unequally divided at pleasure, like new acquisitions. So Yājñavalkya.

The father has ownership in gems, pearls and other movables, though inherited from the grandfather and not recovered by him, just as in his own acquisitions, and has power to distribute them unequally, as Yājñavalkya intimates, "The father is master of the gems, pearls and corals and of all (other

movable property) : but neither the father, nor the grandfather, is so of the whole immovable estate." Since the grandfather is here mentioned, the text must relate to his effects. But again saying "all" after specifying "gems pearls," it is shown, that the father has authority to make a gift or any similar disposition of all effects, other than land, but not of immovables, a corrody and chattels (i.e. slaves). Since here also it is said "the whole", this prohibition forbids the gift or other alienation of the whole, because (immovables and similar possessions are) means of supporting the family.

भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्।।
नरकं पीडने चास्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत्।। 23।।

जीमूतवाहन ने दक्ष के श्लोक (2/41) को उद्धृत करते हुए कहा है कि पोष्यवर्ग का पालन-पोषण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है परन्तु जो इनको कष्ट पहुँचाता है वह नरक को प्राप्त करता है। अत: बहुत प्रयत्न से इनका भरण-पोषण करना चाहिए।। 23।।

His text expounded. Manu inculcates the duty of maintaining the family.

For the maintenance of the family is an indispensable obligation; as Manu positively declares. "The supoort of persons who should be maintained is the approved means of attaining heaven. But hell is the man's protion if they suffer. Threefore (let a master of a family) carefully maintain them."

अल्पस्य तु कुटुम्बवर्तनाविरोधिनो न दानादिनिषेध: सर्वस्येत्यानर्थक्यापत्ते:।। 24।।

कुटुम्ब के भरण-पोषण में यदि विरोध नहीं होता हो तो अल्प स्थावर सम्पत्ति के दानादि करने का निषेध नहीं है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो सर्वस्य पद निरर्थक हो जायेगा।। 24।।

A small part of the immovables may be aliened, though the gift of the whole he forbidden.

The prohibition is not against a donation or other transfer of a small part not incompatible with the support of the family. For the insertion of the word "whole" would be unmeaning (if the gift of evan a small part were forbidden).

स्थावरग्रहणात् निबन्धा-द्विपदयोर्दण्डापूपन्यायात् दानादिनिषेधसिद्धिः॥ 25॥

स्थावर के ग्रहण करने से दण्डापूपन्याय से निबन्ध और द्विपद (दासी) के दानादि करने का निषेध सिद्ध हो जाता है॥ 25॥

The prohibition regards land, pensions, and slaves.

From the express mention of immovables, a prohibition is inferred by the analogy exemplified in the loaf and staff, against the gift or other transfer of a corrody or of slaves.

यदि पुनः सर्वस्थावरादिविक्रयमन्तरेण कुटुम्बवर्तनमेव न भवति, तदा सर्वव्यापि विक्रयणादिकमर्थात् सिद्धयति 'सर्वत एवात्मानं गोपायीत' (गो0ध0सू0 19.34) इति वचनात्॥ 26॥

यदि सम्पूर्ण स्थावर का विक्रय करने से भी कुटुम्ब का निर्वाह न हो तो सब कुछ बेच देना चाहिए यथा गौतम का मत है - सब उपायों से अपनी रक्षा करें॥ 26॥

But, if necessary, the whole may be sold.

But, if the family cannot be supported without selling the whole immovable and other property, even the whole may be sold or otherwise disposed of : as appears from the obvious sense of the passage; and because it is directed, that a man should by all means preserve himself.

तथा -

'स्थावरस्य समस्तस्य गोत्रसाधारणस्य च।
नैकः कुर्य्यात् क्रयं दानं परस्परमतं विना॥

विभक्ता अविभक्ता वा सपिण्डा स्थावरे समाः।
एको ह्यनीशः सर्वत्र दानाधमनविक्रये'॥

एतद्व्यासवचनद्वयेन एकस्य विक्रयाद्यनधिकार इति वाच्यम्; यथेष्टवियोगार्हत्वलक्षणस्य स्वत्वस्य द्रव्यान्तर इवात्रप्यविशेषात्॥ 27॥

समान गोत्र के होने पर स्थावर सम्पत्ति में सबका समान अधिकार है। उनमें एक भी दूसरे की अनुमति के बिना क्रय और दान नहीं कर सकता। स्थावर सम्पत्ति में विभक्त और अविभक्त सभी सपिण्ड समान हैं। उनमें एक भी दान, गिरवी और बेचने में समर्थ नहीं है। व्यास के दोनों श्लोकों से यही सिद्ध होता है कि एक को भी विक्रयादि का अधिकार नहीं है। अपनी इच्छा से विनियोग करना स्वत्व का लक्षण है जैसे अन्य द्रव्यों में होता है वैसे यहाँ भी समान है।। 27।।

Texts of Vyāsa cited. They do not disable the owner from aliening his property.

It should not be alleged, that by the texts of Vyāsa ("A single parcener may not, without consent of the rest, make a sale or gift of the whole immovable estate, nor of what is common to the family." "Separated kinsmen, as those who are unseparated, are equal in respect of immovables : for one has not power over the whole, to give, mortgage, or sell it), one person has not power to make a sale or other transfer of such property. For here also (in the very instance of land held in common) as in the case of other goods, there equally exists a property consisting in the power of disposal at pleasure.

व्यासवचनन्तु स्वामित्वेन दुर्वृत्तपुरुषगोचरविक्रय-दानादिना कुटुम्बविरोधात् अधर्मभागिताज्ञापनार्थं निषेधरूपम्। न तु विक्रयाद्यनिष्पत्त्यर्थम्॥ 28॥

व्यास के वचन से पिता को सम्पूर्ण अधिकार दिया गया है लेकिन यदि कोई दुष्ट पिता कुटुम्ब का ध्यान न रखते हुए सम्पत्ति का विक्रय कर देता है तो वह अधर्मभागी बनता है किन्तु ऐसा नहीं कहा

जा सकता कि विक्रयादि की निष्पत्ति नहीं हुई।। 28।।

They show a moral offence. But do not invalidate the transfer.

But the texts of Vyāsa (see 27), exhibiting a prohibition, are intended to show a moral offence : since the family is distressed by a sale, gift, or other transfer, which argues a disposition in the person to make an ill use of his power as owner. They are not meant to invalidate the sale or toher transfer.

एवञ्च

'स्थावरं द्विपदञ्चैव यद्यपि स्वयमर्जितम्।

असम्भूय सुतान् सर्वान् न दानं न च विक्रयः'।।

इत्येवमादिकम्, तदप्येवमेव वर्णनीयम्।। 29।।

स्वयं अर्जित स्थावर एवं दासी का सब पुत्रों की सहमति के बिना दान और विक्रय नहीं होता।। 29।।

Other passages must be similarly explained.

So likewise other texts (as this, "Though immovables or bipeds have been acquired by a man himself, a gift or sale of them should not be made by him, unless convening all the sons"), must be interpreted in the same manner. For here the words "should" "be made" must necessarily be understood.

तथाहि कर्तव्यपदमवश्यमत्रध्याहार्य्यम्।। तेन दान-विक्रयकर्तव्यतानिषेधात् तत्करणात् विध्यतिक्रमो भवति, न तु दानाद्यनिष्पत्तिः। वचनशतेनापि वस्तुनोऽन्यथाकरणाशक्तेः।। 30।।

यदि पिता को दान और विक्रय करने का निषेध है और वह कर देता है तो उसके करने से विधि का अतिक्रमण होता है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि दानादि की निष्पत्ति ही नहीं हुई। सौ वचन भी वस्तु को परिवर्तित करने में असमर्थ हैं।। 30।।

The precept is infringed, but the tranfer is not null.

Therefore, since it is denied, that a gift or sale should be made, the promot is infringed by making one. But the gift or transfer is not null : for a fact cannot be altered by a hundred texts.

अत एव नारदः -

'यद्येकजाता बहवः पृथग्धर्माः पृथक्क्रियाः।
पृथक्कर्मगुणोपेता न चेत् कार्येषु सम्मताः॥
स्वभागान् यदि दद्युस्ते विक्रीणीयुरथापि वा।
कुर्य्युर्यथेष्टं तत्सर्वमीशास्ते स्वधनस्य वै॥ 31॥

ना.स्मृ. (13.42-43)

एक ही (मनुष्य पिता) से उत्पन्न अनेक व्यक्ति जिनके अलग-अलग धर्म हैं, क्रियाएँ हैं, कर्म, गुण हैं यदि वे कार्य में अपनी सम्मति नहीं देते। यदि वे अपने भाग को देते या विक्रय करते हैं तो वे अपनी इच्छानुसार सब कुछ कर सकते हैं क्योंकि वह अपनी सम्पत्ति के अधिकारी हैं॥ 31॥

This inferenece is corroborated by a passage of Nārada.

Accordingly (since there is not in such ease a nullity of gift or alienation) Nārada says : "When there are many persons sprung from one man, who have duties apart, and transactions apart and are separate in business and character, if they be not accordant in affairs, should they give or sell their own shares, they do all that as they please, for they are masters of their own wealth.

प्रकृतमनुसरामः- तदैवमुक्तप्रबन्धेन पितामहादिधने पिता-पुत्रयोः समभागविधानानुपपत्तेः पुत्राणां विभागस्वातन्त्र्य-प्रतिपत्तिपरत्वाभावाच्च, जनकेच्छाधीनन्यूनाधिकविभाग-निराकरणार्थम्, मृतपितृकस्य भ्रातुःपुत्रस्य पितृव्येण सह तुल्याधिकारार्थं वा वचनम्॥ 32॥

इस प्रकार उक्त प्रबन्ध के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पितामहधन में पिता-पुत्र का सम विभाजन नहीं होता और पिता के जीवनकाल में पुत्रों को विभाजन करने की स्वतन्त्रता नहीं है। यदि पिता अपनी इच्छा से पितामहधन का विभाजन करता है तो वह अपनी इच्छा से न्यूनाधिक भाग नहीं कर सकता। भ्रातृपुत्र जिसके पिता की मृत्यु हो चुकी है उसका अपने पितृव्य के साथ सम विभाजन होता है।। 32।।

Recapitualtion. The text, (see 9) has been rightly expounded.

We resume the subject. Thus, for the reasons before stated, since the equal participation of father and son in the estate of the grandfather or other ancestor would be incongruous, and since it cannot be intended by the text (see 9) to confer on sons a right to demand partition; that text must either be meant to prevent an unequal distribution depending solely on the father's pleasure, (according to Dhāreśvara's interpretation; See 15) or it must intend the equal right of a nephew whose father is deceased, to share with his uncle; (conformably with the other exposition).

एवञ्च पितामहधनस्यापि पितुरिच्छयैव विभागः कार्य्यं, किन्तु मातुर्निवृत्ते रजसीति विशेषः। स्वोपात्ते तु रजोनिवृत्तिमन्तरेणापि। पितुरूर्ध्वमिति तु उभयत्रप्यविशिष्टम्।। 33।।

इस प्रकार पितामहधन में पिता की इच्छा से विभाग करना चाहिए किन्तु माता के रजोधर्म से निवृत्ति - यह विशेष है। स्वयं अर्जित सम्पत्ति में माता के रजोधर्म की निवृत्ति के बिना भी सम्पत्ति का विभाजन हो जाता है।। 33।।

Partition is by the choice of the father. When the mother is past child-bearing; if the estate be hereditary. Or after the father's demise.

Thus (since sons have not power to require partition) a division even of wealth inherited from the grandfather must be made by the sole choice of the father. But, with this difference, that is requisite, the mother should have ceased to be capable

of bearing issue : whereas, in the instance of his own acquired property, partition takes effect without that condition. But, after the demise of the father, it takes place equally in the case of both sorts of property (the father's estate or the grandfather's) without distinction.

तेन पैतामहधनेऽपि कालद्वयम्।। 34।।

इस प्रकार पितामहधन के दो काल हैं।। 34।।

The periods of partition are two.

Therefore the periods of partition are two, even in the case of wealth inherited from ancestors.

तत्र यदा पितैवेच्छातः पुत्रान् विभजति, तदा पैतामहधनात् भागद्वयं स्वयं गृह्णीयात्।

'जीवन्विभागे तु पिता गृह्णीतांशद्वयं स्वयम्'।। इति। बृहस्पतिना,

'द्वावंशौ प्रतिपद्येत विभजन्नात्मनः पिता'।। (13.12)।। इति।

नारदेन चाविशेषेण प्रतिपादनात्।। 35।।

यदि पिता की इच्छा से पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन होता है तो पितामह धन में से पिता स्वयं दो भाग ग्रहण करता है। बृहस्पति का वचन है कि - पिता अपने जीवन काल में स्वयं दो भाग प्राप्त करे। नारद ने भी सामान्य रूप से कहा है - पिता विभाजन करते हुए दो भाग प्राप्त करे।। 35।।

The father takes a double share of the patrimony; as ordained by Bṛhaspati and Nārada.

In such case, if the father voluntarily make a partition with his sons, he may reserve for himself a double share of property ancestral. For Bṛhaspati, saying "The father may himself take two shares at a partition made in his life time" and Nārada "Let the father, making a partition, reserve two shares for himself," do so ordain, without restriction.

किञ्च इतोऽपि पितामहधनात् पितुर्भागद्वयम्।। 36।।

पितामह धन से पिता दो भाग प्राप्त करे।।36।।

This is confirmed by analogy.

Besides a double share of the grandfather's wealth is the father's due by this (following) argument.

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्।
ततोऽर्द्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयन्तु यवीयसः'।।

(मनु0 9.112)

तथा -

'एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान् प्रकल्पयेत्।
उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना।।
एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्द्धं ततोऽनुजः।
अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः'।।

(मनु0 9/116.117)

एतैर्मनुवचनैः सर्वद्रस्व्यवरसहितविंश-तदर्ध-तत्तुरीयोद्धारा दर्शिताः। तथा एकांशाधिकार्धांशाधिक-चतुर्थभागाधिकभागाः प्रतिपादिताः। गौतमेनापि विंशतिभागो ज्येष्ठस्य 'मिथुनमुभयतोतद्युक्तो रथो गोवृषः मिथुनमजादीनाम्, उभयतोदत्-अश्वादि, तद् युक्तो रथः, गोयुक्तो वृषः, एतत्सर्वं ज्येष्ठस्य। तथा काणखोरकूट-वण्डा मध्यमस्यानेकाश्चेत् (3/10/6) खोरः-वृद्धः 'कूटः-वामनाकृतिः, वण्ड-विकृतलाङ्गूलः, एते मध्यमस्य' यदि बहवो भवन्ति पशवः। तथा 'अविद्धान्यायसी गृहम्, अनोयुक्त चतुष्पदाञ्चैकैकं यवीयसः सममितरत् सर्वम् (गो0 3/10/8) अविप्रभृतयः कनीयसः, अवशिष्टं सर्व समम्' विभजेरन्निति प्रतिपाद्य द्वयंशो वा पूर्वजः स्यात्, एकैकमितरेषामिति (गो0 3/10/9) सूत्रेणांशद्वयं ज्येष्ठस्योक्तम्।। 37।।

मनु के अनुसार - पिता के सम्पूर्ण धन में से ज्येष्ठ भाई का बीसवाँ भाग तथा श्रेष्ठ पदार्थ, मध्यम का चालीसवाँ भाग तथा कनिष्ठ भाई का अस्सीवाँ भाग उद्धार होता है। तथा उद्धार भाग को निकालकर समान भाग कर ले। उद्धार भाग नहीं निकालने पर भाइयों की इस प्रकार से भाग की कल्पना करे। बड़े भाई को दो अंश, मधयम भाई को डेढ़ अंश और कनिष्ठ को एक अंश प्राप्त होता है, यह व्यवस्थित धर्म है। मनु के इन वचनों से सम्पूर्ण सम्पत्ति का श्रेष्ठ पदार्थ और बीसवाँ भाग, बीसवें का आधा भाग, बीसवें का चौथाई भाग उद्धार भाग दिखलाया गया है। तथा एक भाग, आधा भाग और चतुर्थांश भाग को अधिक भाग प्रतिपादित किया गया है।। 36।गौतम ने भी इस प्रसंग में कहा है - ज्येष्ठ पुत्र का बीसवाँ भाग, बकरा (मिथुनमजादीनाम्) अश्व (उभयोदत्) अश्वयुक्त रथ (तद्युक्तोरथ) गोयुक्त बैल (गोयुक्तो वृषः) होते हैं। मध्यम को अनेक पशु होने पर बूढ़े (खोर वृद्धः) वामन आकृति (कुटः) पूँछ रहित पशु (वण्डाः-विकृतः - लाङ्गूलः) मिलते हैं। कनिष्ठ भाई को हिस्से में भेड़, अन्न, लौहपात्र, घर, सफ़ेद बैलों से जुती गाड़ी और अन्य सभी प्रकार के पशुओं में से एक-एक पशु होता है और शेष सम्पत्ति का समान विभाजन होता है या ज्येष्ठ को दो अंश और शेष पुत्रों को एक-एक अंश मिलता है।।37।।

For an elder brother takes two shares; as directed by Manu.

Deductions of a twentieth part (with the best of all the chattels) and of half a twentieth, and of a quarter thereof, are propounded by a passage of Manu : ("The portion deducted for the eldest is the twentieth part of the heritage, with the best of all the chattels; for the middle-most, half of that; for the youngest a quarter of it") and shares increased by one portion, by half of one and by a quarter, are propounded by other passages of the same author: ("if a deduction be thus made, let equal shares of the residue be allotted; but if there be no deduction, the shares must be distributed in this manner; let the eldest have a double share; and the next born, a share and a half; and the youngest sons each a share : thus is the law settled).

Gautama likewise, after directing, that "A twentieth part shall belong to the eldest, besides a pair (of goats or sheep) a car, together with beasts that have teeth in both jaws, and also a cow and bull;" (i.e. a pair of goats or the like, a car with horses or other beasts having teeth in both jaws and a bull together with a cow; all this shall belong to the eldest); and after directing, that cattle blind of one eye, or aged dwarfish, or disfigured, [illegible] ere be more than one;" [illegible] disfigured or having a [illegible] e middle-most, provided [illegible] urther directing, that "A [illegible] gether with a cart, one of [illegible] given to the youngest: all the [illegible] d;" (i.e., a sheep and other things, a [illegible] ted to the youngest; but let the brethren divide equally the whole of the residue); has by the following passage allotted a double share to the eldest: "Or let the first born have two shares, and the rest take one a piece".

न चोपार्जकत्वेन ज्येष्ठस्यांशद्वयमिति वाच्यम्। उद्धारेऽनुद्धृते भागद्वयस्य विधानात्। अर्जकत्वे चोद्धारस्यासम्भवात्, मध्यमकनीयसोश्चोपार्जकतया ज्येष्ठेनाप्यविशेषात् तयोरध्यर्धादिविधानानुपपत्तेः, ज्येष्ठादिपदानर्थक्याच्च।। 38।।

ज्येष्ठ को दो अंश अर्जक होने से मिलते हैं – ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि उद्धार भाग के बिना भी ज्येष्ठ को दो अंश प्राप्त होते हैं। अतएव अर्जक होने से उद्धार भाग की कल्पना असम्भव है। यदि अर्जक होने से ज्येष्ठ को दो अंश मिलते तो मध्यम, कनिष्ठ द्वारा अर्जन किए जाने पर उनको भी दो अंश प्राप्त होंगे। इससे ज्येष्ठ पुत्र और मध्यमादि में कोई भेद नहीं रहेगा और मध्यम एवं कनिष्ठ के डेढ़-आधा भाग का विधान है वह भी संभव नहीं हो सकेगा और ज्येष्ठ पद निरर्थक हो जाएगा।। 38।।

Not as acquirer of the wealth.

It must not be argued, that the eldest has a double share allotted to him as the acquirer of the wealth. For the allotment of two shares as directed "if there be no deduction :" now a deduction could not be supposed in the case of an acquisition; and, since the middle-most and youngest are not, inasmuch as they are acquires of the property, distinguished from the eldest, the assigning of a share and a half, or other less portion (as a share and a quarter), to them, would be incongrous and the use of the term "eldest" would be impertinent.

अत एव पुत्रिकौरसयोः पितृधनविभागे मनुरपि -

पुत्रिकायां कृतायान्तु यदि पुत्रोऽनुजायते।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः॥

(मनु0 9/134)

इति स्त्रीत्वेन ज्येष्ठत्वाभावात् समभागतां प्रतिपादयन्, पुरुषस्य भागद्वयं प्रतिपादयति॥ 39॥

अतएव पुत्रिका पुत्र और औरस पुत्र के पितृधन विभाग के प्रसंग में मनु ने कहा है कि यदि पुत्रिका बनाने के बाद औरस पुत्र उत्पन्न हो जाता है तो पुत्रिका और औरस पुत्र में सम विभाजन होता है क्योंकि स्त्री में ज्येष्ठता नहीं होती। इस प्रकार स्त्री में ज्येष्ठत्व का अभाव होने से सम विभाग का प्रतिपादन करते हुए पुरुष के लिए दो भाग का विधान बतलाया गया है॥ 39॥

But in right of priimogeniture: as hinted by Manu, who denies that right to the appointed daughter.

Accordingly, in the case of a partition between an appointed daughter and a true legitimate son, Manu ordains, "A daughter having been appointed, if a son be afterwards born, the division of the heritage must in that case be equal, since there is no right of primogeniture for the woman." Thus propounding equal partition, because there is no right of primogeniture in this instance by reason of her sex, the author

thereby intimates, that a male would have had a double share (in right of his being eldest).

यदुक्तं होलाकाधिकरणे प्राच्यकर्तृकहोलाकानुष्ठानोपपत्तये 'होलाका कर्त्तव्येति' श्रुतिः कल्पिताः, तावतैव तदुपपत्तेः, न तु प्राच्यादिपदवती, कल्पनागौरवात्। तद्वदत्रप्यर्जकोंऽशद्वयं गृह्णीयादिति श्रुतिः कल्पनीया, न पुनः पित्रदिपदवती' इति।

तदयुक्तम्; तत्र प्राच्यकर्त्तृकहोलाकानुष्ठानस्यावश्यकल्पनीयसामान्यश्रुत्यैवोपपत्तेः, न चाप्राच्यानामननुष्ठानार्थं प्राच्यपदवती कल्प्यतामिति वाच्यम्; तेषामननुष्ठानस्यानाचाररूपस्य श्रुतिकल्पनानिमित्तत्वानुपपत्तेः। इह तु मन्वादीनां ज्येष्ठपदप्रयोगात् तदुपपत्तये ज्येष्ठपदवत्या एव श्रुतेः कल्पनार्हत्वात् अर्जकपदवत्या एव अवश्यकल्पनीयत्वाभावात् ज्येष्ठपदवत्या अर्जकपदवत्याश्च कल्पनायां विशेषप्रमाणाभावात्। न चान्यत्रर्जकस्य भागद्वयार्थं श्रुतेरवश्यं कल्पनीयत्वादत्रपि सैव मूलमस्तु, लाघवात्। ज्येष्ठपदञ्चार्जकपरमस्त्विति वाच्यम्; वैपरीत्यस्यापि सम्भवात्। अत्रैव ज्येष्ठपदयुक्तश्रुतिकल्पनायामर्जकपदस्यापि ज्येष्ठपरत्वकल्पनासम्भवात् विनिगमनाप्रमाणाभावात्। किञ्चैव लाघवादिना यत्किञ्चित् त्रिचतुरादिपदवतीमेकां श्रुतिमनुमाय, सकलस्मृतिपदानां गौण्या, लक्षणया वा वृत्त्या तत्परत्वमपि वाच्यमित्यतीवात्मनः स्मृतिनिपुणता निरूपिता। तस्माद्यस्मादेवाचारात्, स्मृतिवाक्याद्वा या श्रुतिरवश्यं कल्पनीया, तथैव, तदगतस्याचारांशस्य, स्मृतिपदस्य चोपपत्तेर्न तत्रधिककल्पनेति होलाकाधिकरणस्यार्थः।। 40।।

यह जो होलाकाधिकरण में कहा गया है कि - प्राच्यों को होलाका का अनुष्ठान करना चाहिए। 'होलाका कर्त्तव्या' इतनी ही श्रुति

की कल्पना करनी चाहिए न कि प्राच्यादिपद की। इससे कल्पना में गौरवता हो जाएगी। उसी प्रकार यहाँ भी अर्जक दो अंश ग्रहण करे इस श्रुति की कल्पना कर लेते हैं न पुनः पित्रादिपद की।

यह उचित नहीं है, वहाँ प्राच्य देश में रहने वालों के लिए होलाका का अनुष्ठान है। इस श्रुति की प्राप्ति होती है। दक्षिणात्य में रहने वालों के लिए प्राप्ति नहीं होती है। अतः प्राच्यपदवाली श्रुति की कल्पना करनी चाहिए। प्राच्यपद का विधान और दक्षिणात्य का निषेध - इन दोनों का अनुष्ठान न होने से एवं अनाचार रूप होने से श्रुति कल्पना की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ पर मन्वादि के वचन में ज्येष्ठ पद का प्रयोग होने से, उसकी प्राप्ति होने से ज्येष्ठपद वाली श्रुति की कल्पना योग्य होने से अर्जकपदवाली कल्पना के लिए विशेष प्रमाणों का अभाव है। न ही यह कहना चाहिए कि "अर्जक को दो अंश की प्राप्ति" श्रुति की कल्पना मूल है क्योंकि वह लघु (श्रुति) है। ज्येष्ठ पद अर्जक परक हैं यहाँ पर ज्येष्ठपद वाली श्रुति की कल्पना में अर्जक पद को भी ज्येष्ठपरक कल्पना के असंभव होने से कोई सिद्ध करने वाला प्रमाण नहीं है। और क्या कहा जाए यदि लघुता के कारण तीन-चार पद वाली किसी एक श्रुति की कल्पना करके सकलस्मृति पदों को गौण मानकर अथवा लक्षणा वृत्ति परक कहा जाये तो स्मृति नैपुण्य सिद्ध हो जाएगा। इसलिए आचार और स्मृति वाक्य से जितने अंश की कल्पना करने की आवश्यकता हो उतने ही अंश की कल्पना कर लेनी चाहिए, अधिक की नहीं - यही होलाकाधिकरण का अर्थ है।। 40।।

The maxim, that more is not to be assumed than is necessary, does not authorise the assumption, that the precept relates to an acqurier.

In regard to what is said, that as in the instance of the Holakā a passage of revelation to this effect, "The Holakā ought to be performed," is assumed for the justification of the practice of celebrating that festival which is in use among the Pracyas (for it can be sufficiently justified by such a passage; and one, containing the word Prācya or other restrictive term, need not be supposed, since the proof of it would be burden-

some); so, in this case likewise, a passage of revelation in these words, "Let the acquirer take a double share," must be inferred, and not one containing the word estest" or other restrictive term. That argument is not right; for, in the one case, the practice observed by the Prācyas can be justified by a general precept of revelation which must be presumed to that end. It should not be alleged, that one containing the term Prācya must be supposed for the sake of justifying the omission of that festival by others than Prācyas. Ommission, consisting in non-performance, is no fit reason for presuming a lost revelation. But, here, since Manu and the rest use the word, "eldest," a passage of scripture containing that term ought to be presumed to justify its in[illegible] not one exhibiting the word "acquirer"; since ther[illegible] for assuming this: nor is there any special a[illegible]of of one containing both terms. It should n[illegible] since it is necessary to suppose a revelati[illegible]f authorising the acquirer's double share in [illegible]nay be the origin of the law in this case also, [illegible]sy conclusion and the word "eldest" may signify [illegible] The reverse is equally possible; for if a revelation containing the term "oldest" be supposed, even the word "acquirer" might just as well be presumed to signify eldest since there is no ground of preference. Besides, on the same principle of facility, a supposed passage of Scripture, containing three, four, or more terms, may be any how inferred from reasoning; and the terms of the whole law may be made to relate to it, by interpreting them according to analogy and metaphor, and thus may you demonstrate your skill in the law. Therefore, since an established practice, or a sentence of material law, from which a passage of Scripture is to be inferred, may be sufficiently justified by assuming a passage in which the particular practice as described, or the words of the law are contained; more should not be presumed. And such is the import of the reasoning, instanced under the head of Holakā.

अत एव वसिष्ठेन ज्येष्ठस्यांशद्वयमभिधाय, उपार्जकस्याप्यंशद्वयं पृथगभिहितम्। यथा 'अथ भ्रातृणां

दायविभाग:' (17.39) 'द्व्यशं ज्येष्ठो हरेत्' (17.40) ततोऽनतिदूरे पुनराह येन चैषां समुत्पादितं स्यात्, सोऽपि द्व्यंशमेव हरेत्' (वसिष्ठ (17.42) अनेनार्जकतया भागद्वये दर्शिते, ज्येष्ठस्यांशद्वयाभिधानमनर्थकं स्यात्॥ 41॥

अतएव वसिष्ठ ने 'ज्येष्ठस्यांशद्वयं' तथा उपार्जकस्यांशद्वयं' इन दोनों सूत्रों का पृथक पृथक् उल्लेख किया है। यथा अब भाइयों की सम्पत्ति का विभाग कहते हैं, दो अंश ज्येष्ठ भाई प्राप्त करता है। इससे थोड़ी दूरी पर पुन: कहा है कि जो धन स्वयं अर्जित करता है वह भी दो अंश प्राप्त करता है। इससे अर्जक होने से दो अंश का विधान मानेंगे तो ज्येष्ठ के दो अंश का विधान अनर्थक हो जाएगा।। 41।।

Vasiṣṭha distincily assigns two shares to the eldest brother and two to the acqurier.

Accordingly, (since primogeniture and acquisition are severally and independently of each other, reason for the allotment of a double share), Vasiṣṭha, having ordained a double share for the eldest brother, separately propounds the allotment of two shares to the acquirer. Thus, after premising "Partition of heritage among brothers", he says "let the eldest take two shares," and at no great distance adds: "He, amongst them, who has made an acquisition, may take a double portion of it." Two shares being this ordained by this author in right of acquisition, his direction for a double allotment, to be given to the eldest brother, would be impertinent.

द्व्यंशहरत्वमपि न ज्येष्ठतामात्रेण।

यदाह बृहस्पति -

जन्म-विद्या-गुणज्येष्ठो द्व्यंशं दायादमाप्नुयात्।
समांशभागिनस्त्वन्ये तेषां पितृसमस्तु स'॥
उपार्जकत्वेन भागद्वये जन्मविद्यादिकीर्तनमनुपयोगि॥42॥

केवल ज्येष्ठ होने के कारण ही दो भाग नहीं मिलते अपितु बृहस्पति ने इस प्रसंग में कहा है कि जो जन्म, विद्या एवं गुण में ज्येष्ठ

है वह दो अंश प्राप्त करता है, अन्य भाई समान भाग के अधिकारी है क्योंकि वह (जन्मादि गुणों में ज्येष्ठ) अन्य भाइयों का पिता के समान है। इस प्रकार उपार्जक होने से ही दो अंश प्राप्त नहीं है, अन्यथा जन्मविद्यादि के कारण ज्येष्ठ को जो दो अंश कहे हैं उनके साथ विरोध हो जाएगा।। 42।।

Bṛhaspati authorises two shares in right of birth, knowledge and virtue.

The right of taking a double share, too, is not confined to the case of primogeniture. Thus Bṛhaspati says: "The eldest by birth, by science and by good qualities, shall obtain a double share of the heritage and the rest shall share alike; but he is as a father to them." If the allotment of two shares were only in right of acquisition, the mention of birth, science and good qualities would be useless.

एतच्च भागद्वय सोदरमात्रभ्रातृविभागविषयम्, सोदराविभागगोचरश्च ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः। यदाह बृहस्पतिः-

'समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्र द्विजन्मनाम्।
उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम्'।। 43।।

इस प्रकार ज्येष्ठ को दो भाग सहोदर भाइयों के विभाजन में तथा ज्येष्ठ को विंशोद्धार सहोदर और भिन्नोदर भाइयों के प्रसंग में मिलता है। बृहस्पति का मत है कि द्विजाति की (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) समान जातिवाली स्त्रियों में उत्पन्न पुत्र बड़े भाई के लिए उद्धार भाग देकर पिता के शेष धन को बराबर बराबर प्राप्त कर लें।। 43।।

The allotment of two shares concerns partition among brothers of the whole blood only, or of the half blood only. The deduction of a twentieth, regards the half blood, as is hinted by Bṛhaspati.

This double portion is applicable to the case of partition among whole brothers (or among half brothers only); and the deduction of a twentieth part for the eldest is relavtive to partition among brothers of both the whole and the hald blood.

For Bṛhaspati says: "All sons of regenerate men, born of women equal by class, should share alike after giving a deduction to the eldest.

सवर्णासु बह्वीषु स्त्रीषु जातानां उद्धारपूर्वकविभाग-श्रुतेर्भागद्वयं सोदरमात्रगोचरमेव सिद्ध्यति। युक्तञ्चैतत् सोदरतयाधिकगौरवात्।। 44।।

समान वर्ण वाली स्त्रियों में उत्पन्न पुत्र के लिए उद्धार भाग कहा है और सोदर भाइयों के लिए दो भाग कहे हैं, यह सिद्ध होता है। यह उचित भी है कि सोदर भाईयों में बड़ा भाई अन्य भाइयों से श्रेष्ठ है।। 44।।

For this being restricted to the half blood, the other relates to the whole blood.

Since partition among sons born of several wives, equal by class is here stated as preceded by a deduction, it follows, that the doctrine of a double share relates to the case of whole brothers : and this is proper, for the elder brother has the greater weight among his brethren, from the circumstance of his being of the whole blood.

उद्धारोऽपि दशसु गवादिषु न कार्यः। तथा मनु :-

उद्धारो न दशस्वस्ति सम्पन्नानां स्वकर्मसु।
यत्किञ्चिदेव देयं स्याज्ज्यायसे मानवर्धनम्।।

(मनुः 9.115.45)

दश गवादि में एक गाय उद्धार में नहीं देनी चाहिए यथा मनु का मत है कि - सब छोटे भाइयों को अपने-अपने कर्मो से युक्त रहने पर दस गवादि पशुओं में से एक-एक पशु उद्धार रूप में ज्येष्ठ भाई को नहीं प्राप्त होते, किन्तु ज्येष्ठ के भाई के मान को बढ़ाने के लिए उसे कुछ भी अधिक भाग देना चाहिए।। 45।।

The deduction is disallowed in the case of brothers equally meritorious.

The deduction also of one in ten cows, must not be made. So Manu declares: "Among brothers successful in the performance of their duties, there is no deduction of the best in ten, though some trifle as a mark of greater veneration, should be given to the first born."

तदेवमुक्तप्रबन्धेन यत्र ज्येष्ठभ्रातुरेव पितृधने भागद्वयं कथं? तत्र जनकस्य दान-विक्रय-परित्यागक्षमस्य पितामहधनसम्बन्धमूलस्यापि गुरोः पितुरेव स्वपितृधने भागद्वयं न सम्भवति 'जन्म-विद्या-गुणज्येष्ठ' इति बृहस्पतिवाक्येन च पितृसमत्वेन भागद्वयं ज्येष्ठस्यातिदिशन् पितुः भागद्वयम् ज्ञापयति बृहस्पतिः। जीवद्विभागे तु पिता गृह्णीतांशद्वयं स्वयमिति सामान्येनांशद्वयाभिधानोपदेशो बृहस्पतिना दर्शितः।

तथा नारद :-

'द्वावंशौ प्रतिपद्येत विभजन्नात्मनः पिता।
समांशहारिणी माता पुत्राणां स्यान्मृते पत्यौ'।। 46।।

ना0स्मृ0 (13.12)

इस प्रकार उक्त प्रबन्ध के द्वारा ज्येष्ठ भाई (पुत्र) को पितृधन में से दो भाग कैसे प्राप्त होते हैं? इस प्रसंग में कहा जाता है कि उसमें अनेक विशेषताएं हैं यथा वह पुत्रों का उत्पादक है, उसे सम्पत्ति के दान, विक्रय तथा परित्याग का अधिकार है। वह पितामह के धन में पौत्रों के सम्बन्ध का कारण हैं, अति पूज्य है। अतः बृहस्पति ने 'जन्म, विद्या, गुणों में ज्येष्ठ इस वाक्य से ज्येष्ठ को पितृतुल्य होने के कारण दो भाग कहे हैं उसी नियम के अतिदेश से पिता को दो भाग मिलते हैं। इस प्रकार बृहस्पति के मत से यही सिद्ध होता है कि यदि पिता अपने जीवनकाल में पितामहधन का विभाजन करता है तो वह स्वयं दो भाग प्राप्त करता हैं नारद के मतानुसार - पिता सम्पत्ति का विभाजन करते हुए स्वयं दो भाग प्राप्त करे। माता अपने पुत्रों के साथ समान भाग को

प्राप्त करे यदि उसका पति मर चुका है।। 46।।

Thus the elder brother being entitled to two shares of the patrimony, surely the father shall have two shares of it. That is hinted by Bṛhaspati, Nāada's text (see 35) again cited.

By the reasoning thus set forth, if the elder brother have two shares of the father's estate, how should the highly venerable father, being the natural parent of the brothers and competent to sell, give or abandon the property, and being the root of all connection with the grandfather's estate, be not entitled, in like circumstances to a double portion of his own father's wealth? Bṛhaspati, extending to the eldest son the right to a double share because he is like a father, as expressed in a passage above cited (see 42), does thereby intimate a maxim that the father shall have two shares : and the maxim is actually propounded by Bṛhaspati; for he ordains such an allotment in general terms: "The father may himself take two shares at a partition made in his life-time." So Nārada says: "Let the father making a partition, reserve two shares for himself and the mother shall take an equal share with her sons, if her husband be deceased."

द्रव्यं विभजन् पिता द्वावंशावात्मनो गृह्णीयात्, न पुनरात्मनो द्रव्यं विभजन्निति सम्बन्धः, पूर्वोक्तविरोधात्।। 47।।

द्रव्य का विभाजन करते हुए पिता स्वयं दो अंश प्राप्त करे, अपने द्रव्य में से दो अंश ग्रहण करे यह ठीक नहीं है क्योंकि पूर्वोक्त वचन के साथ विरोध हो जाएगा।। 47।। यह वचन स्वार्जित सम्पत्ति के लिए नहीं कहा गया अपितु पितामह की सम्पत्ति के प्रसंग में है।

And explained.

A father, distributing the goods, may take two share for himself. The construction of the sentence is not, "A father distributing his own goods, may take two shares": for that would contradict the doctrine before stated.

किञ्च पैतामहधने पितापुत्रयोः समभागित्वे यावद्धनं पितुः, तावदेव पुत्रस्यापीति वाच्यम्, न तु यावदेव यदेव धनम्, तावदेव तदेव पुत्रस्यापीति, मध्यमत्वापत्तेः जायापत्योरिव विभागाभावप्रसंगात्।। 48।।

पितामहधन में पिता एवं पुत्र का समभाग माने तो जो धन पिता का है वही पुत्र का भी कहा जाए, यह कहना उचित न होगा क्योंकि मध्यमत्व अर्थात् दोनों के स्वत्व एक होने से। पति-पत्नी के विभाग के अभाव के प्रसंग से अर्थात् जिस प्रकार पति-पत्नी के मध्य विभाजन नहीं होता उसी प्रकार पिता-पुत्र का एक धन स्वीकार करने से पिता-पुत्र के मध्य विभाजन नहीं होगा।। 48।।

There cannot be equal participation of father and sons in the patrimony. For either the goods must be in common and consequently there could be no partition.

Besides, if the father and son are to share equally the grandfathers wealth, (under texts declaratory of their similar or equal rights), it must be affirmed, that as much as is the father's share, so much (in number and quantity), is the son's: not, that the very same effects and same in quantity, which are the father's, are also the son's: for thus the property would be in common; and it might be concluded, that like the goods of husband and wife, no partition thereof could take place.

एवञ्च सति भ्रातृणां विभागे यदा ज्येष्ठस्य ज्येष्ठतया भागद्वयकल्पनम्, तदा तत्पुत्रस्यापि भागद्वयकल्पने पुत्रेण सह ज्येष्ठस्य चत्वारोऽंशाः, भ्रात्रन्तरस्यैकोंऽशः स्यात्। बहुपुत्रत्वे च ज्येष्ठस्य तत् पुत्रणां पितृसमभागकल्पने कनिष्ठभ्रातुर्यत् किञ्चिदेव स्यादिति महाजनविरोधः।। 49।।

भाइयों के साथ विभाजन किए जाने पर ज्येष्ठ को ज्येष्ठता के कारण दो भाग प्राप्त होते हैं जब वह अपने पुत्रों के साथ विभाजन करेगा तब भी उसे (पितामहधन में से) दो भाग प्राप्त होंगे इस प्रकार उसके चार अंश हो जाएंगे और अन्य पुत्रों (भाइयों) को एक एक अंश मिलेगा।

यदि ज्येष्ठ पुत्र के अधिक पुत्र होंगे तो पुत्रों के साथ सम विभाजन करने से कनिष्ठ भ्राता को बहुत कम अंश मिलेगा। इसका विद्वानों ने विरोध किया है। अतः यह मत उचित नहीं है।। 49।।

Or, if the son have an allotment of equal amount, the eldest brother and his sons taking two shares a piece, would leave but little to a younger brother.

Now, if the case were so (that is, if sons were entitled to share with their father allotments of equal amount, while his property continued): the eldest, together with his son, would have four shares, if two must be allotted to the eldest himself in right of primogeniture : and one share only would belong to another brother. Thus, if the eldest brother have many children and euqal portions must be assigned to them, as to their father, a mere trifle would remain for a younger brother, which would be in contradiction to great authorities.

यच्च बृहस्पतिवचनम् -

'द्रव्ये पितामहोपात्ते स्थावरे जङ्गमे तथा।

सममंशित्वमाख्यातं पितुः पुत्रस्य चैव हि।।'

अंशित्वं समं सामान्यम्। न च स्वेच्छया स्वोपात्तधनवत् न्यूनाधिकविभागं दातुमर्हति, न पुनरंशः सम इति तस्यार्थः।। 50।।

बृहस्पति का वचन है कि पितामह द्वारा अर्जित सम्पत्ति स्थावर हों या जंगम उसमें पिता और पुत्र का समान भाग होता है। अंशित्व का अर्थ है सम्पत्ति का विभाजन समान या सामान्य होना चाहिए। अपनी इच्छा से स्वयमर्जित धन के समान पिता पितामह सम्पत्ति का न्यूनाधिक भाग करने के लिए समर्थ नहीं है, यहाँ पुनः अंश का अर्थ समान नहीं है।। 50।।

A passage of Bṛhaspati concerning equal participation, forbids an arbitrary distribution.

As for the text of Bṛhaspati : "In wealth acquired by the grandfather, whether it consist of movables or immovables, the equal participation of father and of son is ordained:" its meaning is, that the participation shall be equal or uniform and the father is not entitled to mkde a distribution of greater of less shares at his choice, as he may do in the instance of his own acquired goods. It does not imply, that the shares must be alike.

द्विपितृकपित्रभिप्रायं वा समभागवचनम्।। 51।।

यह समान भाग उस पिता के लिए है जो स्वयं दो पिताओं का पुत्र है।। 51।।

Or it relates to a son of two fathers (one natural and one adoptive)

Or the text, declaratory of equal shares, may relate to a father who is himself son of two fathers; (one the natural, and the other the adoptive parent).

'तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्यमि' ति वचनन्तु प्रागेव व्याख्यातम्।। 52।।

तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्य'मि इस वचन की व्याख्या पहले से ही की जा चुकी है।। 52।।

The text of Yājñavalkya has been already expounded (see 9).

The passage which declares that "the ownership of father and son is the same," has been already expounded (see 9).

किञ्च यद्यसौ पिता स्वपितुः पुन्नामनरकनिवर्तको ज्येष्ठः, तदा तस्य स्वभ्रातॄनेवापेक्ष्य, यत्र पितृसमत्वेन भागद्वयं सुतराम्, तस्य पुत्रपेक्षया भागद्वयं युक्तम्, पुत्रणां क्रमागतधनसम्बन्धस्य पित्रधीनत्वात्। अथ यः पितुः न ज्येष्ठः

पुत्रः, तस्य स्वपुत्रैः सह समांशतोच्यते।। 53।।

और क्या, यदि कोई पिता जो अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र हो (अर्थात् पुं नामक नरक से रक्षा करने वाला) तो उसे विभाजन के समय अपने भाइयों की तुलना में दो भाग प्राप्त होते हैं। (क्योंकि ज्येष्ठ होने के कारण वह पितृतुल्य होता है) पुत्रों का क्रमागतधन अर्थात् पैतृक सम्पत्ति का सम्बन्ध अपने पिता के अधीन है। जो अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र न हो तो उसे पुत्रों के समान ही अंश प्राप्ति होती है।। 53।।

It is said, that, being an eldest son, the father has two shares ina partition with his sons, as with his brothers: butnot unless he be eldest.

Moeover, it is said, if that father be elest, as rescuing his own father from the misery to which a childless person is doomed, it is assuredly reasonable, that he should have an allotment twice as great as his own sons, in the same case in which he would have double the allotment of his brothers, because he was as a father to them, for it is through him, that his sons are connected with the hereditary property. But if he be not the eldest son of his father, he takes only an equal share with his sons.

तन्न। मध्यमादिपुत्रणामप्यध्यर्द्धादिविधानात् पितृतया भागद्वयस्यैव सुतरां युक्तत्वात्। सामान्येन च पितापुत्रयोः समांशाभिधानस्य भवतः, मुनीनाञ्चानुचितत्वात्।। 54।।

यह ठीक नहीं है क्योंकि जिस प्रकार उद्धार भाग के अन्तर्गत ज्येष्ठ को दो अंश प्राप्त होते हैं उसी प्रकार मध्यम एवं कनिष्ठ को भी डेढ़ अंश और एक अंश की प्राप्ति का विधान है। इस प्रकार पुत्रों के साथ विभाजन करने पर पिता को चाहे वह अपने पिता का ज्येष्ठ, मध्यम या कनिष्ठ पुत्र हो दो भाग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार पिता और पुत्र की समांशता का विधान न आपके द्वारा और न मुनियों के द्वारा उचित माना जाता है।। 54।।

That is wrong : he should have two shares in right of paternity.

That is not accurate. For, since a share and a half, or other specific allotment, is ordained for the middle-most and other sons, it is assuredly fit, that the father should have a double share, in right of paternity; and it is not proper on the part of yourself and the holy writers, to direct the equal participation of father and son in general terms.

किञ्च पितुरंशद्वयाभिधानं स्वोपात्तद्रव्यगोचर-मित्यप्यनुपन्नम् तदिच्छानुरोधित्वात् विभागस्य। इच्छातश्च भागद्वयत्रयन्यूनाधिकानामपि प्राप्तेविर्फलो विधिः। नियमार्थ-त्वञ्च वचनस्य न वर्णनीयम्, विष्णुविरोधात्। तदाह-पिता चेत् पुत्रान् विभजेत्, तस्य स्वेच्छा स्वयमुपात्तेऽर्थे, पैतामहे तु पितापुत्रयोस्तुल्यं स्वाम्यम् 17.1.2 इति।। 55।।

यदि यह कहा जाए कि पिता को दो अंश की प्राप्ति स्वार्जित द्रव्य में होती है तो यह ठीक नहीं है क्योंकि दो अंश ग्रहण करने का अधिकार उसे पितामह सम्पत्ति में है। स्वार्जित सम्पत्ति के विभाजन में तो पिता स्वेच्छा से दो, तीन, न्यून या अधिक भाग ग्रहण कर सकता हैं ऐसा करने से ऊपर कही गई विधि विफल हो जाएगी। यदि ऐसा कहा जाए कि स्वार्जित सम्पत्ति का नियमन करने के लिए दो भाग हैं तो यह भी उचित नहीं है क्योंकि ऐसी स्थिति में विष्णु के साथ विरोध हो जाएगा यथा पिता यदि पुत्रों में विभाजन करे तो स्वार्जित धन को अपनी इच्छा से विभाजित करे, पितामह धन में पिता और पुत्र का समान स्वामित्व होता है। 17/12 (55)।

The allotment of a double share cannot relate to acquired wealth, which the owner may divide as he pleases. It is so declared by Viṣṇu.

Besides, the allotment of two shares to the father is not properly applicable to his own acquired wealth; as appears from the circumstance, that the distribution of it follows his choice. The precept regarding that allotment would be

superfluous, since he may, at his choice, have either more or less than two or then three shares. Nor can the text be restrictive, for it would contradict Viṣnu, who says: "When a father separates his own sons from himself, his own will regulates the distribution. But, in the estate inherited from the grandfather, the ownership of father and son is equal.

अस्यार्थः-स्वोपात्ते यावदेव ग्रहीतुमिच्छति अर्धम्, भागद्वयम्, त्रयं वा। तत् सर्वं तस्य शास्त्रानुमतम्, न तु पैतामहेऽपि॥ 56॥

इसका अभिप्राय यह है कि स्वयं अर्जित सम्पत्ति में पिता अपनी इच्छा से जितना भी आधा, दो भाग या तीन भाग ग्रहण कर सकता है। यह सब शास्त्रसम्मत है परन्तु पैतृक सम्पत्ति में नहीं॥ 56॥

Exposition of the text.

The meaning of this passage is, "In the case of his own acquired property, whatever he may choose to reserve, whether half, or two shares, or three, all that is permitted to him by the law : but not so, in the case of property ancestral.'

तथा च हारीतः-जीवन्नेव वा पुत्रान् प्रविभाज्य वनमाश्रयेत्, वृद्धाश्रमं वा गच्छेत्, स्वल्पेन वा विभज्य, भूयिष्ठामादाय वसेत, यद्युपदश्येत् पुनस्तेभ्यो गृह्णीयात्॥ 57॥

हारीत के मतानुसार - पिता अपने जीवनकाल में पुत्रों में सम्पत्ति का विभाजन कर वन को चला जाए अथवा संन्यास ग्रहण करे अथवा अल्प सम्पत्ति पुत्रों में विभाजित करे या अधिक द्रव्य स्वयं लेकर रहे। यदि सम्पूर्ण सम्पत्ति का उपभोग करने के बिना निर्धन हो जाए तो पुनः पुत्रों से वापिस ले ले॥ 57॥

A passage of Hārīta cited.

Accordingly to Hārīta says : "A father, during his life distributing his property, may retire to the forest, or enter into the order suitable to an aged man; or he may remain at home,

having distributed shall allotments and keeping a greater portion : should he become indigent, he may take back from them."

अनेन स्वल्पस्य विभागः, भूयिष्ठद्रव्यस्य ग्रहणञ्च पितुरभिहितम्। वृद्धाश्रमः-प्रव्रज्या।। 58।।

इस प्रकार स्वल्प का भी विभाग कहा है और अधिक धन को ग्रहण करे - पिता के लिए कहा है। वृद्धाश्रम का अर्थ संन्यास है।। 58।।

And explained.

By this text the father is authorized to distribute a small part and to reserve the greatest portion of his wealth. "The order suitable to an aged man," intends retirement.

यच्च शङ्खलिखितवचनम् - 'स यद्येकपुत्रः स्यात् द्वौ भागावात्मनः कुर्य्यात्।' अस्यायमर्थः - एकस्य पुत्रः एकपुत्रः, न पुनरेक एव पुत्रो यस्येति बहुव्रीहिः तस्यान्यपदार्थप्रधानत्वेन षष्ठीतत्पुरुषाद्दुर्बलत्वात्। एकपुत्रश्चौरसः, तथाविधस्य पितुर्भागद्वयम्, न तु क्षेत्रजस्य पितृत्वेऽपि। 'तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्यमि'ति वचनं क्षेत्रजपित्रभिप्रायमेव वर्णनीयम्।। 59।।

शंखलिखित का वचन है कि एक (पिता) का पुत्र दो भाग प्राप्त करता है। इसका यह अर्थ है कि एकस्य पुत्र - एक पुत्र - षष्ठी तत्पुरुष समास है। एक एव पुत्रः यस्य बहुव्रीहि समास है।

'एकपुत्र' में षष्ठीतत्पुरुष समास माना है क्योंकि बहुव्रीहि में अन्यपद के अर्थ की प्रधानता होने से वह षष्ठीतत्पुरुष से दुर्बल होता है। इस प्रकार एक पिता के पुत्र (औरस) के लिए दो भाग प्राप्त होते हैं, क्षेत्रज पुत्र के पिता के नहीं। 'तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्यम्' इसको क्षेत्रज पुत्र के पिता के लिए वर्णन करना चाहिए।। 59।।

A text of Śaṅkha and Likhita expounded.

As for the text of Śaṅkha and Likhita, "If he be son of one father (exaputra), he may allot two shares to himself," the sense of it is this. 'The word ekaputra means son of one man : it is not a compound epithet signifying one who has an only

son; for that mode of construction prevails less than the other. "A son of one man" is a true legitimate son. The father, being such, is entitled to a double share : not so one who is (Kṣetraja) issue of the soil, though he be the father of the family.' But the text before cited (see 9), declaratory of the equal ownership of father and son, must be explained as intending a father who has (Kṣetraja) issue of the soil of wife.

क्षेत्रजो हि द्विपितृकः। तदाह-बौधायन :-
'मृतस्य च प्रसूतो यः क्लीबस्य व्याधितस्य वा।
अन्येनानुमतो वा स्यात् स्वे क्षेत्रे क्षेत्रजः स्मृतः।।'
स एव द्विपितृकः, द्विगोत्रश्च। द्वयोरपि स्वधाकरो रिक्थभाक् भवति।। 60।।

क्षेत्रज का अर्थ - जिसके दो पिता होते हैं। बौधायन ने इस प्रसंग में कहा है कि - मृत, नपुंसक अथवा रोगी पति की पत्नी का दूसरे पुरुष से अपने क्षेत्र में नियोग द्वारा उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहलाता है। इस प्रकार क्षेत्रज के दो पिता, दो गोत्र होते हैं। वह दोनों का पिण्डदाता और दोनों की सम्पत्ति को प्राप्त करने वाला होता है।। 60।।

For issue raised to a childless man, is the offspring of two fathers. Baudhāyana has so declared.

The offspring of the soil is indeed son of two fathers. Baudhāyana declares him so : "The son who is begotten by another on the authorised wife of a man deceased, impotent, or distempered, is son of the soil. He is considered as son of two fathers, as partaking of both families and as heir to the wealth and obequies of both."

अस्यार्थः-क्लीबादेः स्वे क्षेत्रे तदनुमतोऽन्येन प्रसूतः क्षेत्रजः।। 61।।

इसका अर्थ है कि - नपुंसकादि पुरुष की पत्नी का अपने क्षेत्र में पति की अनुमति से अन्य पुरुष से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहलाता है।। 61।।

Exposition of his text.

The meaning of this is, that the son begotten by another person on the wife of an impotent man or the like, with the husband's consent, is termed (Kṣetraja) the son of the soil.

तथा नारदः -

क्षेत्रिकानुमते क्षेत्रे बीजं यस्य प्रकीर्य्यते।
तदपत्यं द्वयोरेव बीजक्षेत्रिकयोर्मतम्।। 62।।

(12.57)

यथा - नारद का मत है कि - क्षेत्रिका की अनुमति से क्षेत्र में जो बीज बोया जाता है उससे उत्पन्न सन्तान क्षेत्र और बीज दोनों की ही होती है।। 62।।

Confirmed by a passage of Nārada.

So Nārada says: "The produce of seed, which is sown in a field with permission of a proprietor, is considered as belonging to both the owner of the seed and the proprietor of the soil."

अतश्चैकपुत्र आत्मनो भागद्वयं कुर्य्यादिति विधौ, एकपुत्रत्वस्य कर्तृविशेषणतया विवक्षार्हत्वात् उद्देश्यविशेषणत्वेनाविवक्षितत्वमित्यपि परास्तम् भवति।। 63।।

अतः एक पुत्र होने पर ही पिता को दो भाग मिलते हैं। इस प्रकार एक पुत्र कर्तृविशेषण होने से विवक्षा के योग्य है। परन्तु जो एक पुत्र को अविवक्षित मानते हैं अर्थात् उद्देश्य के विशेषण के रूप में सामान्य रूप में मानते हैं उनका निराकरण हो जाता है।। 63।।

He ambiguous term, in the text before cited, (see 59) must be contrued absolutely.

Hence (since the compound epithet is a construction not to be preferred); and because the term (ekaputra) ought to be made significant in the passage in question, as an epithet of the agent in the sentence; the notion, that is vaguely used as an epithet of the subject, if confuted.

किञ्च परमप्रेक्षावन्मनु-गौतम-दक्षादिप्रयुक्तपदानां प्रतिक्षणमविवक्षामाचक्षाणः, स्वस्यैव साक्षादविवक्षिततत्वं ख्यापयति।। 64।।

और क्या कहा जाए जो मनु-गौतम दक्षादि के पदों में अविवक्षा मानते हैं, वे स्वयं अपनी साक्षात् अविवक्षा बतलाते हैं।। 64।।

Terms employed by the sacred writers, are not to be continually taken in a vague sense.

Besides, one, who continually explains in a vague sense, terms used by authors transcendently wise, as Manu, Gautama, Dakṣa and the rest, only demonstrates his own unsettledness.

तथा पुत्रार्जितेऽपि धने पितुरंशद्वयं द्वावंशाविति।

ना0-13.12।

'गृह्णीतांशद्वयमि'ति चाविशेषश्रुतेः। सुव्यक्तमाह कात्यायनः -

'द्व्यंशहरोऽर्द्धहरो वा पुत्रवित्तार्जनात् पिता।
मातापि पितरि प्रेते पुत्रतुल्यांशभागिनी।। 65।।

तथा पुत्र द्वारा अर्जित धन में भी पिता के दो अंश होते हैं - द्वावंशाविति नारद का मत है। श्रुति का सामान्य वचन है कि दो अंश ग्रहण करें। स्पष्ट रूप से कात्यायन ने कहा है कि पिता पुत्र के अर्जित धन में से दो अंश या आधा अंश प्राप्त करे। माता भी पिता के मर जाने पर पुत्र के साथ समान अंश ग्रहण करने की अधिकारिणी होती है।। 65।।

A father has two shares even of his son's acquisitions.

Thus the father has a double share even of wealth acquired by his own son. For the expression is general: "let him reserve two shares" or "he may take two shares". Kātyāyana declares it very explicitly : "A father takes either a double share or a moiety, of his son's acquisition of wealth;

and a mother also, if the father be deceased, is entitled to an euqual portion with the son."

पुत्रस्य वित्तार्जनात् पितुर्द्व्यंशहरत्वम्, अर्धहरत्वं वेत्यस्यार्थः।। 66।।

पुत्र द्वारा अर्जित सम्पत्ति में पिता को दो अंश अथवा आधा अंश प्राप्त होते हैं, यह अभिप्राय है।। 66।।

Exposition of this text.

The meaning of this passage is, that the father has a right to take either a double share or a moiety of his son's acquired wealth.

न च पुत्रश्च वित्तञ्चेति पुत्रवित्ते तयोरर्जनात् पिता द्व्यंशहरः पुत्रनर्जनात् सर्वहर इति वाच्यम्, अनर्जितपुत्रस्यापि भ्रातृभिर्विभागे वित्तार्जकतया अंशद्वयस्येष्टत्वात् कथं सर्वहरत्वम्? अतो विभागार्हसम्बन्धिनि विद्यमाने अर्जकस्य द्व्यंशित्वम्; असति तु सर्वहरत्वं वाच्यम्। तथात्र पिता-पुत्रयोः प्रमत्तगीतता स्यात्। किञ्चार्जनं-स्वत्वहेतुभूतव्यापारः। अर्जनम् स्वत्वं नापादयतीति विप्रतिषिद्धमित्यभिधानात्। न च पुत्रेषु स्वत्वमस्तीति सर्वस्वदाने (पू.दे. 6.7.1) **प्रदर्शितम्। अतस्तत्र गौणमर्जनपदम्। वित्ते च मुख्यम्। न चैतत् सकृच्छ्रुतस्य तस्य सम्भवति।। 67।।**

यदि यहाँ पर 'पुत्रवित्तार्जनात्' इस पद का विग्रह 'पुत्रश्च वित्तश्च इति पुत्रवित्ते तयोरर्जनात्' करते हुए कोई यह शंका करे कि पिता को दो भाग पुत्र और वित्त के अर्जन से प्राप्त होते हैं, परन्तु जो पुत्र अर्जन नहीं करता अर्थात् जिसके पुत्र ही नहीं है वह पिता सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त करता है तो यह ठीक नहीं है। इस शंका का समाधान करते हुए कहा जाता है कि पिता के पुत्रहीन होने पर भी भाइयों के विभाजन में वित्त का अर्जक होने से पिता दो भाग प्राप्त करता है, सम्पूर्ण सम्पत्ति नहीं। यदि ऐसा कहा जाए कि विभाजन के योग्य सम्बन्धियों के

विद्यमान होने पर ही अर्जक को दो अंश मिलते हैं, यदि न हो तो सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त होती है तो यह भी उचित नहीं क्योंकि पिता-पुत्र का जो विशेष विधान किया गया है वह निरर्थक हो जाएगा। समान्यतः सिद्धान्त है कि अर्जन स्वत्व को उत्पन्न करने का मूल हेतु है। जिसमें व्यक्ति का स्वत्व होता है उसका उसे दान-विक्रयादि करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। अर्जन स्वत्व को उत्पन्न नहीं करता यह किसी ने विपरीत कह दिया है। मीमांसा के सूत्र 'सर्वस्वदाने' के अनुसार केवल इतना अभिप्राय है कि पुत्र में पिता का स्वत्व नहीं अतएव पिता पुत्र का दान नहीं कर सकता। यदि यह कहा जाए कि पुत्र और वित्त का अर्जन होने से 'पुत्रार्जनात्' और 'वित्तार्जनात्' में पुत्र के साथ 'अर्जन' पद गौण है और वित्त के साथ अर्जन पद मुख्यार्थ है तो यह भी उचित नहीं है। क्योंकि कात्यायन के श्लोक 'पुत्रवितार्जनात्' में एक बार प्रयुक्त हुआ अर्जन पद दो अर्थों का बोधक नहीं हो सकता क्योंकि इस प्रकार विधिवैषम्य दोष हो जाएगा।। 67।।

Another interpretation rejected.

It must not be explained thus: 'From the acquisition of both son and wealth, the father becomes entitled to two shares; but from no acquisition of a son, the owner keeps the whole. For it is admitted, that, when partition is made with brothers, one, who even has not got a son, takes two shares, as the gainer of the wealth: how then can he keep the whole? It must therefore be affirmed, that, if any relative exist, who is entitled to participate, the acquirer has two shares; but, if there be none, he keeps the whole : and thus the specific mention of father and son becomes unmeaning, like the singing of a drunkard. Besides, acquisition is an act causing property : and it is a contradiction to say that it does not produce property, since it has been expressly declared to do so (by the wise). Neither is it true, that a son is the property of his father. For the contrary is shown under the head of gift of a whole estate. The term acquisition would be therefore metaphorical in regard to sons and literal in respect of wealth. But that is inadmissible in the instance of a single term once uttered.

न च पुत्रेणार्जितत्वात् पुत्रस्य द्व्यंशप्राप्तेः पितुश्च भागद्वयस्यास्माद्वचनादृतेऽपि प्राप्तेः, समभागत्वापातात् विधानमनर्थकमिति वाच्यम्, एतद्वचनमन्तरेण पुत्रधने पितुर्भागद्वयस्याप्राप्तेर्वचनस्यार्थवत्त्वात्।। 68।।

यदि यह कहा जाए कि पुत्र द्वारा अर्जित की गई सम्पत्ति में से पुत्र को दो अंश मिलते हैं परन्तु पिता को दो अंश इस वचन के बिना ही प्राप्त है। अतः पिता और पुत्र का सम विभाजन होने से कात्यायन का यह वचन निरर्थक है। लेकिन ऐसी शंका करना अनुचित है क्योंकि इस वचन के बिना पिता को पुत्र द्वारा अर्जित सम्पत्ति में से दो भाग की प्राप्ति नहीं हो सकती; अतः यह वचन सार्[illegible]।।

The precept, as above explained, [illegible] us.

It must not be argued, t[illegible] ould be perfluous since the son's rig[illegible] share is monstrable, because the wealth [illegible] im; and ce the father's right to two [illegible] ducible dependently of this text; (and) thei[illegible] ion may e thence inferred. The precept is significant : since, without this text, there is no ground for concluding a father's right to two shares of his son's wealth.

किञ्च पुत्रवित्तार्जनादित्यस्य पितृधनविषयत्वे पितुरिच्छातो द्व्यंशहरत्वम् अर्द्धहरत्वं वेत्यनुपपन्नम्, इच्छानुरोधित्वात् ग्रहणस्य। इच्छायाश्चानियतत्वात् सार्धसपादपादोनांशग्रहणस्यापि सम्भवात् कथं पक्षद्वयमात्रकीर्तननियमार्थत्वञ्च पितृधनगोचरं न सम्भवतीत्युक्तं प्राक्। अत्र च पुत्रार्जितवित्तस्य यथा द्व्यंशहरत्वम्, तथा तस्यैव वित्तस्यार्धहरत्वमिति युक्तम्।। 69।।

यदि यह कहा जाए कि 'पुत्रवित्तार्जनात्' यह वचन पितृधन विषयक है तो यह उचित नहीं है क्योंकि पितृधन से सम्बन्धित होने के कारण पिता अपनी इच्छा से दो अंश या आधा अंश प्राप्त करे कहना

अनुचित होगा। इच्छा के अनियत होने से पिता अपने धन में से आधा, चौथाई या तिहाई भी प्राप्त कर सकता है। यह पूर्व में ही सिद्ध किया जा चुका है कि कात्यायन का वचन पितृधन विषयक नहीं है अपितु पिता के द्वयंश या अर्धांश का विधान पुत्र द्वारा अर्जित की गई सम्पत्ति में से ही है।। 69।।

It cannot relate to the father's own goods.

Besides, if the term "acquisition of wealth" be interpreted as relating to the father's goods, his right of taking two shares, or a moiety, at his choice, would be inapplicable, for his power taking according to his pleasure and the exercise of his will, are unrestricted. He may choose to take a share and a half, or one and a quarter, or three quarters of one share. How then are only two cases stated? That is cannot intend a restriction (to those two cases) nor relate to the father's own goods, has been already shown (from two passages before cited) and it is as fit that he should have a moiety of his son's acquired wealth, as it is that he should have two shares of such wealth.

न पुनर्द्वयंशस्यार्धमेकोंऽशः, तद्ग्रहणार्थं वचनम्। अर्धस्य द्वयंशस्य चैकदेशत्वेन एकदेशिन आकांक्षितत्वात् पुरुषविशेषणतया हरणकर्मत्वेन च द्वयोः समत्वात् परस्परसम्बन्धानुपपत्तेः। वित्तार्जनादिति पञ्चम्यन्तेन द्वयंशरूपैकदेशान्वयार्थोपादानस्याविवादात् अर्द्धपदेनापि तस्यान्वयो युक्तः वित्तार्जनार्द्धपदयोश्चाव्यवधानात् वित्तस्यैवार्द्धं प्रतीयते, न पुनर्द्वयंशस्यार्द्धमेकोंऽशः प्रतीयते, स्वायत्ते चैकांशपदे प्रयोक्तव्येऽवाचकपदप्रयोगस्यान्याय्यत्वात् वित्तस्यैवार्द्धयुक्तम्।। 70।।

यदि यह कहा जाए कि द्वयंशहरोऽर्द्धहरो वा' में आधा अंश दो अंश के आधे अर्थात् एक अंश के लिए प्रयुक्त हुआ है तो युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि पुत्र द्वारा अर्जित सम्पत्ति में से पिता दो भाग प्राप्त करता है और आधा भाग भी उसी सम्पत्ति में से प्राप्त करता है। द्वयंश और

अर्धांश यह एकदेशी हैं अर्थात् तुलना के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। यदि दो अंश आधे अंश के लिए प्रयुक्त होता तो अर्धांश कहने का औचित्य ही नहीं था। अतः पिता द्वयंश या अर्धांश प्राप्त करता है।। 70।।

Nor can it intend a moiety of two shares, i.e., one share.

Nor does the text intend his taking a moiety of two shares or, in other words, a single share. For moiety and share [illegible] a something of which they are parts: [illegible] gard to the person and to the act [illegible] ch other. As the interpretation, [illegible] uble share," in construction [illegible] lative, is unexceptionable, [illegible] oiety with it; for the terms [illegible] alth, therefore, is meant; [illegible] er words a single share : [illegible] obvious term, "a single [illegible] nploy a term, which does [illegible] of the wealth, then, is the

[illegible] पुत्रार्जितवित्तस्यार्धम् पितुः, [illegible] इतरेषामेकैकांशिता, अनुपघाते तु पितुरंशद्वयमर्जकस्यापि तावदेव, इतरेषामनंशित्वम्।। 71।।

यदि पुत्र पैतृक धन की सहायता से धनोपार्जन करता है तो पिता को आधा अंश प्राप्त होता है अर्जककर्ता पुत्र को दो अंश की प्राप्ति और अन्य पुत्रों को एक-एक अंश प्राप्त होता है। यदि पैतृक धन की सहायता के बिना ही धनोपार्जन करता है तो पिता को दो अंश एवं अर्जक को भी दो अंश प्राप्त होते हैं, शेष पुत्रों को कुछ भी नहीं मिलता है।। 71।।

Either a moiety, or a double share, is allotted, according as the patrimony has, or has not, been used in making the acquisition.

Here the father has a moiety of the goods acquired by his son at the charge of his estate; the son, who made the

acquisition, has two shares; and the rest, take one apiece. But, if the father's estate have not been used, he has two shares; the acquirer, as many; and the rest are excluded from participation.

यद्वा विद्यादिगुणसम्पन्नस्य पितुरर्द्धहरत्वम्। विद्यादिनाऽपि ज्येष्ठस्यैवाधिकांश दर्शनात्। विद्यादिशून्यस्य जनकतामात्रेण द्वयंशित्वम्।। 72।।

अथवा पिता के विद्यादि गुणों से सम्पन्न होने पर उसे पुत्रार्जित धान में से आधा भाग प्राप्त होता है क्योंकि विद्यादि के कारण ज्येष्ठ होने पर एक भाई को अन्य भाइयों की अपेक्षा अधिक अंश दिया जाता है। किन्तु विद्यादि से हीन होने पर भी सन्तान का उत्पादक होने से पिता को दो अंश मिलते हैं।। 72।।

Or a moiety is allowed, if the father possess good qualities. But two shares in right merely of paternity.

Or else, a father, endowed with knowledge and other excellencies, has a right to a moiety: for an increased allotment is granted to the eldest by science and other good qualities. But one destitute of such qualities has a double share in right merely of his paternity.

तेन क्रमागतधनाद्वा पुत्रार्जितधनाद्वा भागद्वयं पिता स्वयं गृह्णीयात्। अतोऽधिकमिच्छन्नपि नार्हतीतिवचनार्थः। स्वार्जितधनात्तु यावदेव गृहीतुमिच्छति, तावदेव गृह्णीयात्।। 73।।

इस प्रकार पितामहधन या पुत्र द्वारा अर्जित धन में से पिता दो भाग प्राप्त करता है। इससे अधिक अंश ग्रहण करने के लिए वह योग्य नहीं है। स्वार्जित धन में से पिता स्वेच्छा से जितना भी लेना चाहे ले सकता है।। 73।।

Recapitulation. A father may take two shares of inherited property; and of wealth acquired by his son. He may reserve as much as he pleases of his own acquisitions.

Therefore, the meaning of the texts is, that a father may

reserve for himself two share of wealth which has descended in succession (from ancestors) or of that which has been acquired by his son. He is not entitled to more, however desirous of it he may be. But, if his own acquired wealth, he may reserve as much as he pleases.

पुत्राणान्तु पितामहधनात् विंशोद्धारं दत्त्वा, अदत्त्वैव वा विभजेत्। स्वोपार्जितधनात् पुनर्गुणवत्त्वेन सम्मानार्थम्, बहुकुटुम्बत्वेन वा भरणार्थम्, अयोग्यत्वेन वा कृपया, भक्तत्वेन वा प्रसन्नतया, अधिकदानेच्छुर्न्यूनाधिकविभागं कुर्वन् धर्मकारी पिता।। 74।।

पितामहधन का विभाजन करते समय पिता की इच्छा है कि वह पुत्रों को बीसवाँ अंश उद्धार रूप में दे अथवा नहीं। स्वार्जित सम्पत्ति को धर्मकारी पिता अपनी इच्छा से न्यून या अधिक भाग करते हुए गुणवान् पुत्र को सम्मान के लिए, किसी अन्य पुत्र को अधिक कुटुम्ब होने पर भरण-पोषण के लिए, अयोग्य पुत्र को कृपा से या भक्त पुत्र को प्रसन्नता से अधिक भाग भी दे सकता है।। 74।।

He may give or withhold the eldest son's deduction from the patrimony : and he may distribute his acquired property unequally.

Among his sons, he may make the distribution, either by giving (to the first born) or withholding (from him) the deduction of a twentieth part of the grandfather's estate. But, if he make an unequal distribution of his own acquired wealth, being desirous of giving more to one, as a token of esteem, on account of his good qualities, or for his support on account of a numerous family, or through compassion by reason of his incapacity, or through favour by reason of his piety; the father, so doing acts lawfully.

तदाह याज्ञवल्क्यः -

'न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यः पितृकृतः स्मृतः'।

(याज्ञवल्क्य0 2.117)

तथा बृहस्पतिः -

समन्यूनाधिका भागाः पित्रा येषां प्रकल्पिताः।
तथैव ते पालनीया विनेयास्ते स्युरन्यथा॥

नारदश्च -

पित्रैव तु विभक्ता ये समन्यूनाधिकैर्धनैः।
तेषां स एव धर्म्यः स्यात् सर्वस्य हि पिता प्रभुः॥75॥

(ना0 13-15) (75)

याज्ञवल्क्य का मत है कि पिता द्वारा न्यूनाधिक विभाजन धर्मानुकूल माना गया है। बृहस्पति के मतानुसार पिता ने जिन दायादों के सम न्यून या अधिक भाग निश्चित कर दिए हैं उनका उसी प्रकार पालन होना चाहिए। यदि वैसा पालन नहीं होता तो दायादों को दण्डित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार नारद ने भी कहा है - पिता पुत्रों को सम, न्यून या अधिक भाग देकर विभाजन करता है तो वह धर्मकृत है क्योंकि पिता सब धन का प्रभु है॥ 75॥

For Yājñavalkya, Bṛhaspati and Nārada have pronounced that lawful.

Yājñavalkya declares it : "A lawful distribution, made by the father, among sons separated with greater or less allotments, is pronounced (valid)." So Bṛhaspati: "Shares, which have been assigned by a father to his sons, whether equal, greater, or less should be maintained by them. Else they ought to be chastised." Nārada likewise: "For such as have been separated by their father with equal, greater or less allotments of wealth, that is a lawful distribution : for the father is lord of all."

सर्वधनप्रभुत्वस्य हेतुत्वात्, पैतामहे च तदसम्भवात्, न्यूनाधिकविभागः पितृकृतः पितृधनविषय एवायं धर्म्यः। तथा च विष्णुः-

'पिता चेत् पुत्रान् विभजेत् तस्य स्वेच्छा स्वयमुपात्तेऽर्थे, पैतामहे तु पितापुत्रयोस्तुल्यं स्वामित्वम्' (विष्णु0 17.1.1) ॥ **76॥**

पितृधन पर पिता का पूर्ण स्वामित्व होने पर उसके द्वारा किया गया न्यून या अधिाक विभाजन धर्मानुकूल है परन्तु पितामहधन के विषय में ऐसा असम्भव है। विष्णु का वचन है कि - पिता यदि पुत्रों में विभाजन करे तो स्वार्जित धन में उसकी इच्छा है कि वह न्यूनाधिक विभाजन कर सकता है। पितामहधन में पिता-पुत्र का समान स्वामित्व होता है।। 76।।

It is so only in the instance of the father's acquired wealth : as is ordained by Viṣṇu.

Since the circumstance of the father being lord of all the wealth, is stated sas a reason and that cannot be in regard to the grandfather's estate, an unequal distribution, made by the father, is lawful only in the instance of his own acquired wealth. Accordingly Viṣṇu says, "When a father separates his sons, from himself, his own will regulates the division of his own acquired wealth. But in the estate inherited from the grandfather, the ownership of father and son is equal."

ननु -

विभागञ्चेत् पिता कुर्यादिच्छया विभजेत् सुतान्।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः'

(याज्ञ0 2.115) इति

याज्ञवल्क्यवचनादुद्धाररूपश्रेष्ठभागावगतेः, कथं ततो न्यूनाधिकत्वमिभधीयते? उच्यते; उपरते पितरि भ्रातृभिरपि

विभागे क्रियमाणे विशोद्धाररूपश्रेष्ठांशस्य सिद्धत्वाद्वचनानर्थक्यात् न तदर्थत्वम्।। 77।।

ननु से पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया है कि - यदि पिता विभाजन करना चाहे तो अपनी इच्छा से पुत्रों का विभाजन करे। ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग देकर पृथक् करे अथवा सबको समान भाग देकर पृथक् करे। याज्ञवल्क्य के इस वचन से पिता द्वारा उद्धाररूप में किए गए ज्येष्ठ पुत्र के लिए श्रेष्ठांश की जानकारी होती है, फिर न्यून या अधिक भाग करने का क्या अभिप्राय है? कहा जाता है कि पिता की मृत्यु के पश्चात् भाइयों द्वारा विभाजन किए जाने पर ज्येष्ठ के लिए विंशोद्धार रूप श्रेष्ठांश का विधान - यह इस वचन से सिद्ध होता है। अत: याज्ञवल्क्य का पूर्व में उल्लिखित वचन निरर्थक है।। 77।।

The unequal distribution, meant by Yājñavalkya (see 75), is not one made according to specific deductions, as hinted by the same author.

As a superior allotment, in the form of a deduction, is indicated by a passage of Yājñavalkya, ("When the father makes a partition, let him separate his sons according to his pleasure; and either dismiss the eldest with the best share; or, if he choose, all may be equal sharers") how is any other unequal distribution here ordained? The answer is, such cannot be the meaning, for the text would be impertinent, since a superior allotment, resulting from the deduction of a twentieth part, is admissible when partition is made by brothers after the demise of the father.

अथ विनाप्युद्धारम् समांशतायाः पितृकृताया धर्म्यत्वार्थवचनमुच्यते। तन्न। न्यूनत्वमेव तर्हि पितृकृतं धर्म्यं स्यादित्यधिकपदमनर्थकं स्यात्।। 78।।

उद्धार भाग के बिना पिता द्वारा किया गया सम विभाजन धर्मानुकूल स्वीकार किया गया है, वह भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि

न्यून विभाजन को ही धर्मानुकूल मानेंगे तो अधिक पद निरर्थक हो जाएगा।। 78।।

Nor does it intend equal distribution without specific deducations.

Perhaps the text is propounded for the purpose of legalising an equal distribution made by the father, without the authorised deductions? No : for then a less allotment only is declared lawful, as made by the father; and the word greater would be impertinent.

किञ्चोद्धाराभिप्रायेण समन्यूनाधिकत्ववर्णने इच्छया विभजेदित्यनर्थकम् पदम्। एतदितरपदत्रयेणैव वक्तव्यस्याभिहितत्वात्। अस्मन्मते तु इच्छया विभजेदिति स्वोपात्तधनविषयम्, श्रेष्ठांशता-समानांशतयोस्तु पैतामहधनगोचरत्वमिति, न किमप्यनर्थकम्।। 79।।

उद्धार के अभिप्राय से सम, न्यून या अधिक विभाजन ही स्वीकार किया जायेगा तो 'इच्छया विभजेत्' पद निरर्थक हो जाएगा। इस प्रकार तीन पदों में कहा गया वक्तव्य ही अभिहित है। हमारे मत में (जीमूतवाहन के अनुसार) 'इच्छया विभजेत्' पिता के स्वार्जित धन के विषय में है। श्रेष्ठांश और समानांश पितामह धन से संबन्धित है। इससे कुछ भी अनर्थक नहीं है।। 79।।

Part of the passage cited would be impertinent under that limitation.

Besides, if the mention of greater or less shares here intend the regulated deductions, the second verse of the stanza ("let him separate his sons according to his pleasure"), becomes superfluous; for that, which was to be declared, is fully specified in the three other verses of the text. But according to our interpretation, the phrase, "let him separate his sons according to his pleasure," relates to his own acquired wealth: while the allotment of the best share and an equal distribution, both regard

an estate inherited from the grandfather. There is consequently nothing superfluous.

किञ्च पितर्युपरतेऽपि द्विप्रकार: विभागो बृहस्पति-नोक्त:। यथा -

द्विप्रकारो विभागस्तु दायादानां प्रकीर्तित:।
वयोज्येष्ठक्रमेणैक: समा परांऽशकल्पना।।

ज्येष्ठक्रमेणेत्युद्धारं दर्शयति। तथा समांशता परेति भ्रातृणामपि परभागस्य द्विप्रकारत्वात् पितृकृतस्य विशेषो न स्यात्।। 80।।

पिता के मरने पर दो प्रकार का विभाजन बृहस्पति ने कहा है - विभाजन करने वालों ने दो प्रकार का विभाग बतलाया है - प्रथम आयु की ज्येष्ठता से और द्वितीय समान अंश बतलाया है। 'ज्येष्ठक्रमेण' यह उद्धार भाग दिखलाया है। समांश यह दूसरा प्रकार बताया हैं इस प्रकार पितृकृत विभाग में कोई अन्तर नहीं है।। 80।।

Bṛhaspati propounds two modes of partition among coheirs; one by specific deduction, the other by equal shares; thus there would be no distinction between that and partition by the father.

Moreover two modes of partition after the death of the father are actually declared by Bṛhaspati in these words: "Partition of two sorts is ordained for co-heirs, one, in the order of seniority, the other by allotment of equal shares". By saying "in order of seniority", the author indicates specific deduction. Equal partition among brothers are thus expressly declared, there would be no distinction between that and a distribution made by a father.

स्मरतिया नारद: -

'पितैव वा स्वयं पुत्रान् विभजेद्वयसि स्थित:।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन यथा वाऽस्य मतिर्भवेत्।। 81।।

(ना0 13,4)

नारद ने कहा है कि - पिता अपने जीवनकाल में विभाजन करते हुए ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग दे या अपनी बुद्धि के अनुसार न्यूनाधिक विभाग करे।। 81।।

Nārada declares two modes of partition by the father.

So Nārada says: "The father, being advanced in years, may himself separate his sons; either dismissing the eldest with the best share, or in any manner as his inclination may prompt."

ज्येष्ठस्य श्रेष्ठभागमभिधाय, पुनर्यथा वाऽस्य मतिर्भ-वेदि'त्यनेन यादृशे न्यूनाधिकविभागे पितुः पूर्वोक्तकारणात् कर्तव्यतामतिर्भवेदिति पृथगभिधानात् श्रेष्ठभागादन्य एवायं न्यूनाधिकविभागः प्रतीयते।। 82।।

ज्येष्ठ को श्रेष्ठ भाग देकर पुनः कहा है कि जैसे उसकी मति करे। इस प्रकार न्यूनाधिक विभाग को पूर्वोक्त कारण से करना चाहिये। मति भवेत् यह पृथक् कहा है। श्रेष्ठ भाग से अन्य यह न्यूनाधिक विभाग की प्रतीति होती है।। 82।।

And here the best share for the eldest is distinguished from unequal partition at will.

The unequal distribution, here intended, appears evidently to be different from that, which consists in giving the best share to the first born; since the author, having noticed the allotment of the best share to the eldest, again says "or as his inclination may prompt;" thereby distinctly authorising any unequal distribution, which the father, for reasons before-mentioned, may think proper to make.

यत् पुनर्नारदवचनम्-

'व्याधितः कुपितश्चैव विषयासक्तचेतनः।
अयथाशास्त्रकारी च न विभागे पिता प्रभुः।।

(ना0 13.16) इति।

तत् व्याधिनाऽऽकुलचित्ततया, कस्मिश्चित् पुत्रे क्रोधाद्वा, सुभगापुत्रस्नेहाद्वाऽयथा शास्त्रं विभजति, तद्विषयम्। पूर्वोक्तकारणात्तु शास्त्रीय एव विषमविभागः।। 83।।

नारद के वचनानुसार - रोगी, क्रोधी, विषयों में जिसका मन आसक्त हो, जो शास्त्र के विपरीत विभाग करे ऐसा पिता विभाग में समर्थ नहीं है। इस प्रकार रोगी होने से जिसका मन व्याकुल हो, जो किसी पुत्र के प्रति क्रोधित हो, अथवा किसी प्रिय पत्नी के पुत्र में स्नेह के कारण विषम विभाजन करता है तो वह धर्मानुकूल नहीं है। पूर्वोक्त कारण से विषम विभाजन शास्त्रनुकूल है।। 83।।

Another passage of Nārada, restraining the father's power, forbids an unauthorised distribution made without sufficient cause.

But the text Nārada, which expresses, what "A father, who is afflicted with disease or influenced by wrath or whose mind is engrossed by a beloved object, or who acts otherwise than the law permits, has no power in the distribution of the estate," relates to the case where the father, through perturbation of mind occasioned by disease or the like or through irritation against any one of his sons, or through partiality for the child of a favourite wife, makes a distribution not comformable to law. Nevertheless, unequal partition is lawful, when grounded on (either of the four) reasons above-mentioned.

यथा कात्यायनः -

जीवद्विभागे तु पिता नैकं पुत्रं विशेषयेत्।
निर्भाजयेन्न चैवेकमकस्मात् कारणं विना।। 84।।

यथा कात्यायन के मतानुसार - पिता अपने जीवनकाल में विभाग करे तो एक पुत्र में भेद न करे और बिना किसी अकस्मात् कारण के विभाजन से अलग न करे अर्थात् उसे भाग अवश्य दे।। 84।।

A passage of Kātyāyana confirms this inference.

The Kātyāyana says: "But let not a father distinguish one son at a partition made in his life-time, nor on any account exclude one from participation without sufficient cause."

नैकमधिकदानेन विशेषयेत्, न च निर्भाजयेत्-विभागशून्यं न कुर्यात्। कारण विना उद्धारादिविशेषो हि बहूनामेव, नैकस्य-एकस्यापि च पुत्रस्य कारणं विना विशेषो न कार्यः कारणवशात्तु कार्य एव। एकस्यापीत्यवगतेर्नो-द्धारापेक्षो विशेषः, किन्तु पितुरिच्छाकृत एवेति यथोक्त एवार्थः॥ 85॥

किसी को अधिक भाग देकर पृथक् न करे न विभाग से वंचित करे। बिना कारण के बहुतों से (ज्येष्ठ-मध्यम-कनिष्ठ) उद्धारादि विशेष, एक पुत्र को भी बिना कारण के अलग नहीं करना चाहिए। कारण होने पर करना चाहिए। यथोक्त विभाजन पिता की इच्छा द्वारा समझना चाहिए॥ 85॥

85. **Exposition of the text.**

Let him not distinguish one by the allotment of a greater portion, nor exclude one from participation by depriving him of his share, without sufficient cause. (This does not relate to specific deductions) : for the distinguishing of sons by alloting to them the prescribed deductions (of a twentieth and half or a quarter of a twentieth), extends to many (viz., eldest, middle-most and youngest); and is not confined to one. One son should not be distinguished without cause. But, for a sufficient reason, it may be done. Since the meaning is "even one son". The distinguishing of one (as here forbidden) has no reference to specific deduction; but intends a distribution made according to the father's mere pleasure, as before explained.

यदि पुनः पितरि जीवति पुत्र एव विभागमर्थयन्ते, तदा विषमविभागः पित्रा न दातव्यः।

तदाह मनुः-

भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत् सह।
न तत्र भागं विषमं पिता दद्यात् कथञ्चन।। 86।।

(मनु0 7.215)

यदि पुनः पिता के जीवित रहने पर पुत्र विभाजन करना चाहे तो पिता द्वारा विषम विभाग नहीं देना चाहिए। यथा मनु का मत है कि - यदि सम्मिलित रहते हुए सब भाई साथ में धनोपर्जन करें तो पिता किसी प्रकार भी किसी पुत्र को अधिक भाग कदापि न देवे।। 86।।

When partition is made by desire of the sons, no unequal distribution should be made.

However, when sons request partition in the father's life-time, an unequal allotment should not be granted by him. Manu declares it, "Among undivided brethren if there be an exertion in common, the father shall on no account make an unequal distribution in such case."

उद्धारस्तु तदा पित्रा दातव्य एव, तस्य विषमविभाग-रूपत्वाभावात् न्यूनाधिकविभागस्यैव निषेधात्।। 87।।

यदि उद्धार भाग पिता द्वारा किया गया है तो उसमें विषम विभाग होने का अभाव है, न्यूनाधिक भाग का निषेध है।। 87।।

The regular specific deductions should, however, be allowed.

But the regular deduction ought in this instance to be allowed by the father. For it is not of the nature of an unequal distribution; and the allotment of greater or less shares is alone forbidden.

इति पितृकृतो विभागः।। 88।

इस प्रकार यह पिता द्वारा किया गया विभाग है।। 88।।

Conclusion.

Thus partition made by a father (has been explained).

पारिभद्रकुलोत्पन्नस्य महामहोपाध्यायश्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्नान्तर्गते दायभागे पितृकृतविभागो नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः।

तृतीयोऽध्यायः

(प्रथमपरिच्छेदः)

इदानीमुपरते पितरि भ्रातृणां विभागः कथ्यते। सोऽपि च मातरि जीवन्त्याम्, सत्यपि पित्रुपरमाद्धनस्वामित्वे धर्म्यो न विभागः सोदराणां भवतीति कथ्यते - 'ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्चे' (मनु0 9-104) **ति। उभयोरुपरमे सोदराणाम् पैतृकधनविभागस्य ज्ञापनात्।। 1।।**

अब पिता के मरने के पश्चात् भाइयों का विभाग कहा जाता है। वह भी माता के जीवित रहते हुए, पिता के मर जाने पर धन में स्वामित्व होते हुए भी भाइयों का विभाजन धर्म्य नहीं कहलाता। मनु के श्लोक 'ऊर्ध्वं पितुश्च' इत्यादि के द्वारा भी यही सिद्ध होता है कि माता-पिता दोनों की मृत्यु के पश्चात् पितृधन का विभाजन होता है।। 1।।

Partition among whole brothers, after the death of the father, is not right while the mother lives. As hinted by Manu.

Partition among brothers, after the demise of the father, is next explained. That partition is pronounced to be not lawful, among brothers of the whole blood, while the mother lives although the ownership of wealth be vested in them by the death of their father. For the text ("after the father and the mother") propounds a division of the paternal estate among brothers of the whole blood subsequent in the demise of both parents.

न पुनर्मातुरूर्ध्वं मातृधनविभागार्थम्, पैतृकपदात् पितृधनमात्रस्यैव विभागावगते, पैतृकपदस्यैकशेषकल्पनाया प्रमाणाभावात्।। 2।।

यदि कोई यह कहे कि 'मातुरुर्ध्वं' (इस मनु के श्लोक में आए हुए शब्द से) से मातृधन विभाजन का संकेत मिलता है तो यह ठीक नहीं क्योंकि पैतृक पद से मात्र पितृधन विभाजन का ही बोध होता है, मातृधन का नहीं। अतः पैतृक पद में एकशेष समास की कल्पना करने के लिए प्रमाण का अभाव है।। 2 ।।

The text, which supposes her previous demise, does not relate to her particular property.

It does not intend a distribution of the mother's goods, after her demise. For partition of the patrimony only is suggested by the term paternal; and there is no authority for interpreting parental.

किञ्च 'जनन्यां संस्थितायामि' त्यनेनैव (मनु0 9-192) **मातरि मृतायाम् तदीयधनविभागस्य मनुना वक्ष्यमाणत्वात्। ऊर्ध्वं मातुरिति पुनरुक्तम् स्यात्।। 3।।**

और क्या, मनु ने मातृधन के लिए पृथक् वचन (9/192) का प्रयोग किया है यथा - माता की मृत्यु के पश्चात् सब सहोदर भ्राता तथा अविवाहित सहोदर भगिनियाँ उसके धन को बराबर भाग में प्राप्त करती हैं। यदि 'ऊर्ध्वंमातुः' इस पूर्वोक्त श्लोक को मातृधन से संबन्धित मानेंगे तो पुनरुक्ति दोष हो जाएगा।। 3 ।।

The partition of that is separately noticed by the same author.

Besides, it would be a repetition : for the division of the maternal estate, on the death of the mother, is subsequently noticed by Manu in a separate text.

यथा याज्ञवल्क्यः -

विभजेरन् सुताः पित्रोरूर्ध्वमृक्थमृणं समम्।
मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वयः।। 4।।

(2.118)

यथा याज्ञवल्क्य का मत है कि माता-पिता के मरने के बाद पुत्र धन और ऋण को बराबर-बराबर बाँट लें और ऋण से बचे हुए माता के धन को पुत्री ग्रहण करे, पुत्री न हो तो पुत्र ही ग्रहण करे।। 4।।

A passage of Yājñavalkya conforms this inference.

Thus Yājñavalkya says "Let sons divide equally the effects and the debts, after the death of both parents. But daughters share the residue of their mother's property, after payment of her debts; and the (male) issue in default of daughters.

मातृधनविभागस्य दुहितृणां सद्भावेऽनधिकारः, असद्भावे चान्वयपदेन पुत्राणामधिकार इत्युत्तरार्द्धेनैव प्रतिपादनात्। पूर्वार्द्धे पित्रोरिति पितृधनविषयमेव, अन्यथा पुनरुक्तत्वापत्तेः।। 5।।

याज्ञवल्क्य वचन का उत्तरार्द्ध मातृधन विषयक होने पर पुत्री के विद्यमान रहते पुत्र के अधिकार का निषेध करता है। इसमें प्रयुक्त अन्वय पद से पुत्री के अभाव में पुत्र के अधिकार का बोध होता है। पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त पित्रो शब्द से पितृधन का निर्देश होता है। यदि याज्ञवल्क्य के वचन को मातृधन विषयक स्वीकार करें तो पुनरुक्ति दोष हो जायेगा।। 5।।

For, unless it be so interpreted, there would be tautology.

Since the latter half of this passage shows, that sons have no right of participation in the mother's goods, if daughters exist; but, if none exist, then sons have the right of succession, being intended by the term "issue"; the father's estate only can be meant, in the former half of the text, by the word "parents": for otherwise there would be tautology.

मातापित्रोरपरमे भ्रातरो विभजेरन्निति वदता याज्ञवल्क्येन उभयोरूपरमानन्तरकालस्य विभागार्थतया विधानात् साहित्यं विवक्षितम्।। 6।।

माता-पिता के मरने पर भाई विभाजन करे, ऐसा कहकर याज्ञवल्क्य ने दोनों के मरने के पश्चात् धन के विभाजन काल का

विधान करते हुए उन दोनों के (माता-पिता) के साहित्य भाव को बतलाया है।। 6।।

The author has designedly associated the deaths of father and mother as requisite to a lawful partition by brothers.

The author, declaring that brothers may divide after the death of the father and mother, propounds a time subsequent to the demise of both as a fit period of partition; and the association (of their deaths) appears therefore to be designedly expressed.

तथा च शङ्खलिखितौरिक्थमूलं हि कुटुम्बमस्वतन्त्रता: पितृमन्तो मातुरप्येवमवस्थितायाः। मातुरपि सकाशादस्वतन्त्र विभागानधिकारिणः' इत्याहतुः।। 7।।

शंखलिखित ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि कुटुम्ब अर्थात् परिवार रिक्थ पर आधारित होता है। पुत्र अस्वतन्त्र हैं। पिता के मरने पर माता के भी जीवित रहने पर पुत्रों को स्वतन्त्र नहीं माना है। वह विभाग के अनधिकारी हैं।। 7।।

Śaṅkha and likhita deny the independence of sons, while their mother lives.

Accordingly Śaṅkha and Likhita says, "Since the family is supported on the inheritance, sons are not independent : but as it were under the authority of a father, so long as the mother lives." They are not independent of their mother; they are not competent to make a partition.

सुव्क्तमाह व्यासः -

'भ्रातृणां जीवतोः पित्रोः सहवासो विधीयते।
तदभावे विभक्तानां धर्मस्तेषां विवर्धते'।। 8।।

व्यास के मतानुसार - माता-पिता के जीवित रहते हुए भाइयों के सम्मिलित रहने का विधान है। इन दोनों के अभाव में विभक्त भाइयों की धर्म में वृद्धि होती है।। 8।।

Vyāsa clearly forbids separation of co-heirs during the life of both parents.

Vyāsa very explicitly declares it. For brethren a common abode is ordained, so long as both parents live : but, after their decease, religious merits of separated brethren increase."

सहवासविधानमुखेन पृथग्भावनिषेधात्। पितृमातृ-जीवनवतश्च विभागनिषेधात् जीवतोरिति साहित्यमविवक्षितम्। अत एकस्मिन्नपि जीवति विभागः न धार्म्यः, किन्तूभयोरभावे।। 9।।

सहवास के विधान से भाइयों को अलग रहने का निषेध है। माता-पिता के जीवित रहते विभाग करने का निषेध है। जीवतोरिति से माता-पिता दोनों को अविवक्षित कहा है अर्थात् पिता की मृत्यु के पश्चात् माता के साथ इकट्ठे रहना चाहें तो रहें अथवा नहीं। अतः एक के जीवित रहने पर विभाग करना न्यायसंगत नहीं है किन्तु दोनों के अभाव में ही विभाग करना चाहिए।। 9।।

Thus partition is unlawful while either of them lives; but is lawful, when both are dead.

Since the author forbids the separation of brethren by commanding them to live together and prohibits partition with one whose fathher and mother are living, the association of their survival is not positively intended in the phrase "so long as both parents live." Therefore, if one parent be living, partition is not lawful; but it is so, when both are dead.

यथाह बृहस्पतिः -

'पित्रोरभावे पुत्राणां विभागः सम्प्रदर्शितः।
मातुर्निवृत्ते रजसि जीवतोरपि शस्यते'।। 10।।

बृहस्पति ने कहा है- माता-पिता के अभाव में अर्थात् उनकी मृत्यु के पश्चात् भाइयों का विभाग बतलाया गया है। दोनों के जीवित

रहते हुए तभी विभाजन हो सकता है जबकि माता का रजोधर्म निवृत्त हो चुका हो।। 10।।

Bṛhaspati confirms this.

Thus Bṛhaspati says: "On the demise of both parents partition among brothers is allowed: and, even while they are both living, it is right if the mother be past child-bearing:".

निवृत्तरजस्कायां मातरि, जीवन्त्यां विभागस्य मातृधनगोचरत्वानुपपत्तेः। उभयाभावोक्तविभागस्यैव जीवतोरपीत्यपिकारेण शस्तत्वकीर्तनात्। उभयोरभावे भ्रातृविभागः पितृधनगोचरं एवावधार्यते।। 11।।

माता के रजोधर्म से निवृत्त होने पर और माता के जीवित रहने पर जो विभाग है वह मातृधान विषयक नहीं है। दोनों (माता-पिता) के अभाव में विभाग कहा है। जीवतोरपी में अपि शब्द प्रशंसा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हैं दोनों के अभाव में भाइयों का विभाजन कहा है उसे पितृधनविषयक समझना चाहिए।। 11।।

His text relates to partition of the father's estate.

Since partition while the mother is living cannot be relative to the mother's particular property and since the authorised partition after the demise of both parents, which is indicated by the particle in the phrase "even while they are both living," is thus pronounced to be proper; partition among brothers after the death of parents is evidently relative to the father's wealth.

अत एव जीवन्त्यां मातरि मातृप्रधानकं विभागं निर्दिशति व्यासः -

'समानजातिसंख्या ये जातास्त्वेकेन सूनवः।
विभिन्नमातृकास्तेषां मातृभागः प्रशस्यते'।।

तथा बृहस्पतिः -

यद्येकजाता बहवः समाना जातिसङ्ख्यया।
सापत्नास्तैर्विभक्तव्यं मातृभागेन धर्मतः।। 12।।

अतः माता के जीवित रहने पर माता के प्रधान भाग को व्यास ने निर्दिष्ट किया है - विभिन्न माताओं से उत्पन्न पुत्र जो एक पिता की सन्तान, वर्ण एवं संख्या में समान हैं उनको माताओं के अनुसार ही भाग मिलता है, पुत्रों की संख्या के अनुसार नहीं। बृहस्पति का भी यही मत है कि - अनेक स्त्रियों से एक पति से उत्पन्न पुत्र जो जाति और और संख्या में समान है धर्मानुसार माता के भाग के अनुसार ही इनका विभाजन करना चाहिये।।12।।

Vyāsa and Bṛhaspati direct partition in the mother's life-time to be made with reference chiefly to her, in certain circumstances.

Accordingly Vyāsa propounds partition, in the mother's life-time, made with reference chiefly to her: "If there be many sons of one man, by different mothers, but equal in number, and alike by class, a distribution among the mothers is approved." So Bṛhaspati says: "If there be many sprung from one, alike in number and in class, but born of rival mothers, partition must be made by them, according to law, by the allotment of shares to be mothers."

पुत्राणां जातिसङ्ख्यासाम्येन विभागे विशेषाभावात् मातुरेवायं विभागः, न पुत्राणामित्युद्दिश्य विभागः कर्तव्यः। तेनेतरमातृधन इवात्रपि पुत्राणां मातरि जीवन्त्यां न परस्परविभागे स्वातन्त्र्यम्, किन्तु मातुरनुमत्यैव परम् विभागो धर्म्यः।। 13।।

पुत्रों में जाति एवं संख्या की समानता से विभाजन में किसी प्रकार का भेद नहीं है। माता के विभाग से ही उनका विभाजन होता है, पुत्रों के उद्देश्य से विभाग नहीं होता। इस प्रकार इतरमातृधन अर्थात् सौतेली माता के धन में भी पुत्रों को माता के जीवित रहते हुए आपस में विभाग करने की स्वतन्त्रता नहीं है किन्तु माता की अनुमति से विभाजन करना धर्मानुकूल कहा गया है।।13।।

Hence it is inferred, that sons have not power to divide while the another lives, unless with her consent.

Since there is no difference in the son's shares, for they are equally numerous and of the same tribe, partition is to be made by an allotment to the mother, not to the sons. Therefore, as in the case of other wealth of the mother's, so in this instance (of the father's wealth, which is become their property) sons have not independent power to make a partition among themselves, while the mother lives; but with her consent the partition is lawful.

अतो यद्गौतमादिभिरुक्तम्-'विभागे तु धर्म-वृद्धिरि'त्यादि (3/10/4)। तन्मातुरुपरमे वेदितव्यम्।। 14।।

अतः गौतमादि ने भी कहा है कि - विभाजन करने से धर्म की वृद्धि होती है। इसे माता की मृत्यु के बाद ही समझना चाहिए।। 14।।

Separation is pronounced by Gautama, to be laudable, supposing the mother's demise.

Hence, what is said by Gautama and others ("In partition there is increase of religious merit"); must be understood after the demise of the mother.

तत्र यद्यविभक्ता एव स्थातुंमिच्छन्ति, तदा ज्येष्ठ एव योगक्षेमशक्तः सर्वं गृह्णीयात्, इतरे पितरमिव तमुपजीवेयुः-

तथा मनुः -

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात् पित्र्यं धनमशेषतः।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा'।।

(मनु0 9-105)

तथा गौतमः 'सर्वस्वं वा पूर्वजस्य, स इतरान् बिभृयात् पितृवत्' (3/10/3) वा शब्दात् पृथग्वा भवेयुः सह वा वसेयुः। सहवासश्च सर्वेषामिच्छात एव।

यथा नारदः -

'बिभृयाद्वेच्छतः सर्वान् ज्येष्ठो भ्राता यथा पिता।
भ्राता शक्तः कनिष्ठो वा शक्त्यपेक्षा कुलस्थितिः'।।
(ना0 13-5)

शक्तः सन् कनिष्ठोऽपि सर्वान् बिभृयात्। मध्यमोऽत्र दण्डापूपन्यायात् सिद्धः।। 15।।

वहाँ पर अर्थात् परिवार में यदि वे (भाई) अविभक्त रहना चाहते हों और ज्येष्ठ भाई यदि योगक्षेम से युक्त हों तो सारी सम्पत्ति को ग्रहण कर ले। अन्य भाई इस प्रकार रहें जैसे पिता के साथ रहते थे। यथा मनु का मत है कि बड़ा भाई पिता के सम्पूर्ण धन को ग्रहण करे शेष भाई उसके आश्रय में उसी प्रकार से रहें जैसे पिता के आश्रय में रहते हों। गौतम के मतानुसार - समस्त सम्पत्ति ज्येष्ठ पुत्र को प्राप्त हो। वह शेष भाइयों का पिता के समान भरण-पोषण करे। वा शब्द से विकल्प दिया गया है कि वे पृथक् रहें या सम्मिलित होकर रहें। सहवास शब्द सभी की इच्छा पर है।

नारद का मत भी मनु एवं गौतम के समान है - ज्येष्ठ भाई सब की इच्छा से अन्य भाइयों का पिता के समान पालन करे अथवा छोटा भाई भी समर्थ होने पर अन्य भाइयों का पालन-पोषण कर सकता हैं परिवार की स्थिति शक्ति अर्थात् योग्यता की अपेक्षा रखती है।

समर्थ होने पर छोटा भाई भी सब का भरण-पोषण कर सकता है। मध्यम भाई तो दण्डापूपन्याय से सिद्ध है।। 15।।

While the brethren choose to remain together, the eldest should have the managment : as ordained by Manu and Gautama. Nãrada declares consent to be necessary. And a younger brother, being most capable, may have the charge of the estate and family.

If then they desire to remain unseparated, the eldest brother being capable of the care and management of the estate, may take the whole; and the rest should liver under him, as

under a father. Thus Manu says, "The eldest brother may take the patrimony entire, and the rest may live under him as under their father." So Gautama: "Or the whole may go to the first born; and he may support the rest as a father." From the particle "or" it appears, that they may either become separate or continue to dwell together; and their dwelling together must be by consent of all. Thus Nārada says, "Let the eldest brother, by consent, support the rest like a father; or let a younger brother, who is capable, do so. The continuance of the family depends on ability." Even the youngest, being capable, may govern all the brethren. The middle-most of course may, being here inferred by the analogy of the loaf and staff.

विभागस्त्वेकस्यापीच्छया भवतीत्युक्तं प्राक्।। 16।।

विभाग तो एक की इच्छा से हो जाता है – यह पहले कहा जा चुका है।। 16।।

Any one co-heir may require partition.

But partition takes place by the will of any one (of the co-heirs), as before intimated.

अत एव विभागं प्रक्रम्याह-कात्यायनः-

अप्राप्तव्यवहाराणां धनं व्ययविवर्जितम्।
न्यसेयुर्बन्धु-मित्रेषु प्रोषितानां तथैव च'।।
तथा 'रक्ष्यं बालधनमाव्यवहारप्राप्तेरि'ति वचनम्।।17।।

अतएव कात्यायन ने विभाजन को आरम्भ करके कहा है कि अल्पवयस्कों का और विदेश में गए हुए मनुष्यों का धन उनके व्यय को छोड़कर उनके बन्धुओं एवं मित्रों के पास गिरवी रख देना चाहिए। इस प्रकार बालक के धन की तब तक रक्षा करनी चाहिए जब तक वह वयस्क न हो जाये।। 17।।

As appears from the provision in Kātyāyana's text, for securing the shares of minors and absentees, who of course have not consented.

Accordingly (since partition by the choice of one co-heir is lawful); Kātyāyana, treating of partition says : "Let them deposit, free from disbursement, in the hands of kinsmen and friends, the wealth of such as have not attained majority; as well as of those who are absent." So a text expresses, "The property of minors should be so preserved until they attain their full age."

अयञ्च पुत्राणाम् विभागः पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रणां समानः, नात्रोत्पत्तिक्रमेणाधिकारक्रमः। पुत्रादीनां त्रयामामेव पार्वणे तत्पिण्डतद्भोग्यपिण्डद्वयदानाविशेषात्।

अत एव देवलः -

‘पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
उपासते सुतं जातं शकुन्ता इव पिप्पलम्॥
मधु-मांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च।
एव नो दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च’॥

तथा शङ्खलिखित-यमाः -

‘पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
जातं पुत्रं प्रशंसन्ति पिप्पलं शकुना इव॥
मधुमांसेन खड्गेन पयसा पायसेन वा।
एष दास्यति नस्तृप्तिं वर्षासु च मघासु च’॥

प्रपितामहग्रहणात् पुत्रपदं प्रपौत्रपर्यन्तपरम्। तदनेन प्रपौत्रपर्यन्तस्य श्राद्धदानेन प्रपितामहपर्यन्तोपकारकत्वात् तुल्यो दायाधिकारः॥ 18॥

यहाँ पुत्रों का विभाग - पुत्र-पौत्र एवं प्रपौत्र तीनों का समान रूप से अधिकार बताया गया है। उत्पत्ति के क्रम से अधिकार का क्रम नहीं

है। पुत्रादि तीनों ही समान रूप से दो पिण्ड देते हैं - एक पिण्ड मृत स्वामी के पितरों (पिता एवं पितामह) को देते हैं और दूसरा पिण्ड मृतस्वामी को दिया जाता है जिसका कि वह भोग करता है।

इस प्रसंग में देवल का मत है कि जिस प्रकार पक्षी पीपल के वृक्ष को देखकर आशा करते हैं उसी प्रकार पिता, पितामह एवं प्रपितामह उत्पन्न हुए पुत्रों के प्रति आशा रखते हैं कि वे हमें वर्षा एवं मघा में मधु, मांस, शाक, दूध एवं खीर का श्राद्ध करेंगे। शंखलिखित एवं यम के भी यही विचार हैं।

प्रपितामह शब्द का ग्रहण होने से पुत्र पद प्रपौत्रपर्यन्त तक का निर्देश करता है क्योंकि पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र पिता, पितामह एवं प्रपितामह पर्यन्त श्राद्ध करते हैं। अतएव तीनों का समान रूप से अधिकार है।। 18।।

rtition extends to grandsons and great grandsons in the e line. By reason of benefits conferred by them on the s of ancestors. Devala hints this : and so do Śaṅkha, ıita.

The rule of distribution among sons extends equally to ı and to grandsons and great grandsons in the male line. :e is not here an order of succession following the order of proximity according to birth. For those three persons, the son, grandson and great grandson, do not differ; in regard to the presenting of two oblations at solemn obsequies, one which it was incumbent on the ancestor to present, and the other which is to be tasted by his manes, hence it is, that Devala says, 'A father, a grandfather and a great grandfather, assiduously cherish a new born son, as birds the holy fig-trees, (reflecting) "he will present to us a funeral repast with honey, meat and herbs, with milk, and with rice and milk, in the season of rains and under the asterism Maghā'. So Śaṅkha, Likhita and Yama. "A father, a grandfather and great grandfather, welcome a new born son, as birds the holy fig-tree, (reflecting) "he will give us

contentment with honey and meat and (especially the flesh of) rhinoceros and with milk and with rice and milk, in the season of rains and under the asterism Maghā." From the mention of the great grandfather, it appears that "son" here intends a descendant as low as great grandson. Thus, since such a descendant confers benefits on his ancestors up to the great grandfather, by presenting oblations to the manes, the descendant within the dgreee of great grandson has an equal right of inheritance.

अत एव जीवत्पितृकयोः पौत्र-प्रपौत्रयोरनधिकारः, पार्वणानधिकारितया पिण्डप्रदातृत्वात्।। 19।।

अतएव पिता के जीवित रहने पर पौत्र-प्रपौत्र का अनधिकार होने से वे पार्वण श्राद्ध नहीं कर सकते अतः पिण्डदान के अयोग्य हैं।। 19।।

Not however those, whose fathers are living : for they make no offerings to the manes.

Hence it is, that the son and grandson, whose own fathers are ligving, have no right of succession; for they do not present oblations to the manes, since they are incompetent to the celebration of solemn obsequies.

पित्रोरूपरमे च भ्रातृणां पितृकृतो विशेषः परम् निवर्तते, अन्यत् तु सर्वमेव प्रत्येतव्यम्।। 20।।

माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् पिता द्वारा किए गए विशेष विभाग में भाइयों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अन्य सब को यहाँ वर्णित करना चाहिए जो पहले कह चुके हैं (ज्येष्ठ का बीसवां भाग इत्यादि)।।20।।

The arbitrary allotment, which a father may make, is not permitted among brothers.

After the death of parents, the special distribution, (which mighty have been) made by a father, cannot have effect among brethren. But all the rest, as before explained, must be here again admitted.

यदा चैकः पुत्रोऽस्ति, अपरस्य पुत्रस्य पुत्राः सन्ति, तदा तस्यैको भागः, अपरश्च बहूनां नप्तृणं स्वपित्रधीनजन्म-मूलत्वाद्धनसम्बन्धस्य यावत्येव धने तस्य स्वामित्वार्हत्वम्, तावत्येव तेषामपि॥ 21॥

माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् दो पुत्रों में से यदि एक पुत्र जीवित हो और दूसरा पुत्र एक अथवा अनेक पुत्रों को उत्पन्न करके मर जाए तो विभाजन के समय एक भाग जीवित पुत्र प्राप्त करता है और दूसरा भाग मृत पुत्र के पुत्र प्राप्त करते हैं क्योंकि उनका पिता के साथ जन्म से सम्बन्ध होने से उसके धन पर अधिकार होता है अर्थात् जितने धन पर पिता का स्वामित्व होता है उतने ही धन पर उसके पुत्रों का अधिकार होता है॥ 21॥

Grandsons, whose father is deceased, are entitled to just so much as would have been his share.

If there be one son living, and sons of another son (who is deceased), then one share apprertains to the surviving son, and the other share goes to the grandsons, however numerous. For their interest in the wealth is founded on their relation by birth, to their own father; and they have a right to just so much as he would have been entitled to.

यच्च -

'अनेकपितृकाणान्तु पितृतो भागकल्पने' (याज्ञ० 2-121) **इति वचनम्। तस्य नायं विषयः - पितृव्यपितुरेव तत् सर्वं धनमिति, पितृव्यस्यैव सर्वम् स्यात्, न तद्भ्रातुः पुत्राणाम्, पितृतो भागकल्पने पितापुत्रविभागवद्भाग-कल्पने पितुर्भागद्वयसम्बन्धात् पितृव्यस्य भागद्वयं भवेत्, तद्भ्रातुः पुत्राणां त्वैकैको, भागः स्यात्, तदा च शिष्टाचारविरोधः स्यात्॥ 22॥**

उपर्युक्त 21 सूत्र में जो प्रयोग कहा गया है उसको दृष्टि में रखकर यदि कोई यह कहे कि इसकी पुष्टि में याज्ञवल्क्य का वचन - अनेन पितृकाणान्तु ...... मिलता है तो यह मत ठीक नहीं है। क्योंकि पितृव्य पिता के समान होने से उसका सम्पूर्ण धन हो जाएगा और पितृव्य का सम्पूर्ण अधिकार होने से भ्रातृपुत्र को कुछ नहीं मिलेगा। पितृतो विभाग से सम्पत्ति का विभाजन होगा तो पितृव्य एवं भातृपुत्र में पिता-पुत्र का संबन्ध होने पर पिता दो भाग प्राप्त करे, इस नियम से पितृव्य दो भाग प्राप्त करेगा और भ्रातृपुत्रों को एक-एक अंश मिलेगा जो लोकाचार के विरुद्ध है।। 22।।

A passage cited concerning allotment of shares according to the fathers does not relate to partition between uncle and nephew.

The text, which exprsses "Among the issue of different fathers, the allotment of shares is according to the fathers," does not relate to this case (of partition between uncle and nephew). For the whole estate belonged to the uncle's father and therefore, the whole would belong to him and no part of it, to his nephews. Or, if partition is to be made as between father and son, under the direction for the allotment of shares according to the fathers, the uncle would have two shares because a father has a right to a double portion; and the nephews would have a single share. But this is contrary to the approved usage of the wise.

अस्य पुनरेष विषयः यत्रैकस्य भ्रातुरल्पसंख्यकाः पुत्राः सन्ति, अपरस्य बहुसंख्यकाः, तत्र पितृतः भागकल्पनेति।। 23।।

अतः सारांश यह निकलता है कि जहाँ एक भाई के कम पुत्र हों और दूसरे भाई के अधिक पुत्र हो। ऐसी स्थिति में पिता के माध्यम से पुत्रों को अंश मिलता है। 23।।

But intends partition between cousins whose fathers died before their grandfather.

The purport of the text, however, is this. If there be a numerous issue of one brother and few sons of another, then the allotment of shares is according to the father's.

इति पारिभद्रकुलोत्पन्नस्यमहामहोपाध्याय श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौधर्मरत्नान्तर्गते दायभागे तृतीयाध्यायस्य प्रथम परिच्छेदः समाप्तः।

अथ तृतीयोऽध्यायः

(द्वितीयः परिच्छेदः)

इदानीं सवर्णभ्रातृणां विभागः, विंशोद्धारादिपूर्वको वा, सम एव वेति विकल्पः॥ 24॥

इस प्रकार सवर्ण भाइयों का विभाग कहा है बीसवां भाग उद्धारादि में या सम विभाजन - इन दोनों में विकल्प है॥ 24॥

Two modes of partition among brothers are authorised; one with the other without, specific deductions.

In the next place, (after defining the periods, when partition among brothers may take place), two modes of partition among brethren alike by class are propounded; namely, either with specific deductions of a twentieth and so forth or else an equal division.

उद्धारमन्तरेणापि समविभागमाह पितरीत्यनुवृत्तौ हारीतः - 'समानतो मृते रिक्थविभागः'।

तथोशनाः -

'वर्णानामानुलोम्यानां विभागोऽयं प्रदर्शितः।
समत्वेनैकजातानां विभागस्तु विधीयते'॥

तथा च पैठीनसिः, 'पैतृके विभज्यमाने दायाद्ये समो विभागः'।

तथा याज्ञवल्क्यः -

विभजेरन् सुताः पित्रोरूर्ध्वमृक्थमृणं समम्'।

(याज्ञ0 2.117)

अतः सोद्धारानुद्धारभागयोर्विकल्पः॥ 25॥

हारीत ने उद्धार के बिना ही सम विभाग कहा है मरने पर पैतृक सम्पत्ति का सम विभाजन कहा है। इस प्रसंग में उशना का मत है कि वर्णों के अनुलोम क्रम से यह विभाग किया गया है। एक ही जाति के भाइयों के लिए सम विभाग का विधान किया गया है। पैठीनसि का वचन है कि दायादों में पैतृक सम्पत्ति का विभाजन करते हुए सम विभाग होता है।

याज्ञवल्क्य का मत है कि - माता-पिता के मरने के बाद पुत्र रिक्थ (धन) और ऋण को बराबर बाँट लें। यहाँ उद्धारभाग और अनुद्धार भाग दोनों में विकल्प बताया गया है॥ 25॥

Equal shares are ordained by Hārīta.

Hārīta ordains an equal distribution without deductions, in the following passage, after speaking of a father : "If he be dead, the partition of inheritance should be made equally." So Uṣanas says, "This rule of partition is declared for brethren of various tribes, being born of women of classes below the father's; but the distribution among brothers born of women of the same tribe is ordained to be made equally." Thus Paiṭhīnasi says, "When the paternal inheritance is to be divided, the shares shall be equal." Yājñavalkya also declares, "Let the sons divide equally the effects and the debts, after the death of both parents." Thus, there are two modes of distribution; namely, with or without specific deductions.

न च केवलसमविभागस्यापि शास्त्रीयत्वान्नित्यवत्तस्यैवानुष्ठानं स्यादिति वाच्यम्। भक्त्यतिशयेन भ्रातृणामुद्धारानुमतेरपि सम्भवाद्विभागाविभागवद्विकल्पः।। 26।।

यहाँ पर कोई यह शंका कर सकता है कि पुत्रों में केवल सम विभाजन ही होता है क्योंकि शास्त्र में इसी को स्वीकार किया गया है। लेकिन यह कथन उचित नहीं है क्योंकि अतिशय भक्ति के कारण भाइयों में उद्धार भाग (दो डेढ-एक अंश) को स्वीकार किया गया है। विभाग कम या ज्यादा इसमें विकल्प है। अर्थात् किसी पुत्र के साथ यदि अतिशय भक्ति है तो हम अधिक भाग दे देते हैं।। 26।।

But equal distribution is not indispensable. An option exists.

It must not be ar[illegible]tice of equal partition indispensable, as t[illegible] by law. For the brethren may cons[illegible] reason of great veneration (for the [illegible]e that of making or omitting partitio[illegible]

अतएवाद्यत[illegible]् समभाग एव लोके दृश्यते, उद्धा[illegible] 27।।

आजकल किसी भाई के प्रति अधिक भक्ति कम ही देखने को मिलती है। ज्येष्ठ भाई उद्धार भाग प्राप्त करने योग्य भी प्रायः नहीं होते अतएव लोक में सम विभाग ही देखा जाता है।। 27।।

Though a division with specific deductions be now rare.

Accordingly, since persons of the present day (who are younger brothers) entertain not great veneration (for their elders), equal distribution is alone seen in the world; as also because elder brothers deserving of deducted allotments are now rare.

यस्तु स्वयोग्यतामात्रपरामर्शात् पितृपितामहादिधनविभागे निस्पृहः। सः किञ्चिदेव तण्डुलप्रस्थमपि दत्वा

तत्पुत्रादेः कालान्तरीयदुरन्ततानिरासार्थम् विभजनीयः।

तदाह मनुः -

भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा।
स निर्भाज्यस्वकादंशात् किञ्चिद्दत्त्वोपजीवनम्'।।

(म0 9-207)

तथा याज्ञवल्क्यः -

शक्स्यानीहमानस्य कञ्चिद्दत्त्वा पृथक्क्रिया।। 28।।

(याज्ञ0 2-116)

जो पुत्र स्वयं योग्य होने पर पिता-पितामहादि की सम्पत्ति लेने का इच्छुक न हो तो उस भाई को प्रस्थ, तण्डुल देकर विभाजन कर देना चाहिए ताकि उसके पुत्र कालान्तर में विवाद न करें। इस प्रसंग में मनु का मत है कि - भाइयों में से अपने उद्योग से समर्थ जो भाई पिता के धन से भाग लेना नहीं चाहे तो उसे सब भाई पिता के धन में से कुछ भाग देकर पृथक् कर दें। याज्ञवल्क्य का भी यही मत है - जो समर्थ पुत्र पिता के धन को लेने की इच्छा न करे उसको कुछ धन देकर अलग कर देना चाहिए।। 28।।

A co-heir may relinquish his share, taking some trifle to obviate future cavil on the part os his representatives. As Manu and Yājñavalkya have provided.

If one of the co-heirs, through confidence in his own ability, decline his share of the wealth inherited from the father, grandfather or other ancestor, something should be given to him, be it only a prastha of rice, on his separation, for the purpose of obviating any future cavil on the part of his son or other heir. Thus Manu says, "If any one of the brethren has a competence from his own occupation and desires not the property, he may be debarred from his share, giving him some trifle in lieu of a maintenance." So Yājñavalkya; "The separation of one who is able to support himself and is not desirous of participation, may be completed by giving him some

trifle.

पितरि चोपरते सोदरभ्रातृभिर्विभागे क्रियमाणे मात्रेऽपि पुत्रसमांशः दातव्यः, 'समांशहारिणी माते' ति वचनात्।। 29।।

पुत्रों के समान माता सम भाग को प्राप्त करती है - इस वचन से पिता के मर जाने पर पर सहोदर भाइयों द्वारा विभाग किए जाने पर माता को भी सम अंश देना चाहिए।। 29।।

The mother shares equally with her sons after the father's demise. A text cited.

When partition is made by brothers of the whole blood, after the demise of the father, an equal share must be given to the mother. For the text expresses, "The mother should be made an equal sharer."

मातृपदस्य जननीपरत्वात्, न सपत्नीमातृपरत्वमपि, सकृच्छ्रु तस्य मुख्य-गौणत्वानुपपत्तेः।। 30।।

मातृ पद से जननी अर्थ है, न कि सपत्नी। (सौतेली माता) एक बार सुना हुआ मातृ पद एक ही समय में मुख्य और गौण अर्थ नहीं दे सकता। अर्थात् कहीं पर माता से अभिप्राय अपनी माता और कहीं सौतेली माता - यह अर्थ करें तो ठीक नहीं है। माता शब्द एक बार ही प्रयुक्त हुआ है इसलिए मुख्य अर्थ लगाना ही उचित है।। 30।।

And expounded.

Since the term mother intends the natural parent, it cannot also mean a step-mother. For a word employed once cannot bear the literal and metaphorical senses at the some time.

समांशता च मातुर्भर्त्रादिभिः स्त्रीधनादाने, दत्ते पुनरर्धम्। पित्रा च पुत्रेभ्यः समविभागदाने सर्वपत्नीनामेव पुत्रसमांशता कर्त्तव्या।

तदाह याज्ञवल्क्यः-

यदि कुर्यात् समानांशान् पत्न्यः कार्याः समांशिकाः।
न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा॥

(याज्ञ. 2.149)

अधिविन्नस्त्रियै देयमाधिवेदनिकं समम्।
न दत्तं स्त्रीधनं यासां दत्ते त्वर्द्धं प्रकल्पयेत्'॥ 31॥

(याज्ञ0 2.149)

माता का भर्त्ता के साथ सम विभाग तभी होता है जब माता को स्त्रीधन न मिला हो यदि स्त्रीधन मिला हो तो आधा भाग मिलता है। यदि पिता पुत्रों को सम विभाजन देकर सम्पत्ति का विभाग करता है तब सब पत्नियों को पुत्रों के समान अंश मिलता है। इस प्रसंग में याज्ञवल्क्य का मत है कि - यदि पिता समान भाग करे तो उन पत्नियों को भी समान भाग दे जिनको भर्त्ता व श्वशुर ने स्त्रीधन न दिया हो। अपि च ...... अधिविन्न स्त्री के लिए आधिवेदनिक के बराबर धन देना चाहिए जिनको स्त्रीधन नहीं दिया गया हो। यदि स्त्रीधन दिया गया हो तो आधिवेदनिक का आधा दे॥31॥

If no separate property had been given to the woman, she has a share. At a partition by the father, all his wives partake. Yājñavalkya is authority for this.

The equal participation of the mother with the brethren take effect, if no separate property had been given to the woman. But, if any have been given, she has half (a share). And, if the father make an equal partition among his sons, all the wives (who have no issue) must have equal shares with the sons. So Yājñavalkya declares: "If he make the allotments equal, his wives, to whom no separate property has been given by their husband, or their father-in-law, must be rendered partakers of like portions." "To a woman, whose husband marrries a second wife, let him give an equal sum, as a compensation for the supercession, provided no separate property have been

bestowed on her : but, if any have been assigned, let him allot half."

पुत्रहीनाश्च पितुः पत्न्याः समानांशाः, न पुत्रवत्यः।

तथा व्यासः -

असुतास्तु पितुः पत्न्याः समानांशाः प्रकीर्तिताः।
पितामह्याश्च सर्वास्ता मातृतुल्याः प्रकीर्तिताः'॥

तथा विष्णुः -

'मातरः पुत्रभागानुसारेण भागहारिण्यः, अनूढ़ा दुहितरश्च'॥ 32॥

(विष्णु 18.34.35)

पुत्र हीन पिता की पत्नियों को समान अंश मिलता है। जिनका पुत्र है उनको नहीं मिलता है। इस प्रसंग में व्यास का मत है कि पुत्रहीन पिता की पत्नियों को समान अंश मिलता है। सभी पितामही माता के बराबर हैं। विष्णु का कथन है - माता पुत्रों के भाग के अनुसार भाग ग्रहण करती हैं और अविवाहित पुत्रियाँ भी इसी प्रकार भाग ग्रहण करती है॥ 32॥

But those wives only, who have no male issue, take shares, Vyāsa and Viṣṇu confirm this.

Wives of the father (meaning step-mother) who have no male issue, not those who are mothers of sons, (must be rendered) equal sharers (with son). So Vyāsa ordains "Even childless wives of the father are pronounced equal sharrers; and so are all the paternal grandmothers : they are declared equal to mothers." Viṣṇu likewise says, "Mothers receive allotments according to the shares of sons; and so do unmarried daughters."

पुत्रभागानुसारेण यथावर्णक्रमेण पुत्राणां चतुस्त्रिद्व्येकभागिता, तथा पत्नीनामपीति॥ 33॥

पुत्रों के भाग के अनुसार वर्णों के क्रम से पुत्रों को चार-तीन-दो एक भाग मिलते हैं। इसी प्रकार पत्नियों को भी मिलते हैं।। 33।।

The wife's portion, like a son's, is according to her tribe.

According to the shares of son. As sons are entitled to four shares, three, two, or one in the order of the classes; so are the wives also.

अनूढ़ानां दुहितॄणां पुत्रभागमनुसृत्य तच्चतुर्थांशः।

तदाह बृहस्पतिः -

समांशा मातरस्त्वेषां तुरीयांशाश्च कन्यकाः।। 34।।

अविवाहित पुत्रियों को पुत्रों के भाग का अनुसरण करते हुए उनका चतुर्थांश प्राप्त होता है। इस प्रयोग में बृहस्पति का मत है कि माताओं को समान अंश मिलता है और कन्याओं को चौथा अंश मिलता है।। 34।।

So is the daughter's : and her share is a quarter of the son's : as declared by Bṛhaspati.

Unmarried daughters, likewise, following the allotments of sons, take a quarter thereof. Thus Bṛhaspati says, "Mothers are equal shares with them; and daughters are entitled to a fourth part."

पुत्रस्य भागत्रयम्, कन्यकाया एको भागः।

यथाह कात्यायनः -

कन्यकानां त्वदत्तानां चतुर्थो भाग इष्यते।
पुत्राणाञ्च त्रयो भागाः स्वाम्यं स्वल्पधने स्मृतम्।। 35।।

पुत्र को तीन भाग और कन्या को एक भाग प्राप्त होता है। यथा कात्यायन का मत है - अविवाहित कन्याओं को चार भाग और पुत्रों को तीन भाग की प्राप्ति होती है। स्वामि के अल्प धन होने पर ही समझना चाहिए।। 35।।

She has one part and he has three : as Kātyāyana ordains.

A son has three parts and a daughter one. So Kātyāyana

declares : "For the unmarried daughter a quarter is allowed; and three parts being to the son. But the right of the owner (to exercise discretion) is admitted when the property is small."

अल्पधने पुत्रैः स्वात् स्वादंशादाकृष्य-कन्याभ्य-श्चतुर्थोऽशो दातव्यः।

'स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक्।
स्वात् स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः'।।36।।

(मनु0 9.118)

अल्पधन होने पर पुत्रों को अपने अपने अंश में से चौथाई अंश निकालकर कन्याओं को देना चाहिए। यथा मनु का वचन है - अपने अपने अंश का चतुर्थांश भाग भाई अपनी बहनों के लिए दें। यदि वे नहीं देना चाहते हैं तो पतित कहलाते हैं।। 36।। '

But, if the funds be small, the sons must contribute so much from their respective allotments.

If the funds be small, sons must give a fourth part to daughters, deducting it out of their own respective shares. Thus Manu says, "To the maiden sisters let their brothers give portions out of their own allotments respectively ; let each give a fourth part of his own distinct share : and they who refuse to give it, shall be degraded."

प्रदद्युरिति प्रदानश्रुतेः, अदाने च पतितत्वश्रुतेः। न कन्याभिरधिकारिबुद्धा ग्रहीतव्यम्। न ह्यधिकारिणे भ्रात्रेऽपरो भ्राता स्वादंशाद्ददाति।। 37।।

प्रदद्यु' कहने से देने का विधान बतलाया है। 'अदाने' अर्थात् न देने से पतित होने का श्रवण होता है। कन्या को अधिकारी की बुद्धि से ग्रहण नहीं करना चाहिए। एक भाई दूसरे भाई को अपना अंश नहीं देता।। 37।।

Daughters do not take portions in right of inheritance.

Let each give. From the mention of giving and the

denunciation of the penalty of degradation, if they refuse, it appears, that portions are not taken by daughters as having a title to the succession. For one brother does not give a portion out of his own allotment to another brother who has a right of inheritance.

यथा याज्ञवल्क्यः –

'असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः।
भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्वांशन्तु तुरीयकम्'॥

(याज्ञ0 2.125)

भगिनीनां संस्कार्यतामाह, नाधिकारिताम्॥ 38॥

याज्ञवल्क्य के अनुसार – पूर्व में विवाहित भाइयों के अनुसार अविवाहित भाइयों का विवाह संस्कार होना चाहिए। अविवाहित बहनों के लिए अपने अंश में से चौथाई भाग दें। बहनों के विवाह संस्कार के लिए कहा है, अधिकार के लिए नहीं॥ 38॥

But because the brethren are bound to defray the charges of a sister's marriage and a brother's initiation; as declared by Yājñavalkya.

Thus Yājñavalkya saying, "Uninitiated brothers should be initiated by those for whom the ceremonies have been already performed; but sisters should be disposed of in marriage, giving them as an allotment, a fourth part of a brother's own share," declares the obligation of disposing of them in marriage, not their right of succession.

एवञ्च बहुतरधने विवाहोचितधनं दातव्यम्, न चतुर्थांशनियम इति सिद्ध्यति॥ 39॥

इससे यह सिद्ध होता है कि बहुत धन होने पर विवाह के लिए उचित धन देना चाहिए चतुर्थांश का नियम कोई नहीं है॥ 39॥

If the wealth be great, a sufficiency for the nuptials, and not a quarter part, is given.

Thus (since the daughter takes not in right of

inheritance): if the wealth be great funds, sufficient for the nuptials should be allotted. It is not an indispensable ruler, that a fourth part shall be assigned.

एतञ्च कन्यापुत्रयोः समसङ्ख्यत्वे ज्ञातव्यम्, विषमसङ्ख्यत्वे च कन्याया एव बहुतरधनं वा स्यात्, पुत्रस्य वा निर्धनता स्यात्, न चैतदुचितम्, पुत्रस्य, प्राधान्यात्॥ 40॥

यह कन्या और पुत्र की समसंख्या होने पर ही समझना चाहिए। विषम संख्या होने पर कन्या को अधिक धन दिया जाये तो पुत्र निर्धन हो जाएगा, यह उचित नहीं है क्योंकि परिवार में पुत्र की प्रधानता होती है॥ 40॥

T[illegible] es an equal number of [illegible] art if the funds be small) [illegible] the number of [illegible] er be unequal, [illegible] r the son would b[illegible] nnot be proper, sinc[illegible] nheritance).

यच[illegible]

'आ[illegible] त्य वा पुनः।
अवश्यकार्याः संस्कारा भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः॥

(ना0 13.14)

अस्मान्नारदवचनादवश्यकर्तव्यत्वाद्भगिनीनां संस्कारस्य निरंशतापि न दोषायेति॥ 41॥

यह जो कहा गया है उससे बाधा उपस्थित होती है – 'पिता की सम्पत्ति न होने पर पूर्व में विवाहित भाइयों के द्वारा अपना अंश निकालकर बहनों का विवाह संस्कार करना चाहिए।' इस नारद के वचन से यह सिद्ध होता है कि भाइयों को बहनों का विवाह अवश्य करना चाहिए। ऐसी स्थिति में यदि भाई निरंशक हो जाए तो भी कोई दोष नहीं

है।। 41।।

An argument in support of the specific allotment grounded on a passage of Nārada.

It is stated as an object, that, as the defraying of the nuptials of a sister is an indispensable obligation under the text of Nārada, which expresses, "If no wealth of the father exist, the ceremonies must without fail be defrayed by brothers already initiated; contributing funds out of their own portions", the impoverishment of the brothers is no exceptionable consequence.

तदयुक्तम्; भ्रातृसंस्कारार्थत्वादस्य वचनस्य भ्रातृणाम् पूर्वसंस्कृतैरिति पाठस्यानाकरत्वात् भातृसंस्कारस्य च प्रकृतत्वात्।

इदं हि पूर्वमुक्तम् -

'येषान्तु न कृताः पित्रा संस्कारविषयः क्रमात्।
कर्तव्या भ्रातृभिस्तेषां पैतृकादेव तद्धनात्।।'

(ना0 13-33)

येषाम्, तेषामिति पुंलिङ्गनिर्देशात् एतदनन्तर-मेवाविद्यमाने। (13.33) इति वचनारम्भात् भ्रातृसंस्कारार्थमेवेदं वचनम्।। 42।।

जीमूतवाहन के अनुसार यह मत ठीक नहीं है। उनके अनुसार नारद का वचन भगिनियों के संस्कार के लिए नहीं अपितु भाइयों के संस्कार के लिए आया हैं यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो नारद के वचन में आया हुआ 'भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः' पाठ अनुचित हो जाएगा। अतः भाइयों के संस्कार का ही प्रकृत विषय है।

यह पहले नारद ने कहा है कि - पिता ने जिन भाइयों की संस्कारविधि क्रम से नहीं की उन सब भाइयों की पैतृक धन से पूर्व विवाहित भाइयों द्वारा संस्कार विधि की जानी चाहिए।' इस पद्य में येषां तेषां में पुल्लिंग का निर्देश किया गया हैं नारद ने येषां .... इत्यादि श्लोक के बाद अविद्यमाने पित्रर्थे ..... इत्यादि श्लोक का उल्लेख किया है।

अतएव इससे स्पष्ट होता है कि नारद का वचन भाइयों के संस्कार का ही उल्लेख करता है।। 42।।

Refutation of that argument.

That is wrong. For the text is intended to provide for initiatory ceremonies of brothers; and the reading of it, which expresses, that the ceremonies of brethren must be defrayed by those who are already initiated," is unauthentic; and the initiation of a brother was the subject treated of. It had been already said, "For those, whose forms of initiation have not b[illegible]rmed by the father, these ceremonies must [illegible]thren out of the patrimony." Here the [illegible]ose" are in the masculine gender. [illegible]edes the one before cited ("If no [illegible]hat passage therefore, relates to

[illegible] **धनविभागः।। 43।।**

[illegible] विभाग अध्याय समाप्त हुआ।। 43।।

[illegible] of the wealth of the father, grandfather, or other ancestor, (has been fully explained).

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्यायश्रीजीमूत-वाहनस्य कृतौ धर्मरत्नान्तर्गते दायभागे तृतीयाध्यायस्य द्वितीयपरिच्छेदस्समाप्तः। तृतीयाध्यायश्च समाप्तः।

चतुर्थोऽध्याय:

प्रथमपरिच्छेद:

अथ स्त्रीधनविभागार्थं प्रथमं स्त्रीधनं निरूप्यते।

तत्र विष्णुः -

पितृ-मातृ-सुत-भ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकं बन्धुदत्तं शुल्कान्वाधेयकम्।। इति स्त्रीधनम्।

(विष्णु0 10/18)

अब स्त्रीधन का विभाग बताने के लिए स्त्रीधन के स्वरूप का विवेचन करते हैं। यथा विष्णु का मत है कि - पिता-माता-पुत्र-भाई के द्वारा अग्नि के समक्ष जो कुछ दिया जाता है, आधिवेदनिक धन[1] कहलाता है। बन्धुओं द्वारा दिया गया धन, शुल्क एवं अन्वाधेयक धन सब स्त्रीधन कहलाते हैं।। 1।।

The peculiar property of a woman is of various sorts; as enumerated by Viṣṇu.

In the next place, for the purpose of teaching the distribution of a woman's separate goods, such property is first described. ON this subject Viṣṇu says, "What has been given to a woman by her father, her mother, her son, or her brother, what has been received by her before the nuptial fire, what has

---

1. टि. - द्वितीय स्त्री के विवाह इच्छुक व्यक्ति द्वारा पूर्व स्त्री के लिए पारितोषिक रूप में जो धन प्राप्त होता है वह आधिवेदनिक धन कहलाता है।

been presented to her on her husband's espousal of another wife, what has been given to her by kindred, as well as her perquisite, and a gift subsequent, are a woman's separate property.

अन्वाधेयमाह कात्यायनः –

विवाहात् परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुलात् स्त्रिया।
अन्वाधेयं तदुक्तन्तु लब्धं बन्धुकुलात्तथा।।
ऊर्ध्वं लब्धन्तु यत्किञ्चित् संस्कारात् प्रीतितस्स्त्रिया।
र्तुः पित्रोः सकाशाद्वा अन्वाधेयन्तु तद्भृगुः।।

ाधेय का स्वरूप कात्यायन ने इस प्रकार बताया है – ान्त स्त्री को पति द्वारा जो प्राप्त होता है बन्धु-बान्धवों से है वह अन्वाधेय स्त्रीधन कहलाता है। विवाहोपरान्त पति अथवा माता-पिता से प्राप्त होता है, उसे भृगु ने ।। 2।।

ed gift subsequent, is defined by Kātyāyana.

yana defines a gift subsequent. "What has been woman from the family of her husband at a time her marriage, is allied a gift subsequent; and so is is similarly received from the family of her kindred. r is received by a woman after her nuptials, either her husband or from her parents, through the affection of giver, Bhṛgu pronounces to be a gift subsequent."

बन्धुपदेन माता-पित्रोरुपादानम्, तेनायमर्थः-मातापितृ-द्वारेण सम्बन्धिनाम्, पित्रोश्च सकाशात् यत्तु विवाहात् परतो लब्धम्, तथा भर्तुः सकाशात् भर्तृकुलाच्च श्वशुरादितो यल्लब्धं धनम्, तदन्वाधेयम्। विष्णुवचने च बन्धुपदं मातुलाद्यभिप्रायम्, पित्रादीनां स्वपदेनैव निर्दिष्टत्वात्। परिणयनसमयलब्धस्य ब्राह्माद्यासुरादिविशेषेण भर्तुः, पित्रोर्वाऽधिकारात्।। 3।।

बन्धुपद से अभिप्राय माता-पिता के उपादान है, उसका यह अर्थ है कि माता-पिता के माध्यम से, विवाह के उपरान्त माता पिता से

जो कुछ प्राप्त होता है, पति से या उसके परिवार से, ससुर आदि से जो प्राप्त होता है वह सब अन्वाधेय कहलाता है। विष्णु के वचन में आए हुए बन्धु पद से अभिप्राय मामा से है। पितादि अपने पद से ही निर्दिष्ट है। विवाह के समय प्राप्त धन के प्रसंग में कहा गया है कि- ब्राह्मादि विधियों से विवाहिता स्त्री के धन पर भर्ता का और आसुरादि विधियों से विवाहिता स्त्री के धन पर माता-पिता का अधिकार है।। 3।।

Interpretation of his text.

By the word "kindred" her father and mother are denoted. Hence the meaning is this : any thing received subsequently to the marriage, from (maternal or paternal uncles or other) persons who are related through the father or the mother, or from those two parents themselves; or so received from the husband, or from his family, namely, her father-in-law and the rest; is a gift subsequent. But the term 'kindred', in the text of Viṣṇu, intends maternal uncles and others; for the father and the rest are specified by the appropriate terms : and either the husband, or the parents, inherit that which was received at the time of nuptials, according to the difference between marriages denominated Brāhma and those called Asura and so forth.

स्त्रीधनमाहतुर्मनु-कात्यायनौ -

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तञ्च प्रीत्तितः स्त्रियैः।
भ्रातृ-मातृ-पितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।।

(मनु0 9-194)

तथा नारदः-

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं भर्तृदायस्तथैव च।
भ्रातृदत्तं पितृभ्याञ्च षड्विधां स्त्रीधनं स्मृतम्'।।

(ना0 13-8)

स्त्रीधन के प्रसंग में मनु और कात्यायन का वचन है कि छः प्रकार का स्त्रीधन होता है, यथा 1. अध्यग्नि (विवाह के समय अग्नि

के समक्ष दिया गया धन), 2. अध्यावाहनिक (पतिगृह जाते समय वधू को दिया गया द्रव्य), 3. प्रीति, 4.5.6. भाई-माता और पिता द्वारा दिया गया द्रव्य स्त्रीधन कहलाते हैं। नारद ने भी इसी प्रकार के स्त्रीधन की चर्चा की है। कात्यायन ने अध्यग्नि की व्याख्या इस प्रकार से की है - विवाह के समय अग्नि के समक्ष स्त्री को जो कुछ दिया जाता है उसे बुद्धिमान लोग अध्यग्नि स्त्रीधान कहते हैं।। 4।।

Six sorts are specified by Manu and Kātyāyana.

Manu and Kātyāyana describe the separate property of a woman. "What was given before the nuptial fire, what was presented in the bridal procession, what has been conferred on the woman through affection, and what has been received by her from her brother, her mother, or her father, are denominated the six-fold property of a woman." So Nārada says : "What was given before the nuptial fire, what was presented in the bridal procession, her husband's donation and what has been given by her brother or by either of her parents, is termed the six-fold property of a woman."

एतद्व्याकुरुते कात्यायनः -

'विवाहकाले यत् स्त्रीभ्यो दीयते ह्यग्निसन्निधौ।
तदध्यग्निकृतं सद्भिः स्त्रीधनं परिकीर्तितम्।।
यत् पुनर्लभते नारी नीयमाना हि पैतृकात्।
अध्यावाहनिकं नाम तत् स्त्रीधनमुदाहृतम्।। 5।।

अध्यावाहनिक स्त्रीधन की व्याख्या कात्यायन के अनुसार इस प्रकार से है - पतिगृह जाते समय पिता के घर से जो कुछ भी स्त्री को प्राप्त होता है वह उसका अध्यावाहनिक स्त्रीधन कहलाता है।। 5।।

Kātyāyana defines gift before the nuptial fire.

Kātyāyana explains this : "What is given to woman at the time of their marriage, near the nuptial fire, is celebrated by the wise as the women's peculiar property bestowed before the nuptial fire. That again, which a woman receives while she is conducted from the parental (abode, to her husband's

dwelling), is instanced as the separate property of a woman, under the name of gift presented in the bridal procession."

पैतृकादित्येकशेषेण पितृमातृकुलात् यल्लभते धनं भर्तृगृहं नीयमाना तदध्यावाहनिकम्।। 6।।

'पैतृकात्' इस एक शेष से माता-पिता के कुल से जो कुछ प्राप्त होता है पति के घर जाते समय उसे अध्यावाहनिक कहा जाता है।। 6 ।।

Exposition of the text.

Since the term "parental" is derived from a complex expression, of which one member only is retained, the presents, which she receives from the family of either her father or her mother, while she is conducted to the house of her husband, are gifts presnted in the bridal procession.

भर्तृदायः-भर्तृदत्तं धनम्, भर्तृदायमनभिधाय, मन्वादिभिर्भर्तृदत्तस्याभिधानात् नारदेनापि भर्तृदत्तमनभिधाय भर्तृदायस्याभिधानात्।। 7।।

मन्वादि ने भर्तृदत्त का अभिधान किया है जबकि नारद ने भर्तुदत्तम् को न कहकर भर्तृदाय का अभिधान किया है।। 7।।

The word dāya in the passage above cited, signifies not heritage, but gift.

"Her busband's donation" (dāya) is wealth given (datta) to her by her husband; (not, as the word might by supposed to signify, the heritage of her husband). For Manu and other (viz. Kātyāyana and Viṣṇu) notice that which is given (datta) and Nārada specifies donation (dāya), without any separate notice of given (datta).

तथाऽन्यत्रापि भर्तृदत्ते भर्तृदायप्रयोगो दृष्टः।

यथा कात्यायनः -

'भर्तृदायमृते पत्यौ विन्यसेत् स्त्री यथेष्टतः।
विद्यमाने तु संरक्षेत् क्षपयेत्तत्कुलेऽन्यथा।। 8।।

अन्यत्र भी भर्तृदत्त के स्थान पर भर्तृदाय का प्रयोग दिखाई देता है। कात्यायन का वचन है कि पति की मृत्यु के बाद स्त्री पति द्वारा दिए गए धन को अपनी इच्छा से रखे परन्तु उसके (पति के) जीवन काल में उस धन की रक्षा करे या कुल के लिए खर्च कर दे।। 8।।

Other instances occur of that use of the term: as in a passage of Kātyāyana.

In other instances also, "husband's donation" is used for wealth given by the husband. Thus Kātyāyana says, "Let the woman place her husband's donation as she pleases, when he is deceased: but, while he lives, she should carefully preserve it, or else (if unable to do so) commit it to the family.

अस्यार्थः-भर्तृदत्तं धनं भर्तरि मृते यथेष्टं विनियुञ्जीत, जीवति तु तद्रक्षेत्। इदममुक्तहस्तताज्ञापनार्थम्, तथा व्यासवचनमपि भर्तृदेयपर्यन्तताज्ञापनार्थम्।। 9।।

इसका अर्थ है कि पति द्वारा दिए गए धन को भर्ता के मर जाने पर अपनी इच्छानुसार उसका उपभोग करे। यदि जीवित है तो उसकी रक्षा करे। यहाँ पर अमुक्त हाथ का ज्ञापन होता है अर्थात वह खुले हाथ से अपनी इच्छा से भोग करे। तथा व्यास वचन से पति द्वारा दिए गए धन को सीमित रखा है।। 9।।

Exposition of the text.

The meaning of the passage is this : wealth given to her by her husband, she may dispose of, as she pleases, when he is dead; but, while he is alive, she should carefully preserve it. This is intended as a caution against profusion.

यथा -

द्विसहस्त्रपरो दायः स्त्रियै देयो धनस्य तु।
यच्च भर्त्रा धनं दत्तं सा यथाकाममश्नुयात्'।।

द्विसहस्त्रपर्यन्तः स्त्रियै देयः, नाधिकः, केनेत्याकाङ्क्षायां भर्त्रेति श्रुतमन्वेति, न पुनरश्रुतकल्पना। तथाच देय इति ददातिर्मुख्यः स्यात्। मृतपतिधने तु तावति पत्न्या

एव स्वामित्वात् गौणः, स चान्याय्यः।। 10।।

यथा - पति सम्पत्ति में से दो सहस्त्र पण निकालकर स्त्री को दे। पति द्वारा दिए गए धन को स्त्री अपनी इच्छा से उपभोग करे।

दो हजार पण स्त्री को देने चाहिए, अधिक नहीं। किसके द्वारा दिए जाने चाहिए ऐसी आकांक्षा होने पर भर्ता के साथ अन्वय का श्रवण होता है, पुनः अश्रुत की कल्पना नहीं करनी चाहिए। तथा च देय में ददाति क्रिया मुख्य है। पति के मर जाने पर उतने धन पर पत्नी का स्वामित्व होने से गौण है, यह युक्तिसंगत नहीं है।। 10।।

Confirmed by a passage of Vyāsa; in which the same term occurs and must be taken in the same sense.

So the text of Vyāsa, concerning the limits of the value which may be given by her husband (exhibits the same term). "A present, amounting to two thousand (paṇas) at the most, may be given to a woman, out of the wealth : and whatever property is given to her by her husband let her use as she pleases." As far as two thousand (paṇas) a present may be given to a woman, but not more. In answer to the question by whom given? the construction refers to the word husband contained in the text; and one not contained in it must not be assumed. Thus the term (dāya) 'may be given' retains the literal sense of the verb (dā) to give. But since so much as is her deceased husband's estate, belongs to the widow, the sense becomes metaphorical (under another interpretation); and that is not reasonable.

यच्च भर्त्तृदत्तं धनम्, तद्यथाकाममश्नीयात्। अतोऽपुत्रस्य मृतस्य पत्युर्धने द्विसहस्त्रपर्यन्त एव पत्न्या अधिकारः, न सर्वत्रेति यदुक्तम्, तद्विद्वद्भिरनादेयम्'।। 11।।

पति द्वारा दिए गए धन को वह इच्छानुसार उपभोग करे। अतः पुत्रहीन पति के मर जाने पर दो हजार पण धन पर ही पत्नी का अधिकार है न कि सम्पूर्ण धन पर - यह जो कहा गया है वह विद्वानों द्वारा मान्य नहीं है।। 11।।

That passage does not limit a widow's participation of her husband's estate.

And what property is given to her by her husband, let her use as she pleases. Hence (since the text relates to a gift made by her husband, and not to an allotment delivered to her by an umpire adjusting the succession); the alleged conclusion, that the widow is competent to take so much of the property of her husband, who has died leaving no male issue, as amounts to two thousand (paṇas) and not the whole estate, must be rejected by the wise.

एतच्च विस्तरेण वक्ष्यते।। 12।।

इसकी विस्तार से व्याख्या करेंगे।। 12।।

This subject will be resumed in another place.

This and (the right of the widow to take the whole estate of her husband who leaves no male issue) will be discussed at full length (under the head of succession to the estate of one who has no male issue).

आह याज्ञवक्ल्यः-

'पितृ-मातृ-पति-भ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकञ्चैव स्त्रीधनं परिकीर्तितम्'।। 13।।

(याज्ञ0 2-144)

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि पिता, माता, पति, भाई के द्वारा प्रदत्त अग्नि के समक्ष जो कुछ प्राप्त होता है और अधिवेदनिक धन - स्त्रीधन कहलाता है।। 13।।

Yājñavalkya describes the separate property of a woman.

Yājñavalkya explains (a woman's property) : "What has been given to a woman (before or after her nuptials), by the father, the mother, the husband or a brother, or received by her at the nuptial fire or presented to her on her husband's marriage to another wife, (as also any other separate acquisition), is denominated a woman's property."

यच्च द्वितीयस्त्रीविवाहार्थिना पूर्वस्त्रियै पारितोषिकं धनं दत्तम्, तदाधिवेदनिकम्, अधिकस्त्रीलाभार्थत्वात्तस्य॥ 14॥

द्वितीय स्त्री के विवाह इच्छुक व्यक्ति द्वारा पूर्व स्त्री के लिए पारितोषिक रूप में जो धन प्राप्त होता है वह आधिवेदनिक धन कहलाता है॥ 14॥

Explanation of his text.

That wealth, which is given to gratify a first wife by a man desirous of marrying a second, is a gift on a second marriage : for its object is to obtain another wife (with the assent of the first)).

तथा देवलः-

वृत्तिराभरणं शुल्कलाभश्च स्त्रीधनं भवेत्।
भोक्त्री तत्स्वयमेवेदं पतिर्नार्हत्यनापदि॥ 15॥

देवल के मतानुसार- वृत्ति, आभूषण, शुल्क, ऋण-ब्याज - ये सब स्त्रीधन हैं। स्त्री स्वयं इनका उपभोग कर सकती है। आपद् काल से भिन्न समय में पति इसके लिए समर्थ नहीं है। अर्थात् पति आपत्काल में इसका उपभोग कर सकता है॥ 15॥

A passage of Devala on a woman's peculiar property.

So Devala says : "Her subsistence, her ornaments, her perquisite and her gains, are the separate property of a woman. She herself exclusively enjoys it; and her husband has no right to use it, unless in distress."

तथा व्यासः-

विवाहकाले यत्किञ्चित् वरायोद्दिश्य दीयते।
कन्यायास्तद्धनं सर्वमविभाज्यञ्च बन्धुभिः॥ 16॥

व्यास के मतानुसार-विवाह के समय वर को उद्देश्य में रख करके जो कुछ दिया जाता है वह कन्या का ही धन है। बन्धुओं द्वारा वह सारा अविभाज्य है॥ 16॥

And one of Vyāsa.

Vyāsa also : "Whatever is presented at the time of the nuptials to the bridegroom, intending (the benefit of the bride) belongs entirely to the bride; and shall not be shared by kinsman."

उद्दिश्येति-कन्याया इदं भवत्वित्युद्दिश्य वराय यद्दानम्, न पुनरेतदभिसन्धि विनापीत्यर्थः। अतएव विवाहकाल इति प्रदर्शनार्थम्, न पुनरेतदेव प्रयोजकम्, दात्रभिसन्धिनिमित्तत्वात् स्वत्वस्य।

तथा च प्रामाणिकं वचनम् -

'यद्दत्तं दुहितुः पत्ये स्त्रियमेव तदन्वियात्।
मृते जीवति वा पत्नी तदपत्यमृते स्त्रियाः॥

विवाहकाल इति न विशिनष्टि, अभिसन्धिस्तु दुहित्रन्वयाभिधानादेव लब्धत्वान्नोक्तः॥ 17॥

उद्दिश्य का अर्थ है - यह कन्या के लिए है - इस उद्देश्य से जो वर को दिया जाता है। यहाँ पर अभिसन्धि के बिना नहीं कहा (अभिसन्धि का अर्थ- इच्छा या संकल्प है) अतः विवाहकाल को बताने के लिए कहा है इसका यह प्रयोजन नहीं है। देने वाले की अभिसन्धि स्वत्व का कारण है। तथा च प्रामाणिक वचन है कि - "दुहिता के पति को दी गई सम्पत्ति पर दुहिता का अधिकार स्वीकार किया है और पति के जीवनकाल अथवा मृत्यु के उपरान्त उस धन की उत्तराधिकारिणी स्त्री की सन्तान होती है।" यहाँ विवाह काल का निर्देश नहीं किया गया अपितु संकल्पपूर्वक दिए गए धन की ओर संकेत है। 'दुहिता' और 'अन्वय' शब्द इसी (अभिसन्धि) को बतलाते हैं॥ 17॥

Exposition of this passage.

Intending, Designing, that it shall appertain to the bride. It is not meant, that the property becomes her's, even without such intention. Accordingly the time of nuptials is here stated illustratively; and not as the sole motive. For the will of the

giver is the cause of property. So the following authentic text does not specify, that it must be at the time of the nuptials. "What is presented to the husband of a daughter, goes to the woman, whether her husband live or die; and after her death, descends to her offspring." Here the giver's intention is not specified because it is implied by the word daughter.

तदेवमव्यवस्थितसङ्ख्यास्त्रीधनकीर्तनात् न षट्सङ्ख्या विवक्षिता, किन्तु स्त्रीधनकीर्तनमात्रपराणि वचनानि। तदेव च स्त्रीधनम् यत्र भर्तृतः स्वातन्त्र्येण दान-विक्रय-भोगान् कर्तुमधिकरोति॥ 18॥

इस प्रकार स्त्रीधन का वर्णन करने से ज्ञात होता है कि उसकी संख्या अनियत है, षट्संख्या विवक्षित नहीं है अपितु सभी वचन स्त्रीधनपरक कहे गए हैं। जहाँ भर्ता से स्वतन्त्र रहकर स्त्री दान-विक्रय और उपभोग करने की अधिकारिणी है॥ 18॥

The number of six sorts (see 4) is not restrictive: whatever is at her sole disposal, is a woman's separate property.

Since various sorts of separate property of a woman have been thus propounded without any restriction of number, the number of six (as specified by Manu and other), is not definitely meant. But the texts of the sages merely intend an explanation of woman's separate property. That alone is her peculiar property, which she has power to give, sell, or use, independently of her husband's control.

तदिदं किञ्चित् संक्षिप्याह कात्यायनः -

'प्राप्तं शिल्पैस्तु यद्वित्तं प्रीत्या चैव यदन्यतः॥
भर्तुः स्वाम्यं भवेत् तत्र शेषन्तु स्त्रीधनं स्मृतम्'॥ 19॥

कात्यायन ने संक्षेप में कहा है कि शिल्प से प्राप्त धन, स्नेहवश अन्य किसी के द्वारा प्राप्त धन पर पति का स्वामित्व होता है, शेष धन स्त्रीधन कहलाता है॥ 19॥

Kātyāyana expresses this meaning.

Kātyāyana expresses this rather concisely : "The wealth, which is earned by mechanical arts, or which is received through affection from any other (but the kindred) is always subject to her husband's dominion. The rest is pronounced to be the woman's property."

अन्यत इति पितृ-मातृ-भर्तृकुलव्यतिरिक्तात् यल्लधम्, शिल्पेन वा यदर्जितम्, तत्र भर्तुः स्वाम्यम् - स्वातन्त्र्यम् अनापद्यपि भर्ता गृहीतुमर्हति तेन स्त्रिया अपि धनं न स्त्रीधनम् अस्वातन्त्र्यात्।। 20।।

अन्यत इति से अभिप्राय पिता-माता-भर्ता के कुल से अतिरिक्त अन्य व्यक्ति से प्राप्त धन, शिल्प से अर्जित धन पर भर्ता का स्वाम्य अर्थात् अधिकार है। दूसरे शब्दों में उस धन को व्यय करने में पति की पूर्ण स्वतन्त्रता है। आपत्काल से भिन्न समय में भी पति ग्रहण करने का अधिकारी है। यह धन स्त्रीधन नहीं हो सकता क्योंकि वह अस्वतन्त्र है।। 20।।

Exposition of his text. The husband has power over wealth earned by his wife, or received in presents from any other but kindred.

Over that, which has been received by her "from any other" but the family of her father, mother, or husband, or has been earned by her in the practice of a mechanical art, (as spinning or weaving), her husband has dominion and full control. He has a right to take it, even though no distress exist. Hence, though the goods be her's, they do not constitute woman's property : because she has not independent power over them.

एतद्व्यतिरिक्तधनन्तु स्त्रियाः एव, दानविक्रयाद्यधिकारत्।

तदाह कात्यायनः-

'ऊढ़या कन्यया वापि पत्युः पितृगृहेऽथवा।
भर्तुःसकाशात् पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम्।।

सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते।
यस्मात्तदानृशंस्यार्थ तैर्दत्तं तत्प्रजीवनम्।।
सौदायिके सदा स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं परिकीर्तितम्।
विक्रये चैव दाने च यथेष्टं स्थावरेष्वपि'।। 21।।

इससे भिन्न धन को स्त्री दान-विक्रय करने की अधिकारिणी कही गई है। कात्यायन का मत है कि -

विवाहिता अथवा अविवाहिता स्त्री द्वारा पति के अथवा पिता के घर से पति से प्राप्त अथवा माता-पिता से प्राप्त धन उसका सौदायिक धन कहलाता है। सौदायिक धन को प्राप्त करके स्त्रियों को उसमें पूर्ण स्वतन्त्रता दी है। पिता-पति द्वारा दिया गया जीवनोपयोगी धन उन पर कृपा-स्नेह प्रदर्शित करने के लिए दिया जाता है। सौदायिक धन में स्त्रियों को सदैव स्वतन्त्रता दी है कि वह अपनी इच्छा से जैसे विक्रय एवं दान कर सकती है उसी प्रकार स्थावर सम्पत्ति में भी।। 21।।

The wife has sole power over other descriptions of property.

But in other descriptions of property excepting these two, the woman has the sole power of gift, sale or other alienation. So Kātyāyan declares, "That which is received by a married woman or a maiden, in the house of her husband or of her father, from her husband or from her parents, is termed the gift of affectionate kindred. The independence of women, who have received such gifts, is recognised in regard to that property; for it was given by their kindred to soothe them, and for their maintenance. The power of women over the gifts of their affectionate kindred is over celebrated both in respect of donation and of sale according to their pleasure, even in the case of immovables."

सुदायः-सम्बन्धिभ्यो लब्धां सौदायिकम्।। 22।।

सुदायः शब्द से सौदायिक बना है जिसका अर्थ है - संबन्धियों से प्राप्त धन।। 22।।

Explanation of the text.

What is obtained from kind relations, (meaning persons of her father's family or her mother's), is the gift of affectionate kindred.

स्थावरेऽपि भर्तृदत्तमात्रे स्त्रिया दानाद्यनधिकारः।

तदाह नारदः-

'भर्त्रा प्रीतेन यद्दत्तं स्त्रियै तस्मिन् मृतेऽपि तत्।
सा यथाकाममश्नीयात् दद्याद्वा स्थावरादृत्ते'॥

भर्तृदत्तविशेषणात् भर्तृदत्तस्थावरादृते अन्यत् स्थावरं देयमेव भवति, अन्यथा 'यथेष्टं स्थावरेष्वपी'ति विरुध्येत॥ 23॥

स्थावर से अभिप्राय है कि पति द्वारा दी गई स्थावर में स्त्री को दान करने का अधिकार नहीं है। नारद का वचन है कि - भर्ता ने स्नेहवश स्त्री को जो कुछ भी दिया है उसके मर जाने पर वह स्थावर सम्पत्ति को छोड़कर इच्छानुसार शेष धन का उपभोग कर सकती है।

भर्तृदत्त विशेषण से यह प्रतीत होता है कि भर्ता द्वारा दिए गए स्थावर को छोड़कर शेष अन्य स्थावर का दानादि कर सकती हैं यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो यथेष्टं स्थावरेष्वपि के साथ विरोध हो जायेगा॥ 23॥

Immovables given to her by her husband may not be aliened by her. A passage of Nārada proves this. Other immovables may be aliened.

But in the case of immovables bestowed on her by her husband, a woman has no power of alienation by gift or the like. So, Nārada declares : "What has been given by an affectionate husband to his wife, she may consume as she pleases, when he is dead, or may give it away, excepting immovable property." It follows from the specific mention of "given by a husband;" that any other immovable property, except such as has been given to her by him, may be aliened

by her. Else (if this text forbid donation in the case of immovables in general), the preceding passage concerning the power of women in respect of donation and of sale, "according to their pleasure, even in the case of immovables." would be contradicted.

भर्ता तु यदा दुर्भिक्षादौ स्त्रीधनं विना वर्तनाक्षमः, तद्ग्रहीतुमर्हति नान्यदा।

यदाह याज्ञवल्क्यः-

'दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रतिरोधके।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति'।।
(याज्ञ0 2-148)

अन्यत्र पुनरधिकारमाह कात्यायनः -

न भर्ता नैव च सुतो न पिता भ्रातरो न च।
आदाने वा विसर्गे वा स्त्रीधने प्रभविष्णवः।।
यदि ह्येकतरस्त्वेषां स्त्रीधनं भक्षयेद्बलात्।
स वृद्धिं प्रतिदाप्यः स्याद्दण्डञ्चैव समाप्नुयात्।।
तदेव यद्यनुज्ञाप्य भक्षयेत् प्रीतिपूर्वकम्।
मूलमेव तदा दाप्यो यदा स धनवान् भवेत्।।
अथ चेत् स द्विभार्यः स्यात् न च तां भजते पुनः।
प्रीत्या विसृष्टमपि चेत् प्रतिदाप्यः स तद्बलात्'।।
ग्रासाच्छादनवासानामुच्छेदो यत्र योषितः।
तत्र स्वमाददीत स्त्री विभागं रिक्थिनां तथा'।। 24।।

पति जब दुर्भिक्ष अर्थात् आकालादि के समय स्त्रीधन के बिना निर्वाह करने में असमर्थ हो तो वह स्त्रीधन ले सकता है, अन्यथा नहीं। यथा याज्ञवलक्य का वचन है कि -

दुर्भिक्ष के समय, धार्मिक कार्य में, रुग्णावस्था में तथा बन्दी बनाए जाने पर पति यदि स्त्रीधन का व्यय करता है तो वापिस करने के

लिए उसे बाध्य नहीं किया जा सकता। कात्यायन ने पुनः कहा है कि- पति, पुत्र, पिता और भाई इनमें से किसी को भी स्त्रीधन ग्रहण या विक्रय करने का अधिकार नहीं है। यदि इनमें से कोई एक भी बलपूर्वक स्त्रीधन का उपयोग करता है उसे ब्याज सहित वापिस देना चाहिए और राजा को उसे दण्ड देना चाहिए। यदि कोई स्नेहवश अनुमति लेकर उसका उपयोग करता है तो उसके धनवान् होने पर मूल सहित वापिस कर देना चाहिए। यदि पति दो पत्नीवाला हो एक उनमें से उपेक्षित हो भले ही उसने स्नेहवश कुछ दिया हो तो भी उसे बलपूर्वक स्त्रीधन देना पड़ता है। जहाँ पर स्त्रियों के भोजन-वस्त्र और निवास स्थान का नाश हो वहाँ सम्पत्ति के उत्तराधिकारियों से स्त्री को अपना भाग ले लेना चाहिए।। 24।।

In distress, a husband may use his wife's property : as declared by a passage of Yājñavalkya. But in no other case. Kātyāyana directs a woman's property to be restored, with or without interest; according as it was taken by her consent or against it.

However, if the husband have no means of subsistence, without using his wife's separate property, in a famine or other distress, he may take it in such circumstances : but not in any other case. So Yājñvalkya declares : "A husband is not liable to make good the property of his wife, taken by him in a famine, or for the performance of a duty, or during illness, or while under restraint." Kātyāyana, again, denies the right of the husband to do so in any other circumstance : "Neither the husband, nor the son, nor the father, nor the brothers, can assume the power over a woman's property to take it or to bestow it. If any one of the these persons by force consume the woman's property, he shall be compelled to make it good with interest, and shall also incur a fine. If such person, having obtained her consent, use the property amicably, he shall be rquired to pay the principal, when he become rich. But, if the husband have a second wife and do not show honour to his first wife, he shall be compelled by force to restore her property,

though amicably lent to him. If food, raiment and dwelling be withheld from the woman, she may exact her due supply and take a share (of the estate) with the co-heirs."

स्त्रिया धनं गृहीत्वा यद्यपरभार्यया सह वसति; ताञ्चावजानीते, तदा गृहीतधनं राज्ञा बालाद्दाप्यम्, भक्ताच्छादनादिकं यदि भर्ता न ददाति, तदा तदपि स्त्रिया आकृष्य ग्राह्यम्।। 25।।

पति यदि स्त्री का धन लेकर दूसरी पत्नी के साथ रहने लगता है और प्रथम पत्नी की उपेक्षा करता है तब राजा को पति से बलपूर्वक धन ग्रहण करके पूर्व पत्नी को दिलवाना चाहिए। यदि पति पत्नी को भोजन-वस्त्रदि नहीं देता तब स्त्री को बलपूर्वक ले लेना चाहिए।। 25।।

If she be neglected by her husband, she may exact a provision from him.

If the husband, having taken the property of his wife, live with another wife and neglect her, he shall be compelled to restore the property taken by him. If he do not give her food, raiment and the like, that also may be exacted from him by the woman.

इति स्त्रीधनलक्षणम्।। 26।।

स्त्रीधन लक्षण अध्याय समाप्त हुआ।। 26।।

Conclusion

Thus a definition of woman's property has been propounded.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्नान्तर्गते दायभागे चतुर्थे प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः।

द्वितीयपरिच्छेदः

इदानीं स्त्रीधनविभागोऽभिधीयते।

तत्र मनुः-

'जनन्यां संस्थितायान्तु समं सर्वे सहोदराः।
भजेरन् मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः'॥ 1॥
(मनु0 9-102)

अब स्त्रीधन के विभाग का निरूपण किया जाता है। मनु का वचन है - माता के मरने पर सब सहोदर भ्राता और सहोदर बहनें माता के धन को बराबर-बराबर प्राप्त करते हैं॥ 1॥

Manu propounds the succession to a woman's property.

In the next place, partition of woman's property is explained. On that subject Manu says, "When the mother is dead let all the ulterine brothers and the uterine sister equally divide the maternal estate."

द्वन्द्वाश्रवणेऽपि तत्तुल्यार्थकचकारेण भ्रातृ-भगिन्योरित-रेतरयुक्तयोर्विभागप्रतिपादनात् भगिन्यः, सहोदराश्च विभजेरन्नित्ययमेवास्या वचनस्यार्थः॥ 2॥

द्वन्द्व समास का श्रवण न होने पर भी उसके समानार्थक चकार से सहोदर भाई एवं भगिनी दोनों का समान अधिकार प्रतीत होता है॥ 2॥

It is inherited by her sons and daughters conjointly.

Since this suggests the participation of brohter and sister connected in the sentence by reciprocation, although the conjunctive compound do not there occur, by means however of the conjunctive particle, which bears the same import (and is contained in the text), the meaning of the passasge must be this; "Let sisters and brothers of the whole blood share the

estate."

बृहस्पतिरपि चकारात् समुच्चयमाह-

'स्त्रीधनं तदपत्यानां दुहिता च तदंशिनी।
अप्रत्ता चेत् समूढ़ा तु न लभेन्मातृकं धनम्'।। 3।।

बृहस्पति के वचन से भी चकार से समुच्चय का अर्थ अभिप्रेत है -

स्त्रीधन उसकी सन्तान को मिलता है और पुत्रियों को मिलता है यदि वह अविवाहिता है। विवाहिता होने पर मातृधन की प्राप्ति नहीं होती।। 3।।

So Bṛhaspati declares.

Bṛhaspati likewise expresses assemblage by the conjunctive particle in the following passage. "A woman's property goes to her children; and the daughter is a sharer with them, provided she be unaffianced; but, if married, she shall not receive the maternal wealth."

अपत्यपदं पुत्रपरम्। तेषामप्रत्तादिभिर्दुहितृभिः सह मातृधनविभागः।

तथा च शङ्खलिखितौ -

'समं सर्वे सोदर्या द्रव्यमर्हन्ति कुमार्यश्च'।। 4।।

यहाँ अपत्य पद का अर्थ पुत्र से है। उसमें अविवाहित पुत्रियों को माता का धन मिलता है। शंखलिखित का मत है कि - (माता के धन में) सब सहोदर भाई और कुमारी बहनें बराबर-बराबर द्रव्य प्राप्त करते हैं।। 4।।

Śaṅkha and Likhita ordain their equal particiaption.

Her the term children intends sons : and they share their mother's goods with unbetrothed daughters. So Śaṅkha and Likhita say, "All uterine brothers are entitled to the wealth equally; and so are unmarried sisters."

सर्वत्रैव प्रथमं पुत्रोपादानात् सर्वावस्थस्य पुत्रस्य मातृधनेऽधिकारः, चकारश्रुतिश्च सर्वत्रानुगता समुच्चय-वाचिका॥ 5॥

सब जगह पहले पुत्र का उल्लेख होने से सभी अवस्थाओं में पुत्र का माता के धन में अधिकार है। चकार श्रवण से सब जगह समुच्चय का अर्थ है॥ 5॥

The son in herits whether initiated or unimitiated.

Since the son is mentioned first in all these passages, he a has a right to succession to his mother's wealth, whatever be his state (initiated or uninitiated): and the conjunctive particle, which likewise occurs in every one of those texts, denotes assemblage.

एतावताप्युद्ग्राहमल्लस्य देवलवचनं गलहस्तः।

यथा -

'सामान्यं पुत्र-कन्यानां मृतायां स्त्रीधनं स्त्रियाम्।
अप्रजायां हरेद्भर्ता माता भ्राता पितापि वा'॥ 6॥

उद्ग्राहमल्ल का देवलवचन गलहस्त है यथा - स्त्री की मृत्यु पर स्त्रीधन पुत्र और पुत्रियों का सामान्य होता है। यदि सन्तान न हो तो भर्ता, माता, भाई अथवा पिता को मिल जाता है॥ 6॥

The text of Devala is conclusive against the supposition, that unmarried daughters and sons inherit successively.

A passage of Devala is conclusive against one who persists in the controversy, notwithstanding the foregoing reasons. It is as follows: "A woman's property is common to her sons and unmarried daughters, when she is dead; but, if she leave no issue, her husband shall take it, her mother, her brother, or her father."

इह पुत्र-कन्ययोः साधारणं मातृधनमिति सुव्यक्तम्, केवलकुमार्याः सकलमातृधनाधिकारित्वे यौतकधने विशेषवचनं

मन्वादीनामानर्थकं स्यात्, सर्वत्राधिकाराविशेषात्।। 7।।

यहाँ कन्या और पुत्र दोनों का माता के साधारण स्त्रीधन में समान अधिकार है। केवल कुमारी कन्याओं का माता के धन में सम्पूर्ण अधिकार नहीं है क्योंकि ऐसा स्वीकार करने पर यौतक धन के विषय में जो मनु आदि के विशेष वचन हैं, वे निरर्थक हो जाएंगे।। 7 ।।

Else the special right of the maiden daughter in a particular case would not be declared.

Here it is expressly declared, that the mother's goods are common to the son and unmarried daughter : and if the maiden daughter were exclusively entitled to the whole of her mother's estate (notwithstanding the existence of her brother), the special texts of Manu and others, (which will be cited) concerning the (Yautuka) wealth given at the nuptials, would be unmeaning since she would have the right in all cases indiscriminately.

यः पुनरेवं समाधानं ब्रूते-भ्रातृ-भगिन्योस्तुल्यवज्जननी-धनाधिकारित्वे समभागविधानं युक्तं केवलभगिनीनाम्, तद्भावे च केवलभ्रातृणां धनसम्बन्धो 'समं स्यादश्रुतत्वाद्विशेषस्ये'ति न्यायत एव समत्वप्राप्तेरनर्थकं सममिति।

स एवं वाच्यः- भ्रातृभगिन्योरप्यधिकारे समं स्यादिति न्यायात् समत्वप्राप्तेरविशेषादानर्थक्यस्य तदवस्थत्वात्। किञ्च केवलभ्रात्रधिकारपक्षेऽपि पितृधन इव मातृधनेऽपि विंशोद्धा-रादिप्रसक्तिनिवर्तकतया समपदस्य सार्थकत्वात् कथमनर्थकता? अतो वचनन्यायानभिज्ञः सर्वैः प्राज्ञैरवज्ञेय एव किञ्चिज्ज्ञ इति।। 8।।

यदि कोई शंका करते हुए यह समाधान करे कि माता के धन पर बहन-भाई का समान अधिकार बतलाने के लिए समम् शब्द का प्रयोग किया गया है किन्तु मातृधन केवल भगिनियों में और उनके अभाव में केवल भाइयों में विभक्त होता है तो समम् शब्द का प्रयोग

निरर्थक है क्योंकि मीमांसा के वचन 'समं स्यादश्रुतत्वाद्विशेषस्य' में निर्दिष्ट न्याय से वहाँ समत्व स्वतः सिद्ध है।

उपर्युक्त युक्तियों का खण्डन करते हुए कहा जाता है कि साधारण मातृधन में भाइयों और बहनों का समान अधिकार 'समं स्यात्' इस न्याय से प्राप्त है इसलिए स्मृतिकारों के वचनों में 'समम्' शब्द का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। यदि केवल भाइयों में विभाजन हो तो वहाँ 'समम्' शब्द निरर्थक न होकर सार्थक है क्योंकि पितृधन के समान मातृधन में पुत्रों में विभाजन उद्धार क्रम से न होकर सम विभाजन होता है। अतः उपर्युक्त वचन न्याय के प्रतिकूल होने के कारण सभी बुद्धिमानों के द्वारा त्याज्य है।। 8।।

A different argument rejcted.

But if one should propose this solution : 'the ordaining of equal participation is fit, if the brother and sister have alike a right of succession to their mother's property; but, if sisters only inherit equally, or, on failure of them brothers only, the declared equality would be impertinent, since it might be deduced, without such declaration, from reasoning, because no exception to it has been specified:' he might be thus answered (by an obstinate antagonist): 'It is no less impertinent to declare equality, on the assumption, that brother and sister inherit; since their parity may be in like manner deduced from reasoning.' (The antagonist might proceed to say) 'Besides, how is it impertinent? since, in the case of brothers inheriting along, (upon failure of sisters), the term "equal" is unquestionably pertinent, as if obviates the supposition, that deductions of a twentieth and the like shall be allowed in the instance of the mother's estate, as in that of the father's.' Therefore, the half learned person (who argues, that the declaration of equality would be impertinent), must be disregarded by the wise, as unacquainted with the letter of the law, and with the reasoning (which has been here set forth).

किन्तूक्तादेव हेतोः पुत्र-कुमारीदुहित्रोस्तुल्यवदधिकारः,

एतयोश्चान्यतराभावेऽन्यतरस्य तद्धनम्, द्वयोरप्येतयोरभावे तु ऊढ़ायाः दुहितुः पुत्रवत्याः, सम्भावितपुत्रायाश्च तुल्योऽधिकारः, स्वपुत्रद्वारेण पार्वणपिण्डदानसम्भवात्।। 9।।

इस प्रकार उक्त हेतु से पुत्रों और अविवाहित पुत्रियों का समान अधिकार है। इन दोनों में से एक के अभाव में अन्य का अधिकार है। अर्थात् पुत्र के अभाव में अविवाहित पुत्री का और अविवाहित पुत्री के अभाव में पुत्र का अधिकार है। इन दोनों के अभाव में विवाहित पुत्री का अधिकार है। पुत्रियों में भी पुत्रवती एवं सम्भावित पुत्री का समान अधिकार है क्योंकि पुत्री अपने पुत्र के माध्यम से पार्वण श्राद्ध एवं पिण्डदान करती है।। 9।।

On failure of either, the other is heir. On failure of both, a daughter, who has or may have issue, inherits.

But for the cause above stated, the son and maiden daughter have a like right of succession. On failure of either of them, the goods belong to the other. On failure of both of them, the succession devolves, with equal rights, on the married daughter who has a son and on her who may have male issue. For, by means of their sons, they may present oblations of solmn obsequies.

अत एव पूर्वोक्तदुहित्रभावे दौहित्रस्यैव धनाधिकारः। 'दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवदि' (मनु0 9-130) ति मनुवचनात्, न तु बन्ध्या-विधवादुहित्रोः स्वसत्तया, स्वजन्यसत्तया च पार्वणपिण्डदानाभावात्।

अत एव नारदः

पुत्राभावे च दुहिता तुल्यसन्तानदर्शनात्।। 10।।

(ना0 13-50)

अतएव पूर्वोक्त दुहिता के अभाव में दौहित्र का धन में अधिकार है क्योंकि मनु का मत है कि 'दौहित्र भी पौत्र के समान ही

मातामह का परलोक में उद्धार करता है। माता के धन में बन्ध्या एवं पुत्रहीन विधवा पुत्री का अधिकार नहीं है क्योंकि न तो वह स्वयं ही और न ही पुत्र के द्वारा पार्वण श्राद्ध एवं पिण्डदान कर सकती है। अतएव नारद ने इस प्रसंग में कहा है - पुत्र के अभाव में पुत्री का अधिकार है क्योंकि वह भी पुत्र के समान सन्तान मानी गई है।। 10।।

The daughter's son inherits, in their default.

Hence (since the right is founded on the presenting of oblations at solemn obsequies), the daughter's son is entitled to the property, on failure of the daughters above described : for the text of Manu express, "Even the son of a daughter delivers him in the next world, like the son of a son." Neither a barren nor a widowed daughter inherits; for these present not oblations at solemn obsequires, either in person or by means of their offspring. Accordingly (since the daughter's right of succession is founded on benefits conferred through the means of her male isse, or since neither the barren nor the widowed daughter's right of equal succession is recognised); Nārada says, "On failure of the son, the daughter inherits; for she equally continues the lineage."

पौत्र-दौहित्रयोस्तु सद्भावे पौत्रस्यैवाधिकारः, पुत्रेण परिणीतादुहितुर्बाधात् बाधकपुत्रेण बाध्यदुहितृपुत्रबाधस्य न्याय्यत्वात्।। 11।।

पौत्र और दौहित्र दोनों विद्यमान हों तो पौत्र का ही अधिकार है। क्योंकि विवाहित पुत्री, पुत्र के द्वारा बाधित है। विवाहित पुत्री के बाधित होने पर उसका पुत्र स्वयमेव ही बाधित होता है। अतः दौहित्र से पूर्व पौत्र का अधिकार है।। 11।।

After the son's son.

But if there be a son's son and a daughter's son claiming the succession, the son's son has the exclusive title; for it is reasonable, since the married daughter is debarred from the inheritance by the son, that the son of the debarred daughter shall be excluded by the son of the person who bars her claim.

उक्तानान्तु सर्वेषां दौहित्रपर्यन्तानामभावे बन्ध्या-विधवयोरपि मातृधनाधिकारिता, तयोरपि तत्प्रजात्वात् प्रजाभावे चान्येषामधिकारात्॥ 12॥

उक्त सभी दौहित्र पर्यन्त अभाव होने पर बन्ध्या एवं पुत्रहीन विधवा का माता के धन में अधिकार है क्योंकि वे भी माता की सन्तान हैं। सन्तान के अभाव में अन्य का अधिकार होता है॥ 12॥

Next the barren or widowed daughter succeeds.

On failure of all these above-mentioned, including the daughter's son (and the son's grandson), the barren and the widowed daughters both succeed to their mother's property; for they also are her offspring; and the right of others to inherit is declared to be on failure of issue.

यत्तु दुहितृमात्राधिकारार्थं गौतमवचनम् -

स्त्रीधनं दुहितृणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानाञ्च।

(गौतम0 28-22)॥

यच्च नारदस्य 'मातुर्दुहितरोऽभावे दुहितृणां तदन्वयः'।

(ना0 13-2)॥

यच्च कात्यायनस्य

'दुहितृणामभावे तु रिक्थं पुत्रेषु तद्भवेत्'।

यच्च याज्ञवल्क्यस्य

मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वय॥ (याज्ञ0 2, 118) **इति। तानि पूर्वोक्तदेवलादिवचनविरोधेन यौतकद्रव्य-विषयाणि।**

अत एव मनुः -

'मातुश्च यौतकं यत् स्यात् कुमारीभाग एव सः'॥13॥

(मनु0 9, 131)

दुहितामात्र का अधिकार बताने वाले कुछ वचन हैं यथा गौतम के अनुसार स्त्रीधन पुत्रियों को मिलता है। पुत्रियों में भी पहले विवाहिता को मिलता है। सभी विवाहिता हों तो उसमें जो निर्धन होती है उसको वरीयता मिलती है। नारद के वचनानुसार - माता का धन पुत्रियों को मिलता है। उनके अभाव में उनकी सन्तान को मिलता है। कात्यायन का वचन है कि पुत्रियों के अभाव में पुत्रों को स्त्रीधन मिलता है। याज्ञवल्क्य का इस प्रसंग में मत है कि ऋण से बचे हुए माता के धन को पुत्री ग्रहण करती है। पुत्री न हो तो पुत्रों को मिलता है। पूर्वोक्त वचन यौतक धन के विषय में है और देवलादि वचनों के साथ विरोध है।

अतएव मनु का वचन है कि - माता के यौतुक धन पर कन्याओं का अधिकार होता है।। 13।।

Passages, seemingly declaratory of the daughter's succession, to the exclusion of the son, relate to wealth received by the mother at her nuptials.

But the text of Gautama, "A woman's separate property goes to her daughters unaffianced, and to those not actually married;" that of Nārada, "Let daughters divide their mother's wealth; or, on failure of daughters, her male issue;" a passage of Kātyāyana, "But, on failure of daughters, the inheritance belongs to the son," as also one of Yājñavalkya, daughters share the residue of their mother's property, after payment of her debts; and the male issue succeeds in their default;" relate only to the (yautuka) wealth given at nuptials; for these passages contradict the text of Devala above cited (see 6). Acoordingly (since it is in the case of wealth given at nuptials, that the unmarried daughter has the prior right of succession; or has the exclusive right); Manu says, "Property given to the mother on her marriage (yautuka) is the share of her unmarried daughter."

यौतकम्-परिणयनलब्धम्। यु मिश्रण इति धातोर्युत इतिपदं मिश्रतावचनम्, मिश्रता च स्त्री-पुरुषयोरेकशरीरता।

विवाहाच्च तद्भवति, 'अस्थिभिरस्थीनि, मांसैर्मांसानि, त्वचा त्वचमिति' श्रुतेः। अतो विवाहकाले लब्धं यौतकम्।। 14।।

यौतुक का अर्थ है - विवाह में प्राप्त धन। यह युत् धातु यु के मिश्रण से बना है जिसका अर्थ है, मिश्रित करना। स्त्री और पुरुष के मिश्रण से एक शरीर हो जाना। यह विवाह से ही होता है यथा श्रुति का वचन है - स्त्री के अस्थि के साथ पुरुष की अस्थि का एक होना, माँस के साथ मांस, त्वचा के साथ त्वचा। अतः विवाह के समय प्राप्त धन को यौतुक कहते हैं।। 14।।

Derivation and meaning of the term *Yautuka* or *yautaka*.

Here yautuka signifies property given at a marriage : the word Yuta, derived from the very yu to mix, imports "mingling"; and mingling is the union of man and woman as one person; and that is accomplished by marriage. For a passage of Scripture expresses "Her bones become identified with his bones, flesh with flesh, skin with skin." Therefore, what has been received at the time of the marriage, is denominated *Yautuka.*

अत एव वसिष्ठः

'मातुः पारिणाय्यं स्त्रियो विभजेरन्।।

(वसिष्ठ घ0 17, 40)

पारिणाय्यम् परिणयनलब्धं धनम्।। 15।।

वसिष्ठ के वचनानुसार भी यही कहा गया है कि - माता के विवाह के समय जो धन प्राप्त हो उसे स्त्रियों अर्थात् कन्याओं को बाँट लेना चाहिए। पारिणाय्यम् का अर्थ - विवाह के समय प्राप्त धन।। 15।।

Answering to pāriṅāyya in Vasiṣṭha's text.

Accordingly (since the term signifies wealth received at the time of the marriage); Vasiṣṭha says, "Let the females share the nuptial presents (pāriṇāyya) of their mother." For pāriṅāyya signifies wealth received at a marriage (parinayana)

यत्तु मनुवचनम्

'स्त्रियास्तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथञ्चन।
ब्राह्मणी तद्धरेत् कन्या तदपत्यस्य वा भवेत्'॥

(मनु. 9, 118)

अत्र 'पित्रा दत्तमि'ति विशेषणात्, विवाहसमयादन्यदापि यत् पितृदत्तम्, तत् कन्याया एवेत्येतदर्थम्। ब्राह्मणी-पदञ्चानुवादः।

यद्वा ब्राह्मणीपदस्य चानर्थक्यभयात् क्षत्रियादिस्त्रीणा-मनपत्यानां पितृदत्तं धनं सपत्नीदुहिता ब्राह्मणीकन्या हरेत्; न पुनरप्रजास्त्रीधनं भर्तुरितिवचनावकाश इति वचनार्थः, अन्यथा सकलवचनानामसामञ्जस्यं स्यात्॥ 16॥

यह जो मनु का वचन कहा गया है कि - पिता द्वारा दिए गए धन को ब्राह्मणी कन्या और उसके अभाव में (पुत्र) सन्तान प्राप्त करती है। यहाँ पर ''पित्रा दत्तम्' अर्थात् 'पितृदत्तधन' विशेषण से अभिप्राय है कि - विवाह समय के अतिरिक्त अन्य समय में पिता द्वारा दिया गया धन कन्या का होता है। ब्राह्मणी पद से तात्पर्य यह है कि - ब्राह्मणी पद के अनर्थ हो जाने के भय से क्षत्रियाादि वर्णों की स्त्रियों के निस्सन्तान मरने पर पितृदत्तधन को ब्राह्मण-जातीय सपत्नी-कन्या प्राप्त करती है, ''निस्सन्तान स्त्री के धन को पति प्राप्त करता है'' इस वचन का यहाँ अवकाश ही नहीं रहता। अन्यथा सब वचनों का असंबन्ध हो जाएगा॥ 16॥

A passage of Manu explained.

As for a passage of Manu, "The wealth of a woman, which has been in any manner given to her by her father, let the Brāhmaṇi damsel take; or let it belong to her offspring," since the text specifies "given by her father," the meaning must be that property, which was given to her by her father, even at any other time besides that of the nuptials, shall belong

exclusively to her daughther: and the term Brāhmaṇi is merely illustrative (including, that a daughter of the same tribe with the giver inherits). Or, lest the term should be impertinent, the text may signify that the Brāhmaṇi damsel, being daughter of a contemporary wife, shall take the property of the Kṣatriyā and of other wives dying childless, which had been given to them by their fathers. The precept, which directs, that "the property of a childless woman shall go to her surviving husband;" does not here take effect. Such is the meaning of the passage; for else (according to the preceding interpretation) all the texts (which declare the equal right of the son and daughter, to inherit their mother's property in certain cases), would be incongruous.

न च वाच्यं नारदादिभिर्दुहितुरभावे दुहितुः पुत्राणामेव धनाधिकारो दर्शितः, प्रत्यासन्नदुहितृपदेनैवान्वयपदस्यान्वयादिति यतो दुहितृपदस्य जन्यविशेषपरत्वेन जनकाकाङ्क्षितत्वात्।। 17।।

नारदादि के वचनों द्वारा दुहिता के अभाव में दुहिता के पुत्रों का धनाधिकार जो दिखाया गया है, उसे भी उचित नहीं मानना चाहिए। क्योंकि निकटवर्ती दुहिता पद के साथ 'अन्वय' का संबन्ध नहीं हो सकता क्योंकि दुहिता और अन्वय दोनों जन्य हो जाएंगे और जनक की आकांक्षा बनी रहेगी।। 17।।

The daughter's son is not meant, where it is said, that issue made succeeds on failure of daughters.

It must not be argued, that the succession of the daughter's sons, on failure of the daughter, is shown by Nārada and others (as Yājñavalkya), because the word "issue" is connected in construction with daughter, which is the nearest term. For the word daughter, as signifying a distinct (viz., female) progeny, requires a parent for its correlative, and must not be connected in construction with "son" another progeny suggested by the term "issue" : since (both terms) alike (need a

correlative indicating the parent).

न जन्यान्तरेणान्वयपदोपात्तेन पुत्रेणान्वयः संभवति, समत्वात्। न चाधिष्ठानलक्षणयान्वयो वाच्यः, मात्रन्वयेनैव सर्वेषां मुख्यत्वसम्भवात्। मातृपदान्वये च दुहितृपदस्य मुख्यत्वस्वीकारात्।। 18।।

माता के साथ 'अन्वयः' का संबन्ध माना जाए तो वह आकांक्षा पूर्ण हो जाएगी (अर्थात् जनकजन्य संबन्ध पूर्ण हो जाएगा) इसी प्रकार लक्षणा से भी दुहिता का 'अन्वयः' पद के साथ सम्बन्ध नहीं बतलाया जा सकता क्योंकि माता के साथ 'अन्वयः' का अन्वय करने से मुख्यार्थ की प्रतीति होती है।। 18।।

Such an interpretation cannot be supported by the metaphorical sense of terms.

Nor should (the word) "issue" be expounded metaphorically, from the appropriate sense, (as signifying male and "daughter" female; neglecting the relation to a parent indicated by these terms). For all the terms (viz., "daughter", repeatedly occurring in various texts; or issue, or other equivalent word; or daughter and issue and in the text of Kātyāyana, son); may be taken in their literal acceptation by connecting them with "mother" : and the word "daughter" is acknowledged to bear the literal sense as connected with the term "mother".

न च तदन्वय इति तच्छब्दोपात्ताया दुहितुरन्वययोग्यता वाच्या, तच्छब्दस्यापि प्रकृतवाचितया दुहितृत्वरूपेणैवोपपादकत्वात्।। 19।।

यदि यहाँ पर कोई यह शंका करे कि 'तदन्वयः' में तत् शब्द दुहिता की सन्तान के लिए आया है तो उचित नहीं है क्योंकि प्रकृत वचन का उचित अर्थ करने पर तत् शब्द दुहिता को बतलाता है।। 19।।

Nor by construction.

Neither should the construction of the sentence be

alleged to be 'issue of the daughter' suggested by the pronoun in the phrase "her issue" (see 13). For the pronoun would refer to her as daughter, (not as mother); since the meaning of the original term is such.

किञ्च याज्ञवल्क्यवचने 'दुहितरः' इति पदं प्रथमान्तम्, ताभ्य इति पदञ्च पञ्चम्यन्तम्, अन्वयपदेन षष्ठ्यन्तान्वय-योग्येन नान्वीयते, किन्तु व्यवहितमपि मातुरित्येव पदमन्वयि, तदत्र मातुरन्वये निश्चिते नारद-कात्यायनवाक्येऽपि मातुरिवान्वयो न्याय्यः, अविरोधात्॥ 20॥

याज्ञवल्क्य के श्लोक में 'दुहितरः' पद प्रथमान्त है ताभ्यः पद पञ्चम्यन्त है। इनका 'अन्वयः' पद के साथ अन्वय नहीं हो सकता अपितु षष्ठ्यन्त मातुः पद के साथ ही 'अन्वय' पद का अन्वय करना चाहिए ऐसा नारद-कात्यायन के वाक्य में भी बताया गया है जिसका किसी के साथ विरोधा नहीं है॥ 20॥

The other interpretation is reasonable.

Besides, the word "daughters'" in the text of Yājñavalkya (see 13), having the termination of the first or nominative case and the pronoun ("their") having that of the fifth or ablative cannot be connected with the term "issue", by construction which requires the sixth or relative case. But this term governs the word "mother" notwithstanding the intervention of mediate terms. Thus then, with the certainty, that "issue of the mother" is here intended, it is reasonable to interpret issue of the mother (as signifying son) in the text of Nārada and Kātyāyana: for there can be no contradiction (since the passages must be presumed to be grounded on the same revelation).

किञ्च सत्स्वङ्गजेषु तद्गामीत्यर्थः भवती' (बौ0ध0सू0 2-5) ति बौधायनवचनानुसारेणानन्तर्याच्चाऽङ्गजस्य पुत्रस्याधिकारो न्याय्यः, नानङ्गजस्य व्यवहितदौहित्रस्याधिकारः॥

21॥

और क्या बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार - अपने अंगों से उत्पन्न पुत्र का माता के धन में अधिकार है। इस प्रकार अंगज पुत्र का अधिकार न्यायसंगत होता है न कि अनङ्गज दूर के दौहित्र का॥ 21॥

It is right, that the son should inherit before the daughter's son.

Moreover, conformably with the text of Baudhāyana "Male issue of the body being left, the property must go to them;" and because (the son, as immediate issue of the mother, is) nearer of kin (than the daughter's son, who is a mediate descendant); it is reasonable, that the son born of her body should have the right of succession to his mother's property and not the daughter's son, who is a mediate descendant not born of her person.

ततश्च परिणयनलब्धस्त्रीधनम् दुहितरेव, न पुत्राणाम्॥ तत्रैव च क्रमार्थम् गौतमवचनं 'स्त्रीधनं' दुहितृणामप्रत्तानाम-प्रतिष्ठितानाञ्च॥ 22॥

विवाह के समय प्राप्त स्त्रीधन पुत्रियों को मिलता है, पुत्रों को नहीं। वहीं पर गौतम ने क्रम बताया है कि - स्त्रीधन पुत्रियों में - अविवाहित और निर्धन (कन्याओं) को प्राप्त होता है॥ 22॥

Nuptial presents go to the daughters.

Hence a woman's separate property, received by her at her nuptials, goes to her daughter; and not to her sons (if there be a daughter): and the text of Gautama (see 13) is intended to explain the order of succession in this case (of an inheritance devolving on the female issue).

प्रथममप्रत्तानाम्, तदभावे प्रत्तानाम्, तदभावे च समूढानाम् स्त्रीधनम् दुहितृणामिति सामान्यतः प्राप्तत्वात्। अप्रत्तानामित्यादेस्तु क्रमार्थत्वेनोपसंहारार्थत्वात्॥ 23॥

पहले अविवाहित पुत्रियों को स्त्रीधन प्राप्त होता है, इसके

अभाव में विवाहित पुत्री को।। 23।।

First, unaffianced; next, betrohed; lastly, married daughters.

First, the woman's property goes to her unaffianced daughters. If there be non such, it devolves on thos who are betrothed. In their default, is passes to the married daughters (as indicated by the conjunctive particle in the text). For the right of the female issue generally is suggested by the term "daughters" (in Gautama's text, see 13); and the special mention of "unaffianced" and "unmarried", which follows, is pertinent as declaratory of the order of succession (and not as a limitation of the preceding general term).

तथा च याज्ञवल्क्यः -

'अप्रजास्त्रीधनं भर्तुर्ब्राह्म्यादिषु चतुर्ष्वपि।
दुहितॄणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामि तत्'।। 24।।

(याज्ञ0 2-146)

याज्ञवल्क्य का वचन है कि-

निस्सन्तान स्त्री का धन उसके पति को मिलता है, यदि उसका विवाह ब्राह्म दैव-आर्ष-प्राजापत्य विधियों से सम्पन्न हुआ हो। किन्तु यदि गान्धार्व राक्षस-आसुर और पैशाच विधियों से विवाह होने पर निस्सन्तान मर जाती है तो उसका धन उसके पिता को प्राप्त होता है।। 24।।

A passage of Yājñavalkya cited.

Thus Yājñnavalkya says, "The separate property of a childless woman married in the form denominated Brāhma or in any of the four (unblamed forms of marriage) goes to her husband : but if she leave progeny, it will belong to her daughter : and in other forms of marriage (as the Āsura), it goes to the father (and mother, on failure of issue").

ब्राह्मादिषु विवाहेषु यल्लब्धमध्यग्नि धनं स्त्रियाः, तस्यां मृतायां प्रथमम् दुहितॄणामेव, तत्रापि प्रथमं कन्यायाः तदभावे

प्रत्तायाः, तदभावे परिणीतायाः सर्वदुहित्रभावे च पुत्रस्याधिकारः, अप्रजः स्त्रीधने भर्तुरधिकारात्।। 25।।

ब्रह्मादि विवाहों में स्त्री को अग्नि के समक्ष जो दिया जाता है वह धन उसकी मृत्यु के बाद प्रथम पुत्रियों को मिलता है। उसमें भी प्रथम अविवाहित कन्याओं को, उसके अभाव में (पुत्री) वाग्दत्ता का, उसके अभाव में विवाहिता पुत्री को, सब प्रकार की पुत्रियों के अभाव में पुत्र का अधिकार है।। 25।।

25. And explained.

Here, in certain forms of marriage termed Brāhma, what has been received by a woman at the nuptial fire, goes after her death firt to her daughters (not, like property received at any other time but that of her nuptials, to her sons as well as her daughters). Again, the right devolves first on the maiden daughter (conformably with the text above cited); if there be none, it descends to the betrothed daughter; or for want of such, it goes to a married daughter (including even a barren or a widowed one): or, on failure of all daughters, it devolves on the son. For the husband's right of succession is relative to property of a wife who leaves no issue whatever.

बृहस्पतिना तु अप्रत्तापदेन अप्रत्ताद्यभावे समूढ़ाया अप्यधिकारः सूचितः।। 26।।

बृहस्पति ने अप्रतापद से अविवाहित पुत्रियों के अभाव में विवाहित पुत्री का अधिकार सूचित किया है।। 26।।

26. The married daughter's right is even hinted in a former text (see 3).

The right of the married daughter, too, on failure of the unaffianced one and the rest, has been hinted by Bṛhaspati using the term "unaffianced". (see 3).

न च यौतकमात्रधनाभिप्रायेण नेदं वचनम्, किन्तु ब्राह्मादिविवाहेन विवाहिताया यद् यावद्धनं यौतकम्, अयौतकं

वा। तदभिप्रायेणेति वाच्यम्, बन्धुदत्तमिति वचनस्य (याज्ञ0 2-145) निर्विषयतापत्तेः, मनुविरोधाच्च।

यदाह -

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्धनम्।
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते।।
यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु।
अतीतायामप्रजायां मातापित्रोस्तदिष्यते।।

(मनु0 116, 1117)

'अस्याः स्याद्दत्तमिति' पराधीनं पूर्वत्रानुवज्यते, तेन विवाहेषू यद्धनम् दत्तमिति सम्बन्धात् वैवाहिकधनमात्रप्रतीतेर्न यावद्धनविषयम्।। 27।।

याज्ञवल्क्य के वचन यौतुक धन के विषय में नहीं है किन्तु ब्राह्मादि विधियों से विवाहिता स्त्री को जो यौतुक अथवा अयौतुक धन प्राप्त होता है, उससे अभिप्राय है। याज्ञवल्क्य के 2/145 श्लोक में प्रयुक्त बन्धुदत्तम् को मानेंगे तो मनु के साथ विरोध हो जाएगा यथा - ब्राह्म-दैव-आर्ष-गान्धर्व और प्राजापत्य विधियों से विवाहिता स्त्री के निस्सन्तान मर जाने पर उसके धन का अधिकारी उसका पति होता है। आसुर, राक्षस और पैशाच विधियों से विवाहिता स्त्री को जो धन दिया जाता है उसके निस्सन्तान मर जाने पर उसका धन माता-पिता को मिलता है। 'अस्यास्याद्दत्तम्' यह उत्तरकालीन वचन आगे के वचन से स्पष्ट है। इन विवाहों में जो धन दिया जाता है यह मनु के वचन 9/146-147 वैवाहिक धन से संबन्धित है, अन्य किसी धन से नहीं।। 27।।

The preceding passage (see 24) does not relate to woman's property in general; but to nuptial presents in particular, given at marriages celebrated in certain forms.

It should not be alleged, that this text of (Yājñavalkya above cited, see 24) does not relate exclusively to wealth

received at nuptials; but is applicable to any property, whether obtained then or at any other time and appertaining to a woman espoused by such forms of marriage. For the preceding passage, (which is declaratory of a brother's right of succession), would have not pertinency, (since, even in that case, the husband or the father would inherit under the text in question): and it would disagree with Manu; for he says, "It is admitted, that the property of a woman married by the ceremonies called Brāhma, Daiva, Ārṣa, Gāndharva and Prājāpatya, shall go to her husband, if she die without issue. But her wealth, given to her on her marriage in the form called Āsura or either of the other two (Rākṣasa and Paiśāca) is ordained, on her death without issue, to become the property of her mother and of her father." Here, the subsequent terms, wealth given to her," are understood in the preceding sentence. Therefore, by thus connecting the terms, "wealth given to her at the nuptial ceremonies," the text appears to relate to property received at her marriage and not generally to any property whatever.

तथा यमः -

'आसुरादिषु यद्द्रव्यं विवाहेषु प्रदीयते'।

विवाहक्रियायां पूर्वापरीभूतायां यद्द्रव्यं प्रदीयत इति यौतकधनमात्रगोचरत्वमेव प्रतीयते।। 28।।

यम ने भी आसुरादि विवाहों में प्राप्त होने वाले धन का संकेत किया है। अर्थात् विवाह क्रिया में पूर्व और पर में - नान्दी श्राद्ध में सप्तपदीपर्यन्त क्रियाओं में जो धन दिया जाता है वह यौतक धन की ओर संकेत करता है।। 28।।

This interpretation is confirmed by a passage of Yama.

So Yama, saying "Wealth, which is given at the marriages called Āsura (is acknowledged to belong to the parents, if the woman die without issue"), appears to intend nuptial presents exclusively; that is wealth which is given while the marriage ceremony lasts, having been commenced but not

being finished.

न च विवाहात् पूर्वं परतो वा स्त्रिया लब्धस्याप्रजः स्त्रीधनस्य गतेरश्रूयमाणत्वात् ब्राह्मादिपदं स्त्रीपरमिति वाच्यम्, पूर्वापरलब्धस्य विस्तरेण गतेर्वक्ष्यमाणत्वात्।। 29।।

यदि कोई यह शंका करे कि ब्राह्मादि पद स्त्रीपरक है और विवाह के पूर्व और पश्चात् जो धन स्त्री को दिया जाता है उसके निस्सन्तान मर जाने पर उस धन पर पति का अधिकार होता है तो यह ठीक नहीं है। पूर्व और पर प्राप्त धन के विषय में आगे विस्तार से वर्णन करेंगे।। 29।।

The texts do not relate to any property belonging to a woman married in such a form; but to property given to her at a marriage celebrated in such form.

It must not be argued, that the denominations of Brāhma, regard the woman (who is married by such ceremonies; and that the text concerns any property belonging to her; the designations being relative to the person) : because there is no other rule provided for the descent of a childless woman's property received by her before her nuptials, or after them. For the rule of succession, in the case of property received before or after marriage, will be fully stated, conformably with express laws.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्नान्तर्गते दायभागे चतुर्थाध्यायस्य द्वितीय परिच्छेदस्समाप्तः।

तृतीयपरिच्छेदः

सम्प्रति अप्रजस्त्रीधनाधिकारिणः कथ्यन्ते॥ 1॥

अब निस्सन्तान स्त्री के स्त्रीधन के अधिकारियों का वर्णन करते हैं॥ 1॥

Succession to a childless woman.

the heirs of the property of a woman who dies childless are next propounded.

तत्राह याज्ञवल्क्यः -

'अप्रजस्त्रीधनं भर्तुर्ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि'॥ 2॥ (याज्ञ0 2-146)

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि - निस्सन्तान स्त्री का धन उसके भर्ता को प्राप्त होता है यदि ब्राह्मादि विधियों से उसका विवाह हुआ हो॥ 2 ॥

A passage of Yājñavalkya again cited.

"The separate property of a childless woman married in the form denominated Brāhma or in any of the four (unblamed forms of marriage), goes to her husband."

ब्राह्मः आदिर्येषां चतुर्णाम्, ते दैवार्षप्राजापत्यगान्धर्वाश्चत्वारो ब्राह्मेण सह पञ्च भवन्ति, 'ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येष्वि' (मनु0 9-196) ति मनुना पञ्चानामुक्तत्वात्। तेषु विवाहेषु वर्तमानेषु यद्धनं स्त्रिया लब्धम्, तदप्रजायामतीतायां भर्तुरेव भवतीति। प्रजा-सन्ततिः॥ 3॥

इसकी व्याख्या करते हुए जीमूतवाहन कहते हैं कि - ब्राह्म है आदि जिनके चार - दैव-आर्ष- प्राजापत्य-गान्धर्व-ब्राह्म के साथ मिलकर पाँच होते हैं। मनु ने भी इन्हीं पाँच प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है (मनु 9/196)। इन विवाहों में वर्तमान स्त्री को जो धन दिया जाता

है, उसके निस्सन्तान मरने पर वह धन पति का होता है।। 3।।

And expounded. The nuptial presents are inherited by the husband in some cases.

The four forms of marriage, as the head of which is that called Brāhma, are here intended. Those four are the Daiva, Ārśa, Prājāpatya and Gāndharva. With the Brāhma, they make five. For Manu has specified five : namely, "the ceremonies called Brāhma, Daiva, Ārśa, Gāndharva and Prājāpatya." Wealth, which has been received by a woman while her marriage in any of those form is celebrated, devolves on her husband, if she die without issue. Here issue signifies progeny.

न पुनर्ब्राह्मादिना परिणीताया यत् यावद्धनं विवाहात्-पूर्वं परतो वा तया लब्धम्, तत् सर्वं भर्तुरिति 'व्याख्यानं युक्तम्। ब्राह्मादिष्विति कालार्थत्वात् निर्देशस्य, ब्राह्मादिपदानां स्त्रीपरत्वे एकत्वेन षष्ठ्या च निर्देशः स्यात्, यत्त्वस्याः स्यादिति स्त्रिया एकत्वेन षष्ठ्या च निर्दिष्टत्वात्। विवाहकाले लक्षणायाञ्च वर्तमानसम्बन्धेन लक्षणा स्यात्, स्त्रीपरत्वे चातिक्रान्तविवाहक्रियासम्बन्धेन लक्षणा जघन्या, सा चायुक्ता, न च विवाहितस्त्रीवाचकत्वं ब्राह्मादिपदानाम्, तत्तल्लक्षण-विवाहपरत्वेन मन्वादिभिर्निर्दिष्टवात्।

तदाह मनुः -

'अष्टाविमान् समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधते'त्युपक्रम्य।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।।

(मनु0 3-21) इत्यादि।

तथा नारदः -

'अष्टौ विवाहा वर्णानां संस्कारार्थं प्रकीर्तिताः।

ब्राह्मस्तु प्रथमस्तेषाम् (नारद 12-39) इत्यादि।।

तथा विष्णुः -

'अष्टौ विवाहाः भवन्ति ब्राह्मो दैवः' (विष्णु 24-18)

इत्यादि॥ 4॥

यहाँ पर किसी को शंका हो सकती है कि ब्राह्मादि पद स्त्रीपरक है। अतः ब्राह्मादि विवाह विधियों से परिणीता स्त्री को विवाह के पूर्व एवं विवाह के पश्चात् जो धन दिया जाता है उस पर पति का अधिकार होता है यदि उस स्त्री की निस्सन्तान मृत्यु हो जाती है। जीमूतवाहन ने इस मत का खण्डन किया हैं उनके अनुसार ब्राह्मादि पद स्त्रीपरक नहीं है अपितु कालपरक है। यदि ब्राह्मादिपद स्त्रीपरक होता तो षष्ठी एकवचन का प्रयोग किया जाता जैसे कि मनु (9/197) में 'यत्त्वस्याः स्यात्' में स्त्री के धन का निर्देश करने के लिए 'अस्याः' में षष्ठी एक वचन का प्रयोग किया है। 'ब्राह्मादि' पद में लक्षणा से विवाहकाल का निर्देश होने से वर्तमान संबन्ध से लक्षण है अर्थात् ब्राह्मादि वैवाहिक विधियों के समय जो धन स्त्री को दिया जाता है उस धन का निर्देश है। यदि ब्राह्मादिपद को लक्षणा से स्त्रीपरक माना जाए तो अतिक्रान्त विवाह की क्रिया के साथ सम्बन्ध हो जाएगा अर्थात् विवाह के एक वर्ष बाद स्त्री को दिया हुआ धन भी इसमें सम्मिलत हो जाएगा। अतः यह मत अनुचित है। ब्रह्मादि पद विवाहित स्त्री वाचक भी नहीं है क्योंकि मन्वादि ने उन-उन विवाहों के लक्षणों का निर्देश किया है यथा - आठ प्रकार के विवाहों को संक्षेप में सुनो ऐसा आरम्भ करके कहा है ब्राह्म-दैव-आर्ष-प्राजापत्य-आसुर इत्यादि।

नारद के अनुसार - वर्णों के संस्कार के लिए आठ प्रकार के विवाह कहे हैं उनमें ब्राह्म विवाह प्रथम है। विष्णु ने कहा है - आठ प्रकार के विवाह हैं - ब्राह्म, दैव इत्यादि॥ 4॥

A different interpretation refuted.

It is not right to interpret the text as signifying, that any property of whatever amount, which belongs to a woman married by any of those ceremonies termed Brāhma, whether received by her before or after her nuptials, devolves wholly

on her husband by her demise. For the terms exmployed in the text (see 2), signifying 'at marriages in the form denominated Brāhma,' indidate time : and, if the words Brāhma, (in Manu's text): intended the woman (who is espoused in such form), those terms (as expressive of the married person) would have been exhibited in the singular number and sixth or relative case: for the pronoun, denoting the woman, is exhibited in that case and number, in the (subsequent) passage; "But her wealth, given to her on her marriage". If the time of nuptials be indicated, the term has the metaphorical sense form relation to (time) present. But, if the woman be intended, it has the metaphorical meaning from relation to the past ceremony of marriage. Now this, being a less approved mode of construction, is not the proper one. Neither is it true. That the terms Brāhma, do signify the woman who is espoused; for they are sued by Many and the rest is importing the marriage celebrated in such form. Thus Manu, having premised these words "Now learn compendiously the eight forms of the nuptial ceremony", enumerates "the ceremony of Brāhma, of the Devas of the Rṣis, of the Prajāpatis, of the Āuras". So Nārada says, "Eight forms of marriage are ordained for the perfecting of the several tribes : the first of them is the Brāhma." Viṣṇu in like manner says, "Marriages are of eight sorts, the Brāhma, the Daiva. etc."

अतो विवाहकाललब्धस्त्रीधनविषयं ब्राह्मादिवचनमिति विश्वरूपोक्तमादरणीयम्॥ 5॥

इस प्रसंग में विश्वरूप के मत का आदर करना चाहिए जिन्होंने ब्राह्मादि वचन से तत्तत् विधि से सम्पन्न विवाह काल में प्राप्त होने वाला स्त्रीधन माना है॥ 5॥

5. Viśvarūpa's exposition of the text confirmed.

Therefore, the observation of Viśvarūpa, that the text relates to woman's property received at the time of the nuptials, should be respected.

आसुरादिविवाहसमयलब्धन्तु स्त्रीधनं जीवत्यपि भर्तरि माता गृह्णीयात्, तदभावे पिता, 'मातापित्रोस्तदिष्यते' इत्यत्र क्रमावगतेः युगपदधिकारे पित्रोरित्येवाभिदध्यात्, कन्याधने च मातुरभावे पितुरधिकारश्रवणातु। अत्रापि तथात्वस्यैवोचित-त्वात्।। 6।।

आसुरादि विवाह के समय प्राप्त स्त्रीधन पर भर्ता के जीवित रहने पर भी माता का अधिकार है। माता के अभाव में पिता प्राप्त करे। 'मातापित्रोतदिष्यते' से क्रम की प्रतीति होती है अर्थात् पहले माता का तत्पश्चात् पिता का क्रम है। यदि दोनों का साथ अधिकार होता तो -पित्रोः' कहा जाता। कन्या के धन में माता के अभाव में पिता का अधिकार है। यहाँ पर ऐसा ही समझना चाहिए।। 6।।

In other cases, the mother inherits the nuptial presents; and in her default, the father.

But a woman's property, received at a marriage in the form called Āsura and the like, her mother may take on her demise though her husband be living; and, on failure of the mother, the father. For that order of succession results from the text, "Her wealth is ordained to become the property of her mother and of her father." If then joint succession were intended, the author would have said, "become the property of her two parents." And as the father's right of inheritance is declared to be on failure of the mother in the case of a mainden's property the same is fitting in this instance also.

तथा बौधायनः -

रिक्थं मृतायाः कन्यायाः गृह्णीयुः सोदराः स्वयम्।
तदभावे भवेन्मातुस्तदभावे भवेत् पितुः।। 7।।

बौधायन का मत है कि - कन्या के मर जाने पर सहोदर भाई स्वयं उसके धन को ग्रहण कर लें। उसके अभाव में माता और माता के अभाव में पिता ग्रहण करे।। 7।।

A passage of Baudhāyana on succession to a maiden's property.

Accordingly Baudhāyana says, "The wealth of a deceased damsel let the uterine brethren themselves take. On failure of them, it shall belong to the mother; or if she be dead, to the father."

तदनेन कन्याधनं व्याख्यातम्॥ 8॥

इस प्रकार से कन्या के धन की व्याख्या की जाती है॥ 8॥

Is sufficient on the subject.

The property of a maiden has been thus explained (and the subject will not be resumed under a distinct head).

न च कन्याधन इवात्रपि प्रथमम् भ्रात्रधिकारः स्यादिति वाच्यम्, वचनाभावात्, मातापित्रोरेवाधिाकारश्रुतेः॥ 9॥

कन्याधन के समान ही यहाँ पर भी अर्थात् विवाहिता स्त्री के धन में भी पहले भाईयों का अधिकार है - ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के वचनों का अभाव है। माता-पिता का ही अधिकार प्राप्त होता है - ऐसा श्रुति वचन है॥ 9॥

The brother does not inherit preferably the nuptial present, as he does a maidens property.

It must not be argued, that, in this case (of wealth received at nuptials), as in that of a maiden's property, the brother has the prior right. For no text ordains it : and the succession of the mother and father only (not the brother) is expressly declared.

यत् पुनः परिणयानन्तरं पितृ-मातृ-भर्तृकुलात् स्त्रिया लब्धम् धनम्, तद्भ्रातृणामेव।

तदाह याज्ञवल्क्यः -

बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च।
अप्रजायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयुः॥ 10॥

(याज्ञ0 2-145)

पुनः विवाह के अनन्तर माता-पिता और पति के कुल से स्त्री को जो धन प्राप्त होता है, उस पर भाइयों का अधिकार होता है। यथा याज्ञवल्क्य का मत है कि - बन्धुओं द्वारा दिया गया शुल्क एवं अन्वाधेयक धन को बान्धव प्राप्त करते हैं जब स्त्री प्रजाहीन अर्थात् निस्सन्तान मर जाती है।। 10।।

But he does inherit presents received by her after marriage; gifts of kindred and her fee (śulka) according to Yājñavalkya.

But wealth received by a woman after her marriage, from the family of her father, of her mother, or of her husband, goes to her brothers, (not to her husband); as Yājñavalkya declares: "That which has been given to her by her kindred, as well as her fee or gratuity, and anything bestowed after marriage her kinsmen take, if she die without issue.

बन्धुदत्तमिति-मातापितृभ्यां, यद्दत्तम्। अत एव तत्पुत्रश्च भ्रातरः बान्धवाः।। 11।।

बन्धुदत्त का अर्थ है - माता-पिता के द्वारा जो दिया जाता है। बान्धवाः का अर्थ है - उसके (विवाहिता स्त्री के) पुत्र और भाई।।11।।

Explanation of the text.

Given by her kindred. Presented to her by her father or mother (during her maidenhood). Hence (since the words "given by kindred" intend given by the father and mother); their sons who are her brothers, are kinsmen here signified.

तदाह वृद्धकात्यायनः -

पितृभ्याञ्चैव यद्दत्तं दुहितुः स्थावरं धनम्।
अप्रजायामतीतायां भ्रातृगामि तु सर्वदा।।
अप्रजस्त्वमात्रनिमित्तत्वेन भ्रातुरधिकारावगतेः।। 12।।

वृद्धकात्यायन का मत है कि - माता-पिता ने जो भी स्थावर

धन पुत्री को दिया है उसके प्रजाहीन मर जाने पर उसका धन सर्वदा भाइयों को प्राप्त होता है। अप्रजस्त्वमात्रनिमित्त कहने से भ्राता का अधिकार ज्ञात होता है।। 12।।

The interpretation is supported by a passage of Kātyāyana concerning immovables.

That is confirmed by Vṛdha Kātyāyana, who says "Immovable property, which has been given by parents to their daughter, goes always to her brother, if she die without issue." For it appears, that the brother's right of succession is founded simply on her leaving no issue (which is the case equally of a mainden, as of a childless wife).

सर्वदापदेन ब्राह्मादि-पैशाचान्तविवाहिताया अप्रजसो धनं भ्रातृगाम्येव भवतीति विश्वरूपोक्तमादरणीयम्।। 13।।

सर्वदा पद से ब्राह्म विवाह से लेकर पैशाच विवाह तक विवाहिता प्रजाहीन स्त्री के धन को भाई प्राप्त करते हैं। विश्वरूप के मत का सम्मान करना चाहिए।। 13।।

In general, as affirmed by Viśvarūpa, the brother inherits a woman's property.

The remarks of Viśvarūpa, that property of a childless woman married by any form of nuptials, from that of Brāhma to that of the Piśācas, (as hinted by the term "always") goes to her brother, should therefore be respected.

स्थावरपदाद्दण्डापूपन्यायादेवापरस्य धनस्य सिद्धिः।।14।।

दण्डापूपन्याय से स्थावर पद से अन्य प्रकार के अर्थात् मणि-मुक्ताप्रवालादि धन की भी सिद्धि हो जाती है।। 14।।

Since he inherits the immovables, he must a fortiori succeed to movables.

Under the term "immovables" the same must be true of other property (such as described in the passage of Yājñavalkya above cited); by the argument a fortiori, exemplified in the loaf and staff.

बन्धुदत्तपदेन कन्यादशायां यत् पितृभ्यां दत्तम्, तदुच्यते, विवाहात् परतो लब्धाधनस्यान्वाधोयपदेनोपात्तत्वात् विवाहकालीने च भर्तुः पित्रोर्वाऽधिकारात्।। 15।।

बन्धुदत्तपद से अभिप्राय - कन्या अवस्था में जो माता-पिता द्वारा दिया गया धन है। विवाह के पश्चात् प्राप्त धन अन्वाधेय पद से ज्ञात है और विवाह के समय दिए गए धन पर पति और पिता का अधिकार होता है।। 15।।

Presents given to the woman, when a maiden, are included in the preceding text (see 10).

by the phrase "given to her by her kindred" (see 10) is signified that which was given to her by her parents during her maiden state. For anything received by her, subsequently to her nuptials, is comprehended under the denomination of (anvādheya) 'gift subsequent' : and either the husband or the parents, inherit that which was presented at the time of wedding.

अन्वाधेयमाह कात्यायनः -

विवाहात् परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुलात् स्त्रिया।
अन्वाधेयं तदुक्तन्तु लब्धं बन्धुकुलात्तथा।। 16।।

कात्यायन ने अन्वाधेय धन की व्याख्या इस प्रकार से की है - विवाहोपरान्त स्त्री को पति के कुल से और बन्धुओं के कुल से जो प्राप्त होता है वह अन्वाधेय स्त्रीधन कहलाता है।। 16।।

Kātyāyana's definition of a gift subsequent.

Kātyāyana describes a gift subsequent : "What has been received by a woman from the family of her husband, and at a time posterior to her marriage, is called a gift subsequent; and so is that which is similarly received from the family of her kindred."

भर्तृकुलात्-श्वशुरादेः। बन्धुकुलात्-पितृ-मातृकुलात्।।17।।

भर्तृकुल का अर्थ जीमूतवाहन के अनुसार श्वशुरादि है और बन्धुकुल का अर्थ - माता-पिता का कुल।। 17।।

Exposition of the text.

From the family of her husband. From her father-in-law and the rest. From the family of her kindred. From that of her father and mother.

तथाऽपरमाह -

ऊर्ध्वं लब्धन्तु यत् किञ्चित् संस्कारात् प्रीतितः स्त्रियाः।
भर्तुः सकाशात् पित्रोर्वा अन्वाधेयन्तु तद् भृगुः॥ 18॥

अन्य वचन है - विवाह संस्कार के पश्चात् स्नेहवश स्त्री को पति के कुल से अथवा माता-पिता के कुल से प्राप्त होता है उसे भृगु ने अन्वाधेय की संज्ञा दी है॥ 18॥

Another definition of gift subsequent.

The same author gives another definition: "Whatever is received by a woman after her nuptials, either from her husband or from her parents, through the affection of the giver, Bhṛgu pronounces to be a gift subsequent.

शुल्कमाह

गृहोपस्करवाह्यानां दोह्याभरणकर्मिणाम्।
मूल्यं लब्धन्तु यत् किञ्चित् शुल्कं तत् परिकीर्तितम्॥19॥

शुल्क धन की व्याख्या इस प्रकार की गई है - घर के बर्तनों, भारवाही पशुओं, दुधारू पशुओं, आभूषणों एवं दासों के मूल्य के रूप में जो प्राप्त होता है वह शुल्क धन कहलाता है॥ 19॥

Explanation of fee or perquisite by the same authority.

He likewise explains the fee or perquisite (śulka) "Whatever has been received, as a price, of workmen on houses furniture and carriages, milking vessels and ornaments, is denominated a fee."

गृहादिकर्मिभिः-शिल्पिभिस्तत्कर्मकरणाय भर्त्रादिप्रेरणार्थं स्त्रियै यदुत्कोचदानम्, तत् शुल्कं, तदेव मूल्यं, प्रवृत्त्यर्थत्वात्। 20॥

पति आदि को प्रेरित करने के लिए गृहनिर्माताओं तथा सुवर्णकारों द्वारा स्त्री को जो घूस रूप में दिया जाता है वह शुल्क धन है।। 20।।

Interpretation of the passage.

What is given to a woman by artists constructing a house or executing other work, as a bride to send her husband or other person (of her family) to labour on such particular work, is her fee. It is the price (of labour); since its purpose is to engage (a labourer).

व्यासोक्तं वा यथा -

यदा नेतुं भर्तृगृहे शुल्कं तत् परिकीर्तितम्।। 21।।

व्यास ने शुल्क धन की व्याख्या इस प्रकार से की है - पतिगृह जाने के लिए जो स्त्री को दिया जाता है वह शुल्क कहलाता है।। 21।।

A different explanation of Vyāsa.

or a fee is that which is described by Vyāsa, "What (is given) to bring the bride to her husband's house, is denominated her fee. That is, what is given by way of bride or the like to induce her to go to the house of her husband.

भर्तृगृहगमनार्थमुत्कोचादि यद्दत्तम्, तच्च ब्राह्मादिष्व-विशिष्टं तदेवमादिकमप्रजःस्त्रीधनं भ्रातरो गृह्णीयुः।। 22।।

जीमूतवाहन ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि - पतिगृह जाने के लिए वधू को जो घूस के रूप में दिया जाता है वह शुल्क है। यह ब्राह्मादि विवाहों से भिन्न अन्य प्रकार से प्राप्त धन को उसके भाई प्राप्त करते हैं जब वह निस्सन्तान मर जाती है।। 22।।

Either way, property of such description occurs under every form of marriage.

This fee (as described in both the passages above cited), occurs indiscriminately in any form of marriage, whether that termed Brāhma, or another. Such, or any similar property of a childless woman, her brothers inherit.

न पुनरासुरादिषु विवाहेषु यत् कन्याभ्यः शुल्कदानम्

तदभिप्रायम्। आसुरमात्रगोचरत्वात् तच्छुल्कस्य।

यथोक्तं याज्ञवल्क्येन -

आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात्।। 23।।

(याज्ञ0 1-61)

आसुरादि विवाहों में जो कन्या को शुल्क दिया जाता है उससे अभिप्राय नहीं है। केवल आसुर विवाह में ही शुल्क दिया जाता है। यथा याज्ञवल्क्य का मत है कि - धन लेकर कन्या प्रदान करना आसुर विवाह है, परस्पर प्रेम होने पर जो विवाह होता है वह गान्धर्व है, युद्ध में हरण की गई कन्या से विवाह राक्षस है और कन्या से छलपूर्वक विवाह करना पैशाच है।। 23।।

The term (Śulka) is not employed in its sense of price, as intending a gratuity for the purchase of a bride: such as is given at an Āsura marriage.

But it does not intend a gratuity (Śulka) presented to damsels at marriages called Āsura and the rest. For that gratuity is restricted to the particular from denominated Āsura (and does not occur in the rest). Accordingly it is said "The Āsura marriage is grounded on the receipt of wealth; the Gāndharva, on reciprocal connection; the Rākṣasa, on seizure in war; and the Paiśāca is where the bride is obtained by fraud.

अतो राक्षसादौ शुल्काभावात् शुल्कसाहचर्येणासुरादिष्वेव यद्धनम्, तन्मात्रस्य भ्रातृगामित्वाभिधानं हेयम्। तथा तस्य स्त्रीधनत्वाभावाच्च पित्रादिगृहीतधनस्य च शुल्कत्वेन कीर्तनात्।

तथा मनुः -

'न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
गृह्णन् हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्त्यविक्रयी'।।

(मनु0 3-50)

पितेत्युपलक्षणम्, तेन भ्रात्रदिरपि धनं गृह्णन्शुल्कग्राही, तेन पित्रदिगृहीतमेव परं शुल्कं भवतीत्युक्तम्।। 24।।

जीमूतवाहन के अनुसार राक्षसादि (पैशाच) विवाह में शुल्क का अभाव होने से आसुरादि विवाहों में शुल्क के साहचर्य से जो धन मिलता है वह भाइयों का होता है, यह कहना हेय है। तथा च - उसमें स्त्रीधन का अभाव है (क्योंकि यह धन कन्या के भाई को दिया जाता है।)। पितादि द्वारा प्राप्त धन को शुल्क की संज्ञा दी है। मनु का मत है कि-

विद्वान् कन्या का पिता थोड़ा भी शुल्क को ग्रहण न करे क्योंकि लोभ से धन को ग्रहण करता हुआ मनुष्य सन्तान को बेचने वाला होता हैं पिता यहाँ पर उपलक्षण मात्र है, इस प्रकार भाई आदि धन को ग्रहण करते हैं वह शुल्कग्राही है। इस प्रकार पिता आदि के द्वारा ग्रहण किया गया भी शुल्क है।। 24।।

A proposed restriction of the text (see 10) to the case of Āsura and similar marriages refuted.

Hence, since there is no gratuity at the Rākṣasa marriage nor at the other (viz., the Paiśāca marriage), the conclusion deduced from association with nuptial gratuity, that only such property goes to the brother as was received under the Āsura and other similar marriages, must be rejected : as also because that is not the separate property of the woman; for only wealth received by the father or other person (who gives the girl in marriage) is denominated a gratuity. Thus Manu says, "Let no father, who is wise, receive a gratuity however small, for giving his daughter in marriage, since the man, who through avarice, takes a gratuity , is a seller of his offspring." Father is here a general expression (intending the person who gives away the damsel). Therefore, a brother, or any other person, accepting a present (for giving a girl in marriage), is a receiver of a gratuity. Consequently, a gratuity (Śulka) is that which is accepted by the father or other person (so disposing of the damsel).

अतो यदुक्तम्-आसुर एव शुल्करूपस्त्रीधनसम्भवात्-तदेकवाक्योपात्तयोर्बन्धुदत्तान्वाधेयोरप्यासुरविवाहगोचरयोरेव भ्रातुरधिकारः - इति निरस्तम्॥ 25॥

अतः यह जो कहा गया है कि - आसुर विवाह में शुल्क रूप स्त्रीधन सम्भव होने से बन्धुओं द्वारा दिया गया और अन्वाधेय धन की एक वाक्यता होने से उस धन पर भाईयों का अधिकार है - खण्डन हो जाता है॥ 25॥

And the restriction of it to the single case of an Āsura marriage.

Hence (since the gratuity belongs to the giver of the damsel and to the damsel herself), the argument is refuted, which has been thus proposed; that, has a woman's separate property received in the form of a gratuity (Śulka) is possible only in an Āsura marriage, therefore the gifts of kindred and a gift subsequent, which are specified in the same passage (see 10), shall also be inherited by the brother, provided they are relative to an Āsura marriage.

किन्तूक्तशुल्करूपस्त्रीधनस्य सर्वविवाहेष्वेव सम्भवात् सर्वत्रैव भ्रात्रधिकारः, वाक्यात् विशेषानवगमात्॥ 26॥

किन्तु ऊपर कहे गए शुल्क रूप स्त्रीधन का सभी प्रकार के विवाहों में सम्भव होने से सर्वत्र भाइयों का अधिकार है, इस वाक्य से विशेष बाधा नहीं होती॥ 26॥

The brother is heir to the fee or perquisite, under every form of marriage.

But since property, received as a fee or perquisite (Śulka) in the manner described (see 19 and 21), is possible under every form of marriage, the brother is heir in all such instances; conformably with the text (of Yājñavalkya). For it contains no restriction (to any particular form of marriage, nor to that called Āsura in particular).

तथा गौतमवचनमपि कात्यायनवचनसमानार्थम्। यथा 'भगिनीशुल्कं सोदर्याणामूर्ध्वं मातुः पितुश्च पूर्वं चैके, (गौ0 22–23)।। 27।।

गौतम का वचन भी कात्यायन के वचन के समान है यथा – बहन का धन उसकी मृत्यु के पश्चात् सहोदर भाईयों का होता हैं कुछ आचार्यों के अनुसार माता–पिता के जीवित रहते हुए भी भाईयों का ही धान होता है।। 27।।

A passage of Gautama Confirms this.

Thus the text of Gautama also conveys the same import with that of Kātyāyana (see 12). It is as follows : "The sister's fee belongs to the uterine brohters; after them, it goes to the mother; and next to the father. Some say, "before her."

अस्यार्थः प्रथमं सोदर्याणाम् तेषां पुनरभावे मातुः तदभावे पितुः पूर्वञ्चैक इति परमतम्।। 28।।

इसकी व्याख्या जीमूतवाहन ने इस प्रकार से की है – प्रथम सहोदर भाईयों का, उनके अभाव में माता का, माता के अभाव में पिता का धन होता है। कुछ आचार्यों के अनुसार पहले पिता का अधिकार है।। 28।।

Expositionn of the passage.

The meaning of the passage is this : in the first place that property goes to her brothers of the whole blood. But, on failure of them, it belongs to the mother. In her default, it devolves on the father. Some say before her. This is stated as the doctrine of others.

अतः प्रथमं सोदराणां तदभावे मातुः मातुरभावे पितुः, एषां पुनरभावे तद्धनं भर्तुः। कात्यायनः 'बन्धुदत्तन्तु बन्धूनामभावे भर्तृगामि तत्'।।29।।

अतः प्रथम सहोदर भाईयों का उसके अभाव में माता का, माता के अभाव में पिता का, पुनः इन सबके अभाव में भर्ता का धन होता

है। कात्यायन ने बन्धुदत्त धन को बन्धुओं के अभाव में पति का माना है।। 29।।

On failure of brothers, the gifts of kindred go to the mother; or to the husband. So Kātyāyana ordains.

Therefore, the property goes first to the whole brothers if there be none, to the mother; if she be dead, to the father; but, on failure of all these, it devolves on the husband. Thus Kātyāyana says, "That, which has been given to her by her kindred, goes on failure of kindred, to her husband"

बन्धूनामभाव इत्यनेन भ्रातुरभाव इत्यपि सूचितम्। भ्रातुरभावे पित्रोरधिकारात् दण्डापूपन्यायात् तत्सिद्धेः।। 30।।

बन्धुओं का अभाव भ्राता के अभाव को भी सूचित करता है। भाई के अभाव में माता-पिता का अधिकार दण्डापूपन्याय से सिद्ध हो जाता है।। 30।।

Explanation of the text.

By saying "on failure of the kindred," (or of the father and mother), the failure of brothers is likewise indicated. For, since the parent's right of succession is in default of brothers, (the failure of the preferable claim) must be concluded by the argument a fortiori exemplified in the case of the loaf and staff.

भर्तृपर्यन्ताभावे पुनरिदमुच्यते।।

यदाह बृहस्पतिः -

मातुःस्वसा मातुलानी पितृव्यस्त्री पितृष्वसा।
श्वश्रूः पूर्वजपत्नी च मातृतुल्याः प्रकीर्तिताः।।
यदासामौरसो न स्यात् सुतो दौहित्र एव वा।
तत्सुतो वा धनं तासां स्वस्त्रीयाद्याः समाप्नुयुः।।31।।

भर्तृपर्यन्त उत्तराधिकारियों का अभाव होने पर पुनः इस प्रकार कहा है यथा - बृहस्पति का वचन है - माता की बहन (मौसी), मामी, चाची, पिता की बहन (बुआ), सास और बड़े भाई की पत्नी-माता के

समान हैं। यदि इनमें से किसी का औरस पुत्र, अथवा दौहित्र नहीं होता तो उनके धन को बहन के पुत्र प्राप्त करते हैं।। 31।।

On failure of heirs above mentioned, collaterals inherit.

On failure of heirs down to the husband, this rule again is provided, which Bṛhaspati thus delivers, "The mother's sister, the maternal uncle, the father's sister, the mother-in-law, and the wife of an elder brother, are pronounced similar to mothers. If they leave no issue of their bodies, nor son (of a rival wife), nor daughter's son, nor son of those persons, the sister's son and the rest shall take their property."

औरसपदेन पुत्र-कन्ययोरूपादानम्, तयोः सर्वापवादकत्वात्।

सुतपदेन च सपत्नीपुत्रस्य।

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत् पुत्रिणी भवेत्।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनूरि।।

(मनु0 9-183) **ति स्मृतेः।**

न तु सुतपदमौरसविशेषणम्, वैयर्थ्यात्। सपत्नीपुत्रसद्भावेऽपि स्वस्त्रीयाद्यधिकारापत्तेश्च।। 32।।

औरस पद से पुत्र और कन्या का उपादान है। यह दोनों सबके अपवाद हैं। सुत पद का अर्थ सपत्नी का पुत्र है। यथा - एक पतिवाली स्त्रियों में से यदि एक स्त्री को पुत्र उत्पन्न हो जाए तो (पुत्रहीना शेष भी सब स्त्रियाँ) उसी पुत्र से पुत्रवती होती है, ऐसा मनु ने कहा है। 'सुत' पद औरस का विशेषण नहीं है, व्यर्थ होने के भय से। (अर्थात् औरस शब्द का अर्थ पहले ही सहोदर बता दिया गया है और सुत पद सपत्नी पुत्र को बतलाता है।) सपत्नी पुत्र होने पर भी बहन के पुत्र को अधिकार की आपत्ति हो जाती है।। 32।।

And explained.

Both son and daughter are here signified by the terms "issue of the body." For they bar every other claimant. By

"son" is meant the child of a rival wife. For a passage of law expresses, "If, among all the wives of the same husband, one bring forth a male child, Manu has declared them all, by means of that son, to be mothers of male issue." Nor is the term "son" an epithet of "issue of the body": for it would be superfluous; and the sister's son or other remote heir would have the right of succession, though a son (or a grandson) of a contemporary wife be living.

औरसपुत्र-कन्ययोः, सपत्नीपुत्रस्य चाभावे दौहित्रस्याधिकारिता।। 33।।

यदि औरस पुत्र या कन्या अथवा सपत्नी (विमाता) पुत्र न हो तो सम्पत्ति का अधिकारी दौहित्र कहा गया है।। 33।।

The daughter's son succeeds on failure of the daughter and of male issue.

If there be no legitimate son or daughter, nor a grandson in the male line, nor a son of a rival wife, the right of succession devolves on the daughter's son.

तत्सुत इति तच्छब्देन स्वपुत्र-सपत्नीपुत्रयोरूपादानम्, तेन तत्पुत्रयोरधिकारः न तु दौहित्रपुत्रस्यापि तस्य पिण्डदाने बहिर्भावात्।। 34।।

तत् सुत में तत् शब्द से स्वपुत्र और विमाता पुत्र का उपादान है। इस प्रकार इन पुत्रों का अधिकार है, दौहित्र के पुत्र का नहीं क्योंकि उसे पिण्डदान से बाहर माना गया है अर्थात् दौहित्र पुत्र को पिण्डदान का अधिकार नहीं दिया गया है।। 34।।

Nor the son of the daughter's son.

By the pronoun in the phrase "son of those persons" (see 31) the woman's own issue and the child of a rival wife are signified. Therefore, their sons have a right to inherit; not the son of a daughter's son also, for he is excluded from the oblation of food at obsequies.

तदेषां पुत्रदीनां भ्रात्रदिभर्तृपर्यन्तानाञ्चाभावे सत्स्वपि

श्वशुरभ्रातुश्वशुरादिषु सपिण्डेषु, भगिनीपुत्रदीनामधिकारिता, अनन्यगतेर्वचनात्। स्त्रीणां मातृतुल्यत्वप्रतिपादनेनामीषां पुत्रतुल्यत्वज्ञापनेन पिण्डदातृत्वसूचनस्य दायभागप्रकरणे धनाधिकारज्ञापनैकप्रयोजनकत्वात्॥ 35॥

प्रजाहीन स्त्री के पुत्र न होने पर भाई से लेकर भर्तृपर्यन्त अभाव होने पर सपिण्डों में ससुर, पति के ससुर आदि के होने पर भी बहन के पुत्रदि सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं। दायभाग प्रकरण में धनाधिकार को बतलाने के लिए पिण्ड दान का अधिकार सूचित करने के लिए स्त्रियों को माता के तुल्य और उनके पुत्रों को पुत्र के समान माना है॥ 35॥

That passage does relate to the right of succession.

For want then of sons and other linear heirs as here specified, and in default of brothers or other preferable claimants, includi [illegible] sband, the inheritance passes to the [illegible] as the father-in- [illegible] e living. For the [illegible] chief purpose of [illegible] e competency to [illegible] ribing the women as s[illegible] as standing in the relatic[illegible] right of succession to their pro[illegible]

तत्र [illegible] वचनात् भगिनीसुत'स्वभर्तृ-भागिनेय-देवरपुत्र- भ्रातृश्वशुरपुत्र-भ्रातृसुत-जामातृ-देवराणां पूर्वपूर्वस्याभावे परपरस्याधिकारे देवरस्यैव सर्वशेषेऽधिकारा-पत्तेर्महाजनविरोध इति वस्तुबलमालम्ब्य वचनं वर्ण्यते।

तत्र मनुनां 'त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते' (मनु0 9-186) इति दायभागप्रकरणे कीर्तनात् याज्ञवल्क्येनापि 'पिण्डदोऽंशहरश्चैषामि'ति (याज्ञ0 2-133) पिण्डदानेना-

धिकारदर्शनात् पुत्रस्यापि सातिशयपिण्डदानेन नरकत्राण-कारणतया मुख्यभावेनाधिकारावगतेः।

'मातुलो भागिनेयस्य स्वस्त्रीयो मातुलस्य च।
श्वशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च॥
एतेषां चैव भार्याभ्यः स्वसुर्मातुः पितुस्तथा।
श्राद्धदानन्तु कर्त्तव्यमिति वेदविदां स्थितिः॥

इति वृद्धशातातपवचनात्॥ 36॥

वहाँ स्वस्त्रीयाद्या इस वचन से बहन का पुत्र, अपने पति की बहन का पुत्र, देवर का पुत्र, पति के बड़े भाई का पुत्र, अपने भाई का पुत्र, जमाता और देवर में पूर्व पूर्व के अभाव में बाद वाले का अधिकार है। इस प्रकार देवर का अधिकार सबसे अन्त में बता कर महाजन का विरोध होगा। अतः यह वचन वस्तुस्थिति का आश्रय लेकर बताया गया है। अर्थात् उत्तराधिकारियों का यही क्रम है ऐसा न कहकर पिण्डदान के लिए उत्तराधिकारियों का वर्णन किया गया है।

दायभाग प्रकरण में मनु का श्लोक (9/186) है कि तीन (पिता, पितामह और प्रपितामह) का उदक दान करना चाहिए और तीन का ही पिण्डदान होता है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने भी पिण्डदान के लिए अधिकार बताया है कि - इन (बारह प्रकार के) पुत्रों के मध्य में पूर्व-पूर्व के अभाव में पर-पर पुत्र पिण्ड का दाता और धन ग्रहण करने वाला माना गया है। पुत्र को पिण्डदान करने का अधिकारी मानकर नरक से रक्षा करने का कारण दिखाया गया है। वृद्धशातातप ने कहा है कि - मामी, बहन का पुत्र, मामा, ससुर, गुरु, मित्र, मातामह, पत्नी की बहन, माता-पिता - इन सबका श्राद्ध अवश्य करना चाहिए - ऐसा विद्वानों का मत है॥ 36॥

But not to the order of succession. Passage of Manu, Yājñavalkya and Śātātapa show succession in right of benefits conferred.

Hence, since the text enumerates "sister's son," if the order of succession consequently be, first the sister's son, then

the husband's sister's son, next the child of the husband's younger brother, afterwards the child of the husband: elder brother, then the son of the brother, after him the son-in-law and subsequently the younger brother-in-law, the right would devolve last of all on the younger brother of the husband, contrary to the opinion and practice of venerable persons. Therefore, the text is prepounded, not as declaratory of the order of inheritance, but as expressive of the strength of the fact, (namely, of the benefits conferred). Thus it is declared by Manu, under the head of heritance, "To three ancestors must

quies; for three is the funeral c

is the giver of oblations:

In like manner Yājñav

f the funeral oblati

पिण्डदानक्रमेणाधिकारक्रमवर्णनम्

अयं पिण्डदानविशेषादधिकारक्रमः – प्रथमं देवरः तत्पिण्डतद्भर्तृपिण्डतद्भर्तृदेयपूर्वपुरुषत्रयपिण्डदातृत्वात्, सपिण्डत्वाच्च तद्धनेऽधिक्रियते। तदभावे भ्रातृश्वशुरदेवरयोः सुतः तत्पिण्डतद्भर्तृदेयपूर्वपुरुषद्वयपिण्डदातृत्वात् सपिण्डत्वाच्च पितृव्यस्त्रीधनेऽधिकारी। तदभावे त्वसपिण्डोऽपि भगिनीपुत्रः

तत्पिण्ड-तत्पुत्रदेयतत्पित्रदिपिण्डत्रयदानात् मातृस्वसृधनेऽधिकारी। तदभावे स्वभर्त्तृ-भागिनेयः पुत्रात् भर्तुर्दुर्बलत्वात् तत्स्थानपातिनोरपि तथैव बलाबलस्य न्याय्यत्वात् तद्भर्तृदेयपूर्वपुरुषत्रयपिण्डदानात् तत्पिण्डदानात् तद्भर्तृपिण्डदानाच्च मातुलानीधनेऽधिकारी तदभावे भ्रातृसुतः ततपितृपितामहयोस्तस्याश्च पिण्डदानात् पितृस्वसृधनेऽधिकारी। तस्याप्यभावे श्वशुरयो पिण्डदानात् जामाता श्वश्रूधनेऽधिकारीति॥ 37॥

पिण्डदान के क्रम से अधिकार क्रम का वर्णन करते हैं यथा - प्रथम देवर सपिण्ड होने से मृत स्वामिनी के धन का अधिकारी होता है क्योंकि वह मृत स्त्री को उसके पति को तथा पति द्वारा दिए जाने वाले तीन पितृ पूर्वजों को पिण्डदान करता है। देवर के अभाव में मृत स्त्री के पति के बड़े भाई के पुत्र एवं छोटे भाई के पुत्र का अधिकार है। वे पितृव्यस्त्री (चाची) को उसके पति को और भर्तृदेय दो पितृपूर्वजों को पिण्ड देते हैं। अतः सपिण्ड होने से उनका पितृव्यस्त्री के धन में अधिकार है। इनके अभाव में भगिनी पुत्र जो कि असपिण्ड है वह (मौसी के) धन का अधिकारी है। वह मातृ-भगिनी को और पुत्र द्वारा दिए जाने वाले पितादि तीन पूर्वजों को पिण्ड देता है। इसके अभाव में भर्ता की बहन का पुत्र मातुलानी (मामी) के धन का अधिकारी होता है। वह भर्ता द्वारा दिये जाने वाले तीन पूर्वजों को, मातुलानी को उसके पति को पिण्ड देता है। इसके अभाव में भाई के पुत्र का (मृत स्त्री के भाई पुत्र) पिता की बहन (बुआ) के धन में अधिकार हैं वह पिता, पितामह और पितृ भगिनी (बुआ) को पिण्ड देता हैं उसके अभाव में जामाता (पुत्री के भर्ता) का श्वश्रू के धन में अधिकार है। वह श्वश्रू और श्वशुर को पिण्डदान करता है॥ 37॥

The order of succession is as follows: First, the husband's younger brother, then the son of the brother-in-law. Next the sister's son. Afterwards the husband's sister's son. Then the brother's son. Lastly, the son-in-law.

This then in the order of succession, according to the various degrees (of benefit to the owner of the property) from the oblation of food as obsequies. In the first place, the husband's younger brother is entitled to the woman's property, for he is a kinsmen (SapiṇÄïa) and presents oblations to her, to her husband and to three persons to whom oblations were to be offered by her husband. After him, the son either of her husband's elder or of his younger brother, is heir to the separate [illegible]perty of his uncle's wife, for he is a kinsman and present [illegible]ns to he[illegible] husband and to two persons to whom [illegible] we[illegible]ered by her husband. On failure of [illegible] he be not a kinsman (SapiṇÄïa), [illegible]eft by his mother's sister, because [illegible] and to three persons, (her father [illegible]ons would have been offered by [illegible] the son of her husband's sister (for [illegible]e, since the husband has weaker claim than the [illegible]ons claiming under them should have similar [illegible]edence); is heir to the property of his uncle's wife; [illegible] presents oblations to three persons to whom they [illegible] offered by her husband and also presents oblations [illegible]nd to her husband. On failure of him, the brother's son [illegible] successor to his aunt's property, for he presents oblations to the father, to her grandfather and to herself. If there be no nephew; the husband of her daughter is heir to his mother-in-law's property, since he presents oblations to his mother-in-law and father-in-law.

अयं क्रमो ग्राह्यः। स्वस्त्रीयाद्या इति तु न क्रमार्थम्। किन्त्वधिकारिमात्रज्ञापनार्थपरम्।। 38।।

यह क्रम स्वीकार करना चाहिए। स्वस्त्रीयाद्या इत्यादि वचन क्रम को नहीं बतलाता अपितु अधिकारियों का संकेत करता है।। 38।।

The text (see 31) indicates heirs, not their order of succession.

This order of succession must be assumed : and the mention of "a sister's son" and the rest (see 31) was intended merely for an indication of the heirs, without specifying the order in which they succeed.

षण्णां पुनरेतेषामभावे श्वशुर-भ्रातृ-श्वशुरादेः सपिण्डानन्तर्यकृतो धनाधिकारो बोद्धव्यः॥ 39॥

इन छः के अभाव में (1) देवर, (2) भाई का पुत्र, (3) बहन का पुत्र, (4) पति की बहन का पुत्र, (5) भाई का पुत्र, (6) जामाता। ससुर, पति के बड़े भाई आदि सपिण्ड में जो अधिक निकटवर्ती है वह धन का अधिकारी जानना चाहिए॥ 39॥

If those fail, the husband's father, elder brother etc. inherit.

Again, on failure of these six, it must be understood, that the succession devolves on the father-in-law, the husband's eldest brother and the rest, according to their nearness of kin (the nearest SapiṇÄïa being the heir).

न च सपिण्डाभावे सतीदं वचनमिति वाच्यम्। अस्यामधिकारिशृङ्खलायां देवर-देवरसतुयोः भ्रातृश्वशुरसुतस्य चाधिकारज्ञापनात्, आसन्नतरश्वशुरादेः परित्यागात्॥ 40॥

किसी के मन में शंका हो कि सपिण्ड के अभाव में यह वचन कहा गया है तो ठीक नहीं है। इन अधिकारियों कीशृंखला में देवर, देवर पुत्र, बड़े भाई के पुत्र के अधिकार को बतलाया गया है और निकटवर्ती ससुर (पति के पिता) का त्याग किया है॥ 40॥

The failure of these heirs was not implied in the text.

It must not be supposed, that this text (see 31) is applicable where a failure of kinsmen (SapiṇÄïa) exists : for, in this chain of successors, the husband's younger brother, and his son and the son of the husband's elder brother, have been specified, and the husband's father and elder brother, who are nearer of kin, have been ommitted.

अतो वचनार्थापरिज्ञानकृतो व्यवहारः प्रमाणपरतन्त्रै-

रतन्त्रीकर्तव्यः॥ 41॥

अतः वचनों के अर्थ को बिना जाने किया हुआ व्यवहार प्रमाण को जानने वालों के लिए ग्राह्य नहीं है॥ 41॥

A contrary practice must be rejected as unauthorized.

Therefore, the practice (of preferring the father-in-law to the younger brother-in-law, or of regulating the succession in the order specified in the passage above cited, See 31) which has been introduced for want of comprehending the text (of Bṛhaspati, See 31 or those of Manu and Yājñavalkya) and of understanding the true sense of the law, must be rejected as destitute of reason and authority, by those who (like us) submit to demonstration.

इत्यतिगहनमुक्तमप्रजः स्त्रीधनम्॥ 42॥

इस प्रकार अत्यन्त दुरुह अप्रजस्त्रीधन के अधिकार क्रम का निरूपण किया गया है॥ 42॥

Conclusion.

Thus has succession to the separate property of a childless woman been explained.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-
श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ
धर्मरत्नान्तर्गते दायभागे चतुर्थे अध्याये तृतीयः परिच्छेदः
चतुर्थोऽध्यायश्च समाप्तः।

पञ्चमोऽध्यायः

सम्प्रति विभागानधिकारिणः कथ्यन्ते तत्पर्युदासेनाधिकारिज्ञापनार्थम्। तत्रापस्तम्बः 'सर्वे हि धर्मयुक्ता भागिनो द्रव्यमर्हन्ति' यस्त्वधर्मेण द्रव्याणि प्रतिपादयति ज्येष्ठोऽपि तमभागं कुर्वीत' (आ.प. 2-6-14, 14-15) **इति।। 1।।**

अब विभाग के अनधिकारियों का वर्णन करते हैं। इससे विपरीत ढंग से अधिकारियों का ज्ञापन हो जाता है। यथा - आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि धर्म का आचरण करने वाले सभी पुत्र दाय के अधिकारी होते हैं, किन्तु जो धन को अधर्म के कार्यों में व्यय करता है उस पुत्र को ज्येष्ठ होने पर भी दाय के भाग से वंचित कर दिया जाता है।। 1।।

Who are competent to inherit may be knwon from the specified exception of such as are not. A passage of Āpastamba quoted.

In the next place, persons incompetent to inherit are specified, for the purpose of making known, by the exception, competent heirs. On this subject Āpastamba says, "All co-heirs, who are endued with virtue, are entitled to the property. But he who dissipates wealth by his vices, should be debarred from participation, even though he be the first born.

इदम् बालेनाकुलीकृत्य पठितम्-यस्तु धर्मेण द्रव्याणि प्रतिपादयति ज्येष्ठस्तं पितृसमभागं कुर्वीतेति। तदनाकरम्।।2।।

बालक ने आपस्तम्ब के वचन को अन्यथा पढ़ा है और अर्थ किया है कि-धन को धर्म के कार्यों में व्यय करने वाले ज्येष्ठ पुत्र को पिता के समान भाग मिलता है। जीमूतवाहन ने इसका खण्डन किया है।।2।।

A different reading of it condemned.

This passage is read by Bāloka in a confused manner and contrary sense : "But he, who acquires wealth by his virtuous conduct, being the eldest son, should be made an equal sharer with the father." That reading is unauthorised.

तथा अपपात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि निवर्तन्ते, अपपात्रितः-भिन्नोदकीकृतः॥ 3॥

तथा च - जाति से बहिष्कृत (यथा - चण्डाल आदि) व्यक्ति की रिक्थ एवं श्राद्ध तर्पणादि क्रिया समाप्त हो जाती है। अपपात्रित का अर्थ - जाति से बहिष्कृत॥ 3॥

Another passage. A man expelled for crimes is incapable [illegible]

[illegible] itable right of one who has been expelled [illegible] competence to offer oblations of food [illegible] re extinct." One, who has been expelled [illegible] son excluded from drinking water in [illegible]

[illegible] :

[illegible] गुणवान्नार्हः स्यात् पैतृके धने।
तत्पिण्डदाः श्रोत्रिया ये तेषां तदभिधीयते॥
उत्तमर्णाधमर्णेभ्यः पितरं त्रायते सुतः।
अतस्तद्विपरीतेन नास्ति तेन प्रयोजनम्॥
तया गवा किं क्रियते या न धेनुर्न गर्भिणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः॥
शास्त्रशौर्यार्थरहितस्तपोविज्ञानवर्जितः ।
आचारहीनः पुत्रस्तु मूत्रोच्चारसमस्तु सः॥ 4॥

सवर्णा स्त्री से उत्पन्न पुत्र यदि गुणवान् नहीं है तो वह पैतृक धन को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः वही पिण्डदान कर सकता है जो श्रोत्रिय-विद्वान् है, इस कारण वही पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी है। पुत्र

पिता के उत्तम और अधम ऋणों से रक्षा करता है। अतः विपरीत कार्य करने वाले पुत्र से प्रयोजन नहीं है। जिस प्रकार अनब्याही तथा दुग्धरहित गाय से कोई लाभ नहीं होता, उसी प्रकार अविद्वान् एवं अधार्मिक पुत्र से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जो पुत्र शास्त्र, शौर्य, अर्थ, तप. विज्ञानरहित तथा दुराचारी है वह मल-मूत्र के समान है।। 4।।

Bṛhaspati excludes the vicious from inheritance.

So Bṛhaspati says, "Though born of a woman of equal class, a son destitute of virtue is unworthy of the paternal wealth. It is declared to belong to such kinsmen, offering funeral oblations (to the owner), as are of virtuous conduct. A son redeems his father from debt to sup-erior and inferior beings. Consequently there is no use for one who acts otherwise. What can be done with a cow which neither gives milk, nor bears calves? For what purpose was that son born, who is neither learned nor virtuous? A son, who is devoid of science, courage and good purposes, who is destitute of devotion and knowledge and who is wanting in conduct, is similar to urine and excrement."

आपस्तम्बस्यायमर्थः पित्रादेरौर्ध्वदैहिकस्य कर्मणः, 'असंस्कृतः सुतः श्रेष्ठः नापरो वेदपारगः' इति।। 5।।

आपस्तम्ब के वचन का अर्थ है कि जो पुत्र पितादि की अन्त्येष्टि क्रिया करता है वह अनुपनीत होते हुए भी श्रेष्ठ है परन्तु दूसरा पुत्र जो वेद के ज्ञान से सम्पन्न होने पर भी अन्त्येष्टि क्रिया नहीं करता वह दाय का अनधिकारी होता है।। 5।।

5. A passage of Āpastamba.

Āpastamba says, "A son, who diligently performs the obsequies of his father and other ancestors, is of approved excellence, even though he be uninitiated : not a son who acts otherwise, be he conversant even with the whole Veda."

पुन्नाम्नो नरकात् यस्मात् त्रायते पितरम् सुतः। (मनु0 9-138, विष्णु 15-43) **इत्यादिवचनेन पुत्रकर्तृकतया**

महाफलश्रुतेस्तत्कर्म वेतनम्-धनसम्बन्धित्वम्। अतस्तदकुर्वतः कुतो वेतनम्।

अतएवाह मनुः

सर्वं एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम्।। 6।।

(म0 9-214।)

पुत्र पिता की पुम् नामक नरक से रक्षा करता है। इस प्रकार उसकी अन्त्येष्टि आदि क्रिया करने से महाफल की प्राप्ति होती है और पुत्र को इसी के बदले में पैतृकं धन रूप वेतन मिलता है किन्तु जो पुत्र इन कर्मों को नहीं करता वह इसका फल अर्थात् पैतृक धन भी नहीं प्राप्त करता है। मनु ने विरुद्ध कर्म करने वाले को धन का अनधिकारी कहा है।। 6।।

A son's right of succession is the reward of benefits conferred on his father; as appears from passages of Manu.

Since a son delivers his father from the hell called put. therefore, he is named puttra by the self-existent himself". By this and similar passages, great benefits are stated, as effected to means of a son. His connection with the property is therefore, the reward of his beneficial acts. If then he neglect them, how should he have his heir? Accordingly Manu says, "All those brothers who are addicted to vice, lose their title to the inheritance".

तथा -

अनंशौ क्लीब-पतितौ जात्यन्ध-बधिरौ तथा।
उन्मत्त-जड-मूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रिया।। 7 ।।

(मनु0 9-201)

मनु का मत है कि नपुंसक, पतित, जन्मान्ध, बधिर, उन्मत्त, जड़, मूक एवं इन्द्रिय-दोषी को अंश नहीं मिलता है।। 7।।

Manu enumerates disqualified persons.

So (the same author) : "Impotent persons and outcasts are excluded from a share of the heritage; and so are persons born blind and deaf; as well as madmen, idiots, the dumb and those who have lost a sense (or a limb)."

क्लीबश्च कात्यायनेन वर्जितः

'न मूत्रं फेनिलं यस्य विष्ठा चाप्सु निमज्जति।
मेढ्रश्चोन्माद-शुक्राभ्यां हीनः क्लीबः स उच्यते'।।8।।

कात्यायन ने नपुंसक की परिभाषा इस प्रकार से बताई है कि - जिसके मूत्र में झाग नहीं होता, विष्ठा जल में डूब जाती है, जो लिंग एवं शुक्रहीन है और पागल है उसे नपुंसक कहते हैं।। 8।।

Kātyāyana defines impotency.

The impotent person is described by Kātyāyana : "that man is called impotent, whose urine froths not, whose faeces sink in wather and whose virile member is void of erection and of semen."

जातिपदमन्ध-बधिराभ्यां सम्बध्यते, वर्णानुच्चारकः-मूकः, वेदग्रहणासमर्थोः जडः।। 9।।

मनु के श्लोक में आए हुए जातिपद, अन्ध और बधिर से संबन्धित है। जो वर्णों के उच्चारण करने में असमर्थ हैं वे मूक हैं। वेद के ग्रहण करने में असमर्थ जड़ कहलाते हैं।। 9।।

Exposition of the text of Manu, (see 7).

The term 'born' is connected in construction with the words 'blind' and 'deaf'. One, who is incapable of articulating sounds, is dumb. An idiot is a person not susceptible of instruction.

तदाह याज्ञवल्क्यः -

'पतितस्तत्सुतः क्लीबः पङ्गुरुन्मत्तको जड़ः।
अन्धोऽचिकित्स्यरोगार्तो भर्तव्यास्ते निरंशकाः'।।

(याज्ञ0 2.41)

पद्भ्यां न गच्छतीति पङ्गुः॥ 10॥

याज्ञवल्क्य के मतानुसार - पतित, पतित का पुत्र, नपुंसक, पंगु, उन्मत्त (पागल), जड़, अन्धे एवं असाध्य रोग से पीड़ित को अंश नहीं मिलता। इनका केवल भरण-पोषण करना चाहिए। जो पैरों से चल नहीं सकता वह पंगु है॥ 10॥

A similar passage of Yājñavalkya.

Yājñavalkya says, "An outcast and his issue, an impotent person, one lame, a madman, an idiot, a blind man, a person afflicted with an incurable disease, (as well as other similarly disqualified), must be maintained, excluding them, however, from participation." One, who cannot walk, is lame.

निरंशकत्वेऽपि पतित-तत्सुतव्यतिरिक्ता भर्तव्याः।

तदाह देवलः -

'मृते पितरि न क्लीबकुष्ठयुन्मत्तजड़ान्धकाः।
पतितः पतितापत्यं लिङ्गी दायांशभागिनः॥
तेषां पतितवर्जेभ्यो भक्तवस्त्रं प्रदीयते।
तत्सुताः पितृदायांशं लभेरन् दोषवर्जिताः'॥
लिङ्गी-प्रव्रजितादिः॥ 11॥

अंश रहित होने पर भी पतित एवं उसके पुत्र के लिए भरण-पोषण नहीं करना चाहिए। इस प्रसंग में देवल ने कहा है कि - पिता के मरने पर नपुंसक, कुष्ठग्रस्त, उन्मत्त, जड़, अन्धे, पतित, पतित पुत्र एवं लिंगी दाय के अंश को नहीं प्राप्त करते। इनमें पतित के अतिरिक्त शेष को भोजन एवं वस्त्र प्रदान किया जाता है परन्तु यदि पतित का पुत्र निर्दोष हो तो उसे पिता का भाग मिलता है। लिंगी से अभिप्राय संन्यासी है॥ 11॥

Those debarred from inheriting should be maintained; excepting the outcast and his son. A passage of Devala cited and explained.

Although they be excluded from participation, they

ought to be maintain, excepting, however, the outcast and his son. That is taught by Devala : "When the father is dead (as well as in his life-time) an impotent man, a leper, a madman, an idiot, a blind man, an outcast, the offspring of an outcast and a person wearing the token (of religious mendicity), are not competent to share the heritage. Food and raiment should not be given to them excepting the outcast. But the sons of such persons, being free from similar defects, shall obtain their father's share of the inheritance." A person wearing the token of mendicity is one who has become a religious wanderer of ascetic.

पतितपदेन तत्सुतस्याप्युपादानम्, पतितोत्पन्नत्वेन पतितत्वात्। तदाह बौधायनः 'अतीतव्यवहारान् ग्रासाच्छादनैर्विभृयुः। अन्ध-जड़-क्लीब- व्यसनि-व्याधितादींश्च। अकर्मिणः पतित-तज्जातवर्जम्' ॥ 12॥ (बौ0घ0 2-2-38-41)

पतित पद से उसके पुत्र का भी निर्देश होता है। पतित से उत्पन्न पुत्र भी पतित होता है। यथा - बौधायन ने कहा है कि - अन्धे, जड़, नपुंसक, बुरी आदत में पड़े हुए, रोगी तथा कर्म करने में असमर्थ पुत्रों को भोजन-वस्त्र आदि देकर उनका भरण-पोषण करना चाहिए। पतित एवं उसके पुत्र का भरण-पोषण भी नहीं करना चाहिए॥ 12॥

A son born after the degradation of his father is an outcast. Baudhāyana cited.

By the term outcast, his son also is intended; for he is degraded, being procreated by an outcast. That is confirmed by Baudhāyana, who says, "Let the co-heirs support with food and apparel those who are incapable of business, as well as the blind, idiots, impotent persons, those afflicted with disease and calamity and others who are incompetent to the performance of duties ; excepting, however, the outcast and his issue.

तत्र नारदः -

'पितृद्विट् पतितः षण्ढो यश्च स्यादौपपातिकः।
औरसा अपि नैतेऽशं लभेरन् क्षेत्रजाः कुतः'॥ 13॥

(ना0 13-21)

नारद ने दाय के अनधिकारियों का वर्णन करते हुए कहा है कि - पिता से द्वेष करने वाला, पतित, नपुंसक, उपपातकी ये औरस होने पर भी अंश प्राप्त नहीं करते तो फिर क्षेत्रज पुत्र को कैसे अंश मिल सकता है॥ 13॥

Nārada's enumeration of disqualified persons.

On this subject, Nārada says, "An enemy to his father, an outcast, an impotent person and one who is addicted to vice (or has been expelled from society), take no shares of the inheritance even though they be legitimate : much less, if they be sons of the wife by an appointed kinsman."

आह कात्यायनः -

'अक्रमोढ़ासुतश्चैव सगोत्रद् यस्तु जायते।
प्रव्रज्यावसितश्चैव न रिक्थं तेषु चार्हति'॥ 14॥

कात्यायन के अनुसार - अक्रम से विवाहित स्त्री का सवर्ण से उत्पन्न पुत्र संन्यासयुक्त होता हुआ धन का अधिकारी नहीं होता है॥ 14॥

Kātyāyana specifies others.

Kātyāyana ordains, that "The son of a woman married in irregular order; and begotten on her by a kinsman, is unworthy of the inheritance; and so is an apostate from a religious order."

हीनवर्णस्त्रीपरिणयनानन्तरम् उत्तमवर्णास्त्रीपरिणायने द्वयोरप्यक्रमोढ़ात्वम्, तयोः सगोत्रात् नियुक्तादुत्पन्नः क्षेत्रजः पुत्रो नार्हति धनन्, अक्रमोढ़ायामपि सवर्णेन परिणेत्रा उत्पादितः पुत्रो धनाधिकारी, क्रमोढ़ायामसवर्णजातोऽपि॥ 15॥

यदि ब्राह्मण प्रथम हीन वर्ण की स्त्री (क्षत्रिया) के साथ विवाह करके बाद में उत्तम वर्ण की स्त्री (ब्राह्मणी) के साथ विवाह करता है तो यह दोनों ही अक्रम विवाह हैं। उन दोनों स्त्रियों में नियोग द्वारा सगोत्र से क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न होता है तो वह धन प्राप्त नहीं करता। परन्तु अक्रम से विवाहित स्त्री का सवर्ण से उत्पन्न पुत्र एवं क्रम से विवाहित स्त्री का असवर्ण से उत्पन्न पुत्र धन के अधिकारी होते हैं।। 15।।

15. Interpretation of his text.

If a woman of superior tribe be espoused after marrying one of inferior class, both marriages are contrary to regular order. The son of eith of these women, being Kṣetraja, or issue of the wife, procreated by a kinsman authorised to raise up issue to the husband, is unworthy of the inheritance. But a son begotten by the husband himself, being of the same tribe, on his wedded wife espoused in irregular order, is heir to the estate: so likewise is a son begotten by the husband on a wife dissimilar in class but expoused in regular gradation.

तदाह कात्यायनः

'अक्रमोढ़ासुतस्त्वृक्थी सवर्णश्च यदा पितुः।
असवर्णप्रसूतश्च क्रमोढ़ायाञ्च यो भवेत्।।
प्रतिलोमप्रसूतो यस्तस्याः पुत्रे न रिक्थभाक्।
ग्रासाच्छादानमात्रं तु देयं यद्बन्धुभिर्मतम्।।
बन्धूनामप्यभावे तु पित्र्यं द्रव्य तदाप्नुयात्।।
स्वपित्र्यं तद्धनं प्राप्तं दापनीया न बान्धवाः'।।16।।

कात्यायन ने भी यही कहा है कि - अक्रम से विवाहित स्त्री का पुत्र जिसका पिता सवर्ण है एवं क्रम से विवाहित स्त्री का पुत्र जिसका पिता असवर्ण है वे धन को प्राप्त करते हैं। अपि च - प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न पुत्र को पैतृक सम्पत्ति नहीं मिलती, उसे उसके संबन्धियों से केवल भोजन-वस्त्र मिलता है। यदि संबन्धी न हो तो ऐसे पुत्र को पिता की सम्पत्ति मिल जाती है, किन्तु यदि संबन्धियों ने सम्पत्ति

प्राप्त कर ली है तो आवश्यक नहीं कि वे बान्धव पुत्र को सम्पत्ति वापस कर दें।। 16।।

A further passage of Kātyāyana.

That is declared by Kātyāyana: "But the son of a woman married in irregular order, may be heir provided he belong to the same tribe with his father : and so may the son of a man belonging to a different (but superior) tribe, by a woman espoused in the regular gradation. The son of a woman married to a man of inferior tribe, is not heir to the estate. Food and raiment only are considered to be due to him by his kinsmen. But on failure of them, he may take the paternal wealth. The kinsman shall not be compelled to give the wealth received by them not being his patrimony."

अस्ति च क्लीबादीनां दारपरिग्रहः

'यद्यर्थिता तु दारैः स्यात् क्लीबादीनां कथञ्चन।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति।।

(म09/203)

तन्तुः अपत्यम्।।। 17।।

नपुंसकादि का भी विवाह संस्कार हो सकता है यथा मनु का वचन है कि- नपुंसक पतितादि यदि किसी प्रकार से विवाह करने की इच्छा रखें तो उनसे उत्पन्न सन्तान (नियोग विधि से) इनके धन पाने की अधिकारिणी होती है। तन्तु का अर्थ-सन्तान है।। 17।।

Disqualified persons may have issue.

A possibility exists of an impotent man and the rest as above enumerated (see 7), espousing wives. "If the eunuch and the rest should at any time desire to marry, the offspring of such as have issue, shall be capable of "inheriting". Issue signifies offspring.

न चापुंस्त्वात् क्लीबस्य जननासामर्थ्यात्,? अध्ययनाभावात् मूकादेरुपनयनाभावेन पतितत्वात् कथं दारसम्बन्ध इति वाच्यम्; क्लीबस्य पत्न्यामन्येन

पुत्रोत्पादसम्भवात्। उपनयनानर्हस्यानुपनीतत्वे शूद्रवद-पतितत्वात्।। 18।।

यहाँ पर किसी को शंका हो सकती है कि नपुंसक का पुंस्त्व न होने के कारण सन्तान पैदा करने में असमर्थ होने से इनका विवाह कैसे हो सकता है। इसी प्रकार मूकादि का उपनयन संस्कार न होने के कारण वेदाध्ययन से वञ्चित होने पर, ये पतित माने जाते हैं। इसका उत्तर यही है कि नपुंसक की पत्नी की अन्य पुरुष से पुत्रोत्पत्ति सम्भव है। इसी प्रकार मूकादि का उपनयन संस्कार न होने के कारण शूद्र के समान इन्हें पतित नहीं कहा जाता। अर्थात् जिस प्रकार शूद्र का उपनयन संस्कार न होने के कारण उसे पतित नहीं कहा जाता उसी प्रकार मूकादि भी पतित नहीं होते।। 18।।

18. An objection answered.

It must not be objected, how can they contract marriages, since the eunuch, not being male, is incapable of procreation and the dumb man and the rest (or those born deaf or blind) are degraded for want of initiation and investiture, because they are unapt for (the preparatory) study? The eunuch may obtain issue from his wife by means of another man; and a person unfit for investiture with sacerdotal string is not degraded from his tribe for want of that initiation, any more than a Śūdra.

तेनैतेषां यथासम्भवमौरस-क्षेत्रजाः क्लीबत्वादिशून्याः स्वपित्रनुसारेण भागहारिणः दुहितरश्च परिणयनं यावद्भर्तव्याः, अपुत्राश्च स्त्रियः यावज्जीवम्।

यदाह याज्ञवल्क्यः -

औरस-क्षेत्रजास्त्वेषां निर्दोषा भागहारिणः।
सुताश्चैषां प्रभर्तव्या यावन्न भर्तृसात्कृताः।।
अपुत्रा योषितश्चेषां भर्तव्याः साधुवृत्तयः।
निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च।। 19।।

इन नपुंसकादि के यथासम्भव क्षेत्रज और औरस पुत्र क्लीबादि दोषों से हीन होने पर पिता का भाग प्राप्त करते हैं और यदि कन्यायें हों तो विवाहपर्यन्त भरण-पोषण किया जाता है। पुत्रहीन स्त्रियाँ जीवनपर्यन्त भरण-पोषण प्राप्त करती हैं। याज्ञवल्क्य ने भी इसी प्रसंग में कहा है कि - इनके औरस क्षेत्रजादि पुत्र यदि निर्दोष हैं तो भाग प्राप्त करते हैं। इनकी कन्याओं का तब तक भरण-पोषण करना चाहिए जब तक इनका विवाह नहीं हो जाता। इनकी पुत्र रहित सदाचारिणी स्त्रियों का भरण-पोषण करना चाहिए और यदि इसके प्रतिकूल व्यभिचारिणी हों तो उन्हें निकाल देना चाहिए।। 19।।

Sons of disqualified persons inherit, if free from similar defect.

Therefore, the so[illegible]ither their natural offspring or is[illegible]he case may be, are entitled, [illegible]fects, to take their allot[illegible]heir fathers. Their dau[illegible]nd their childless wiv[illegible]ed by Yājñavalkya: [illegible]he offspring of the soi[illegible]lar defects. Their dau[illegible]led with husbands. Thei[illegible]ves aright, must be support[illegible]should be expelled; and so indeed [illegible]perverse.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्नान्तर्गते दायभागे पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः।

षष्ठोऽध्यायः

प्रथमपरिच्छेदः

सम्प्रति विभाज्यम्, अविभाज्यञ्चोच्यते।

तत्र कात्यायनः -

पैतामहञ्च पित्र्यञ्च यच्चान्यत् स्वयमर्जितम्।
दायादानां विभागे तु सर्वमेतद्विभज्यते।। 1।।

अब विभाज्य और अविभाज्य धन का निरूपण किया जाता है। इस प्रसंग में कात्यायन का मत है कि पितामहधन, पितृधन, किसी अन्य दायाद द्वारा स्वयं अर्जित धन दायादों में विभाज्य हेता है।। 1।।

The patrimony and joint stock may be divided : as is declared by Kātyāyana.

In the next place, effects which may be divided, and such as are exempted from partition, are here explained. On that subject Kātyāyana says, "What belonged to the paternal grandfather or to the father, and any thing else (appertaining to the co-heirs having been) acquired by themselves must all be divided at a partition among heirs."

यच्चान्यदिति चकारः स्वयमित्यनेन सम्बध्यते। स्वयञ्चार्जितमिति चकारादन्यस्यापि तदर्जनं साधारणधनद्वारेणेत्यर्थः।। 2।।

'यच्चान्यत् स्वयमर्जितम्' में 'च' शब्द स्वयं अर्जित से संबन्धित है। अतः यह संयुक्त सम्पत्ति की सहायता से अन्य दायाद द्वारा तथा स्वयं अर्जित धन का निर्देश करता है।। 2।।

Exposition of his text.

And any thing else. Here the particle 'and' is connected, in the sentence, with the term 'themselves'; viz., 'acquired by themselves'; or, as implied by the conjunctive particle acquired by another person : but his acquisition must have been made through the common property (or else by joint personal labour). Such is the meaning.

अनुपघातोपात्तमविभाज्यमाहतुर्मनु-विष्णू-

अनुपघ्नन् पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जयेत्।
स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति।। 3।।

(मनु0 9-208। विष्णु 18.42)

पैतृक द्रव्य को नष्ट न करके जो अपने परिश्रम से अर्जित किया जाता है उसे मनु और विष्णु ने अविभाज्य कहा है - पितृद्रव्य का व्यय किए बिना निजी श्रम से जो धन उपार्जित किया जाता है उस पर अर्जक का ही अधिकार होता है। यह उसकी इच्छा है कि वह किसी अन्य दायाद को उसमें से भाग दे अथवा नहीं।। 3।।

Separate acquisitions are not be shared : according to Manu and Viṣṇu.

Manu and Viṣṇu declared indivisible what is gained without expenditure. "What a brother has acquired by his labour, without using the patrimony, he need not give up without his assent; for it was gained by his own exertion."

पितृद्रव्योपघाताभावेन द्रव्यद्वारेण नेतरेषां व्यापारः, स्वचेष्टालब्धत्वेन शारीरोऽपि व्यापारो नेतरेषामिति, अर्जकस्यैव तदसाधाणम्, स्वयमीहितलब्धं तदिति हेतुत्वेनोपन्यासात्।।4।।

पैतृक द्रव्य को नष्ट किए बिना जो द्रव्य अर्जित किया जाता है उसमें अन्य का अधिकार नहीं है, वह द्रव्य अपनी चेष्टा अर्थात् श्रम से प्राप्त किया जाता है, दूसरों का शारीरिक व्यापार भी नहीं है, इसलिए वह अर्जक का असाधारण धन है, अपनी इच्छा से प्राप्त किया जाता है, यह हेतु बतलाया गया है।। 4।।

Reason of the exception from participation.

Since the patrimony is not used, there is no exertion on the side of the others, through the means of the common property: and since it was obtained by the man's own labour, there is no corporeal effor on the part of the rest : it is, therefore, the separate property of the acquirer alone; for the phrase "it was gained by his own exertion." is stated as a reason.

तथा च व्यास: -

अनाश्रित्य पितृद्रव्यं स्वशक्त्याऽऽप्नोति यद्धनम्।
दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यालब्धन्तु यद्भवेत्।। 5।।

व्यास के वचन में भी यही समर्थित होता है कि - पितृद्रव्य का आश्रय न लेकर जो व्यक्ति अपनी शक्ति से धन अर्जित करता है उसमें किसी अन्य दायाद का अधिकार नहीं होता। इसी प्रकार विद्याधन में भी किसी का अधिकार नहीं है।। 5।।

It must be an acquisition effected without use of the joint funds : as Vyāsa declares.

So Vyāsa ordains : "What a man gains by his own ability, without relying on the patrimony, he shall not give up to the co-heirs; nor that which is acquired by learning.

स्वशक्तिमात्रेण यत् प्राप्तमिति सामान्येनाभिधानात्। सर्वमेवंविधम् स्वीयमसाधारणं द्रव्यं।। 6 ।।

अपने परिश्रम से जो प्राप्त किया जाता है यह सामान्य नियम है। इसी प्रकार से अपना जो धन है वह असाधारण है।। 6।।

Since it is expressed in general terms, 'what he gains solely by his own ability,' all property, so acquired, being his own is not common.

स्वीयम् स्वधनश्रममात्रार्जितमसाधारणम् भ्रात्रन्तरैरवि-भाज्यम्।। 7।।

अपनी शक्ति से अर्जित किया गया धन अर्जक का असाधारण होता हैं उसका अन्य भाईयों में विभाजन नहीं किया जाता।। 7।।

Exposition of the text.

But, as the gains of science, though obtained by the man's own ability, are shared by parceners equally or more proficient in knowledge, the phrase "nor that which is acquired by learning," is subjoined for the sake of excluding illiterate or less learned parceners.

स्वशक्तिप्राप्तस्यापि विद्याधनस्य समाधिकविद्यैः साधारणत्वात् न्यूनविद्याविद्यनिराकरणार्थंविद्यालब्धपदम्।

तथा याज्ञवल्क्यः -

'पितृद्रव्याविरोधेन यदन्यत् स्वयमर्जितम्।
मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव दायादानां न तद्भवेत्'॥

(याज्ञ0 1-119/8)

यदि अपनी शक्ति से, विद्या से प्राप्त किया गया धन है तो उसमें सम अथवा अधिक विद्वान् का तो अधिकार है, न्यून विद्यावाले का निराकरण किया गया है। याज्ञवल्क्य ने इस प्रसंग में कहा है कि - पितृद्रव्य के अविरोध से स्वयं अर्जित किया गया धन, मैत्र धन एवं वैवाहिक धन का दायादों में विभाजन नहीं होता है॥ 8॥

Other separate gains instanced by Yājñavalkya.

So Yājñavalkya directs: "Whatever else is acquired by the co-parcener himself, without detriment to the father's estate, as a present from a friend, or a gift at nuptials, does not appertain to the co-heirs."

मैत्रादिग्रहणं प्रदर्शनार्थम्, एवमादिषु प्रायेणानुपघातज सम्भावात्॥ 9॥

मैत्रदि धन - यह वचन व्याख्या के लिए है। इस प्रकार का धन प्राय पैतृक सम्पत्ति का व्यय किए बिना ही होता है॥ 9 ॥

9. Explanation of his text.

Here, the mention of "a present from a friend" and so forth as intended for illustration only; since it is in such modes that acquisitions are usually made without expenditure.

तथा मनुः -

'विद्याधनन्तु यद् यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत्।
मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव माधुपर्किकमेव च'॥ 10॥

(मनु0 9-206)

मनु का भी यही मत है कि विद्याधन, मैत्रधन, विवाह एवं मधुपर्क में प्राप्त धन अविभाज्य होता है॥ 10॥

A passage of Manu quoted.

So Manu likewise says : "Wealth, however, acquired by learning, belongs exclusively to him who acquired it; and so does any thing given by a friend, received on account of marriage, or presented as a mark of respect."

तथा व्यासः -

विद्याप्राप्तं शौर्यधनं यच्च सौदायिकं भवेत्।
विभागकाले तत्तस्य नान्वेष्टव्यं स्वरिक्थिभिः॥11॥

व्यास का मत भी मनु के मत से मिलता-जुलता है यथा - विद्या से प्राप्त धन, शूरवीरता से अर्जित धन और सौदायिक धन विभाजन के समय उसी का होता है जो अर्जित करता है, अन्य अधिकारी नहीं प्राप्त कर सकते॥ 11॥

One of Vyāsa.

Vyāsa (delivers a similar precept) : "Wealth gained by science, or earned by valour, or received from affectionate kindred, belongs, at the time of partition, to him (who acquired it) and shall not be claimed by the co-heirs.

सुदायः-पितृ-पितृव्यादिभ्यः सम्बन्धिभ्यः प्रसादादिना लब्धम्, सौदायिकम्॥ 12॥

पिता, चाचा अथवा अन्य संबन्धियों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक दिया गया धन सौदायिक धन कहलाता है॥ 12॥

Gift of affectionate kindred explained.

What is obtained through favour or the like, from a

father, uncle, or other kind relations, is received from affectionate kindred.

तथा नारदः

'शौर्यभार्याधनं हित्वा यच्च विद्याधनं भवेत्।
त्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादो यश्च पैतृकः'।। 13।।

(ना0 13.6)

नारद के मतानुसार - शौर्य से प्राप्त धन, भार्याधन, विद्याधन और प्रीतिपूर्वक प्राप्त धन का विभाजन नहीं होता है।। 13।।

A passage of Nārada cited.

Nārada similarly says, "Excepting what is gained by valour, the wealth of a wife, and what is acquired by science, which are three sorts of property exempt from partition; and any favour conferred by a father."

भार्याप्राप्तिकाले लब्धं भार्याधनम्, औद्वाहिकमित्यर्थः। एतानि वर्जयित्वा अन्यद्विभजेदित्यनुवर्तते वाक्यान्तरीयम्।। 14।।

भार्याधनम् से अभिप्राय - विवाह के समय प्राप्त धन से है। इनको छोड़कर शेष अन्य धन का विभाजन होता है - यह इस वाक्य से प्रतीत होता है।। 14।।

Exposition of the text. Excepting the above, other property may be divided.

What was received at the time of obtaining a wife is here called the "wealth of a wife"; meaning effects obtained on account of marriage. Excepting these acquisitions (see 12), let him divide other property: for this phrase is here understood, as expressed in another sentence.

तदेवमादिभिः शौर्यादिधनत्वमविभाज्यत्वे कारणं नोच्यते, शौर्याद्यर्जितस्यापि विभागश्रुतेः।

तथा व्यासः -

'साधारणं समाश्रित्य यत्किञ्चिद्वाहनायुधम्।
शौर्यादिनाप्नोति धनं भ्रातरस्तत्र भागिनः।।

तस्यभागद्वयं देयं शेषास्तु समभागिनः

साधारणद्रव्येणार्जितस्य धनस्य विभागं वदति।

तथा नारदः -

कुटुम्बं विभृयाद्भ्रातुर्यो विद्यामधिगच्छतः।

भागं विद्याधनात्तस्मात् स लभेताश्रुतोऽपि सन्॥15॥

(ना. 13-10)

इन पूर्वोक्त वचनों से शौर्यादि धन के अविभाज्यत्व का कारण नहीं कहा गया है किन्तु शौर्यादि धन विभाज्य होता है - इस प्रसंग में व्यास ने कहा है कि - यदि किसी वाहन, अश्व, रथ आदि की सहायता से शौर्यादि से कोई व्यक्ति धन प्राप्त करता है तो उसमें अन्य भाइयों का भी भाग होता है परन्तु अर्जक को द्वयंश की प्राप्ति होती है और शेष भाइयों में सम विभाजन होता है।

साधारण द्रव्य के द्वारा अर्जित सम्पत्ति का विभाजन होता है।

नारद के मतानुसार यदि विद्या का उपार्जन करते समय किसी भाई के कुटुम्ब का भरण-पोषण दूसरा भाई करता है तो वह अविद्वान् होते हुए भी विद्याधन में से कुछ भाग प्राप्त करता है॥ 15॥

15. Such gains are sometimes liable to be shared : as declared by Vyāsa and Nārada.

By these and other similar passages, the circumstance of the property having been acquired by valour of the like, is not stated as a sufficient reason for its being exempt from participation; since a distribution even of property so acquired, is expressly ordained in certain cases. Thus Vyāsa directs a partition of effects so gained, with the use of the common goods. "The brethren participate in that wealth, which one of them gains by valour or the like, using any common property, either a weapon or a vehicle. To him two shares should be given : but the rest should share alike." So Nārada ordains : "He, who maintains the family of a brother studying science, shall take, be he ever so ignorant, a share of the wealth gained by science."

विभृयादित्येकवचननिर्देशात् यदि विद्यामभ्यस्यतो भ्रातुः कुटुम्बमपरः भ्राता स्वधनव्यय-शरीरायासाभ्यां संवर्धयति, तदा तद्विद्योपार्जितधने तस्याप्यधिकारः।। 16।।

बिभृयात् इस एक वचन के निर्देश से प्रतीत होता है कि विद्या को प्राप्त करते हुए भाई के कुटुम्ब का पालन-पोषण अपने धन के व्यय से या अपने शारीरिक परिश्रम से अन्य भाई करता है तो उस विद्या से प्राप्त सम्पत्ति में उसका भी अधिकार होता है।। 16।।

Especially the gains of science.

Since the term "maintained" is exhibited in the singular number if the family of the brother, who is studying science, be made to prosper by another brother at the expense of his own wealth, or by the labour of his body, then he also has a title to property gained by that science.

यत्पदोपात्तस्य कुटुम्बभर्तुः कर्तृत्वात् तद्विशेषणस्य एकत्वस्य विवक्षितत्वेन तु वित्तार्जकधनस्यैव तदुपयोगे स्वधनस्यैव वित्तार्जनोपयोग इति भावः।

'तथा

वैद्योऽविद्याय नाकामो दद्यादंशं स्वतो धनात्।
पित्र्यं द्रव्यं समाश्रित्य न चेत्तेन तदर्जितम्'।। 17।।

(नारद 13/11)

यत् पद के उपात्त से कुटुम्ब का भर्ता कर्ता है उसका विशेषण बिभृयात् एकवचन में विवक्षित हैं वित्तार्जकधन का अलग से अपने असाधारण धन का लाभ होगा। साधारण धन के द्वारा लाभ नहीं होगा। साधारण धन होने पर वित्तार्जक धन का ही उपयोग होगा। नारद ने इस प्रसंग में कहा है कि पैतृक सम्पत्ति का आश्रय लिए बिना ही अर्जित की गई सम्पत्ति में विद्वान् भाई अपनी इच्छा के बिना अविद्वान् को भाग नहीं दे।। 17।।

Another passage of Nārada.

So (the same legislator says), "A learned man need not give a share of his own acquired wealth, without his assent, to an unlearned co-heir : provided it were not gained by him using the paternal estate."

पित्र्यपदं साधारणधनपरम्, तदनाश्रित्यार्जितं वैद्योऽविद्याय अनिच्छन्न दद्यात्, वैद्याय विदुषे पुनः साधारणमन्तरेणाप्यर्जितं दद्यादेव॥ 18॥

पित्र्य पदम् संयुक्त धन के लिए प्रयुक्त हुआ है। संयुक्त सम्पत्ति का प्रयोग किए बिना विद्वान् अपनी इच्छा के बिना अविद्वान् को भाग न दे परन्तु विद्वान् भाई संयुक्त सम्पत्ति का उपघात किए बिना जो अर्जित करता है उसमें से अंश दे दे।। 18।।

The gains of science need not, however, be shared with an unlearned co-heir.

The word "paternal" intends joint property. What has been gained by him without using that, a learned man need not give up against his will, to an unlearned co-heir. But to a learned or instructed co-heir, he must give a share of any thing acquired by him, even without the use of joint property.

तथा गौतम -

'स्वयमर्जितमवैद्येभ्यो वैद्यः कामं न दद्यात्'॥19॥

(गौ.ध. 3-10-28।)

गौतम के मतानुसार - स्वयं अर्जित सम्पत्ति में से विद्वान् भाई अविद्वान् को अपनी इच्छा के बिना न दे।। 19।।

Accordingly Gautama says, "His own acquired wealth, a learned man need not give up against his inclination, to unlearned co-heirs.

असाधारणधनशरीरव्यापारार्जितम् - स्वयमर्जितम् अविद्वद्भ्यो दातुमनिच्छन् न दद्यात्, विद्वद्भ्यः पुनर्दद्यादेव॥20॥

जीमूतवाहन ने स्वयमर्जितम् का अर्थ किया है - विशेष परिश्रम और निजी धन से अर्जित की हुई सम्पत्ति, अविद्वान् भाईयों के लिए इच्छा न होते हुए न दे, पुनः विद्वान् भाइयों को दे।। 20।

Interpretation of the text.

What is gained by his personal labour on his separate funds, being his own acquired property, he need not give up, if he be unwilling to surrender it, unto unlearned co-heirs : but he must yield to learned brethren.

एतच्च विद्याधानमात्रविषयम्।

तदाह कात्यायनः -

'नाविद्यानान्तु वैद्येन देयं विद्याधनं क्वचित्।
समविद्याधिकानान्तु देयं वैद्येन तद्धनम्'।। 21।।

यह केवल विद्याधन के विषय में कहा गया है। कात्यायन का भी यही मत है कि विद्वान् भाई विद्या से प्राप्त धन को अविद्वान् को न दे परन्तु जो विद्या में सम या अधिक है उनको विद्याधन में भाग देना चाहिए।। 21।।

All relates to the gains of science; agreeing with a passage of Kātyāyana. They are shared with such as are equally or more learned.

This, however, relates only to the gains of science. So Kātyāyana declares: "No part of the wealth, which is gained by science, need be given by a learned man, to his unlearned co-heirs: but such property must be yielded by him, to those who are equal or superior in learning."

तन्त्रोच्चरितं विद्यापदमुभाभ्यां समाधिकपदाभ्यां सम्बध्यते, तेन समविद्याधिकविद्यानां दातव्यम्, न्यूनविद्या-विद्ययोः पुनरनधिकारः।। 22।।

एक बार प्रयुक्त हुआ विद्या पद सम विद्या और अधिक विद्या पद से संबन्धित है। इससे अपने समान विद्या वालों को और अधिक

विद्या वालों को भाग देना चाहिए। न्यून विद्या और अविद्वान् का पुन: अनधिकार है अर्थात् उन्हें भाग नहीं देना चाहिए।। 22।।

Exposition of the text.

The word learning, expressed in the text (and occuring there once only) is connected with both terms, "equal" and "wuperior". Therefore, it must be yielded to such as are equal or superior in learning : but those who are less learned, or who are unlearned, have no right to participate.

तदेवमादिवचनैर्विद्याशौर्यादिधनेष्वपि साधारणधनोपघातानुपघाताभ्यां विभागाविभागयोरवगमात् तस्यैव प्रयोजकत्वात्, तत्पदवत्येव श्रुतिः कल्पनीया उपघातार्जितं विभजेदिति, न पुनः शौर्यादिपदवत्यपि, अवश्यकल्पनीयसामान्यश्रुतिकल्पनयैवोपपत्तेः।। 23।।

इस प्रकार इन सब वचनों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि यदि विद्या और शौर्यादि धन संयुक्त सम्पत्ति की सहायता से प्राप्त किया जाता है तो उसका विभाजन होता है परन्तु यदि उसका अर्जन संयुक्त सम्पत्ति का व्यय किए बिना होता है तो उसका विभाजन नहीं होता है। इसलिए उतने ही पदवाली श्रुति की कल्पना करनी चाहिए जितने की आवश्यकता हो यथा उपघातार्जितं बिभेजेदिति न पुनः शौर्यादि पद वाली श्रुति की कल्पना करनी चाहिए। यथा - ''पितृद्रव्योपघातेन शौर्येण अर्जितं विभजेत्।'' ।।23।।

The essential condition is, that no use have been made of joint funds. A passage of Scripture, to that effect, may be supposed.

Since it appears from these and other texts, that partition does or does not take place, in the case of wealth acquired by science, valour, or the like, according as joint property is or is not employed; and since this alone is the reason; a revealed maxim, containing that term only, must be inferred in words such as these, 'divide that, which is acquired by use'; not one containing also that terms 'gained by valour' and so forth : for

the purpose is accomplished by the general maxim, which must necessarily be inferred.

होलाकाधिकरणन्यायस्यायमेव विषयः॥ 24।

होकाधिकरण न्याय का यही विषय है।। 24।।

This is confired by the Mīmāṁsā.

This is precisely the object of the reasoning taught (in the Mīmāṁsā) under the head of Holākā.

यद्वा न्यायप्राप्त एवायमर्थः, यद् येनार्जितम्, तत्तस्मिन् जीवति तस्यैव असति विशेषवचने। यत्र पुनः साधारण-धनमात्रेणैकस्य व्यापारः, अपरस्य धन-शरीराभ्याम् तत्रैकस्यैको भागः, अपरस्य भागद्वयं न्यायावगतमेव निबद्धम्॥ एतेन चैतदपि सिध्यति-यत् साधारणधनोपघाते सति यस्य यावतः अंशस्य स्वल्पस्य, महतो वोपघातः, तस्य तदनुसारेण भागकल्पना कार्या॥ 25॥

जीमूतवाहन ने न्याय द्वारा भी यही अर्थ निकाला है कि जो जितने धन का अर्जन करता है उस पर उसके जीवित रहते उसी का अधिकार होता है। यदि कोई एक व्यक्ति साधारण धन की सहायता से ही धनोपार्जन करता है और दूसरा अपने परिश्रम एवं निजी धन से धन अर्जित करता है तो पहले वाले को एक भाग तथा दूसरे को दो भाग प्राप्त होते हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि साधारण अर्थात् संयुक्त सम्पत्ति का जो जितना व्यय करता है उसी के अनुसार ही उस अर्जक को भाग मिलता है। यदि अल्पधन व्यय किया हो तो अधिक भाग और अधिक व्यय किया हो तो कम भाग मिलता है।। 25।।

Or the rule may be grounded on reason : and shares of the gain should be proportionate to shares of the stock.

Or the same meaning may be deduced from reasoning (wihtout the trouble of inferring the origin of the rule from a lost passage of Scripture). That, which is acquired by a person,

belongs exclusively to him, so long as he lives; if there be no special reule (to the contrary): but, where the exertion of one is merely through the joint property and the other contributes to the acquisition by his person and wealth, it is a rule suggested by reason, that the one shall have a single share and the other two. Hence likewise it follows, that, if the joint stock be used, shares should be assigned to each person in proportion to the amount of his allotment, be it little or much, which has been used.

किञ्च कात्यायनवचनम् -

'विभक्ताः पितृवित्ताच्चेदेकत्र प्रतिवासिनः।
विभजेयुः पुनर्द्व्यशं स लभेतोदयो यतः'॥ 26॥

कात्यायन ने इस प्रसंग में कहा है कि पिता की सम्पत्ति से अलग होकर (भाई) यदि इकठे रहने लगे तो पुनः विभाजन होता है और जिसने अर्जन किया है उसके दो भाग होते हैं॥ 26॥

Kātyāyana provides a rule concerning re-united perceners.

Moreover, the text of Kātyāyana (is similarly founded on reason). "When brethren separated in regard to the patrimony and subsequently living a new together, make a (second) partition, he, from whom an acquisition has proceeded, shall again take a double share."

इदं संसृष्टस्य साधारणधनोपघातेनार्जकस्य भागद्वयम्, इतरेषामेकैकः भाग इति श्रीकरेण व्याख्यातम्॥ 27॥

इसकी व्याख्या करते हुए श्रीकर का कथन है कि यह वचन संसृष्टियों में साधारण धन का उपघात करके द्रव्यार्जन करने वाले संसृष्टी को दो भाग दिए जाने का तथा शेष को एक-एक भाग दिए जाने का विधान करता है॥ 27॥

Śrīkara's exposition of the text.

This is expounded by Śrīkara as signifying, that 'a re-united parcener, who has made an acquisition with the use of the joint stock shall have two shares, and the rest one apiece'.

तेनानुपघातार्जितमर्जकस्यैव धनं संसृष्टत्वेऽपि न पुनस्तद्धनं साधारणमित्यभिप्रायो 'मुनेर्व्याख्यातुश्च लक्ष्यते, अनुपघातार्जिते भागविशेषानभिधनात्।। 28।।

इस प्रकार (साधारण द्रव्य के) अनुपघात से अर्जित किए गए द्रव्य में मुनि कात्यायन और व्याख्याकार श्रीकर ने भाग विशेष का उल्लेख नहीं किया है इसलिए (साधारण द्रव्य के) अनुपघात से अर्जित द्रव्य संसृष्ट सदस्यों में भी अर्जक का होता है, वह सब में विभाज्य नहीं होता है।। 28।।

Again made on separate funds, is several property.

Hence it appears to be the opinion both of the saint and of the commentator, that wealth, gained with no use of the common funds, appertains exclusively to the acquirer, even in the instance of a re-union of co-perceners; and that such wealth is not joint property : since no special allotment is directed in the case of a gain made without use of joint stock.

एवञ्चेत् संसृष्टवदविभक्तस्यापि तथात्वमेव युक्तम्, विभागप्रागभावे, तत्प्रध्वंसेऽपि, एकत्र प्रतिवासस्य हेतोरविशेषात् साधारणधनोपघातार्जितेऽर्जकस्य भागद्वयमिति ज्ञापनार्थत्वेन वचनस्याप्युपपत्तेः। न केवलं संसृष्टविषयत्वं युक्तम् होलाकाधिकरणस्यात्रैव जागरूकत्वात्।। 29।।

संसृष्टियों के समान संयुक्त परिवार के अविभक्त सदस्यों की भी यही स्थिति है। क्योंकि संसृष्टियों में विभाजन के बाद पुनः एकत्र प्रतिवास हो जाने के कारण कात्यायन और उनके व्याख्याकार श्रीकर ने साधारण द्रव्य के उपघात से अर्जित द्रव्य में अर्जक को दो भाग और शेष को एक-एक भाग का विधान किया है। उसी प्रकार अविभक्त सदस्यों में भी एकत्र प्रतिवास का लक्षण समान रूप से विद्यमान होने के कारण यही नियम स्वीकार किया जाना चाहिए। यहाँ पर होलाकाधिकरण जागरूक है।। 29।।

The same is proper before a first partition.

Such being their meaning, the same is equally proper for the unseparated co-parcener, as for the re-united one : because residence in the same abode (which implies junction of property) is equally pertinent as a reason, when separation has not yet taken place, as when it has been annulled. Since the text is likewise pertinent, as directing, that the acquirer shall have two shares of an acquisition made with the use of common property, it is not right to restrict it to the case of re-united parceners : for the reasoning, taught under the head of Holākā, opposes that restriction.

किञ्चोपघाताजितेऽर्जकस्य भागद्वयमिति तावन्निर्विवादम्।
'साधारणं समाश्रित्य यत्किञ्चिद्वाहनायुधम्,
शौर्यादिनाप्नोति धनं भ्रातररस्तत्र भागिनः।
तत्र भागद्वयं देयं शेषास्तु समभागिनः॥'
इत्यनेनोपघात एव भागद्वयस्य विधानात्, असाधारण-धनशरीरव्यापारार्जिते तु न भागद्वयं न्याय्यम्, किन्त्वधिकम्, ''सर्वमेव वा, किञ्चिदूनम् वा, तत्र किञ्चिदूनस्य मुनिभिः, निबन्धृभिश्चानुक्तत्वात्। साधारणधनव्यापारेण भ्रात्रन्तरस्य भागदर्शनात्, तद्भावे भागाभाव एव युक्तः॥ 30॥

और क्या उपघात से अर्जित द्रव्य में अर्जक को दो भाग मिलते हैं यह निर्विवाद है। व्यास का भी यही मत है कि यदि किसी वाहन, अश्व, रथादि की सहायता से शौर्यादि से कोई व्यक्ति धन प्राप्त करता है तो उसमें अन्य भाइयों का भी भाग होता है परन्तु अर्जक को द्वयंश की प्राप्ति होती है और शेष भाइयों में सम विभाजन होता है। इस प्रकार उपघात से अर्जन करने वाले को दो अंश का विधान बताया गया है, असाधारण धन और शरीर-व्यापार से अर्जन करने वाले को दो भाग न्यायोचित नहीं कहे गए अपितु अधिक मिलना चाहिए अथवा सम्पूर्ण द्रव्य या सम्पूर्ण में से कुछ कम हो सकता हैं कम का उल्लेख न तो स्मृतिकारों ने किया है और न निबन्धकारों ने। साधारण धन अथवा

साधारण शरीर व्यापार से अर्जन किए गए द्रव्य में दूसरे भाइयों का भाग होता है और उसके अभाव में अभाव युक्तिसंगत है अर्थात् साधारण धन अथवा साधारण शरीर व्यापार के अभाव में अन्य भाइयों का उस द्रव्यापर्जन में अधिकार नहीं है।। 30।।

An acquirer using joint stock has two shares. Not using it, he should have the whole.

Besides, it is an uncontested rule, that an acquirer, as such shall have two shares of wealth gained by the use of joint funds : for the allotment has been ordained by a text (of Vyāsa) above cited (see 14) in the single case of the use of common stock. It is not reasonable to assign two shares only in the instance of an acquisition made by personal exertion upon separate funds : but something more (than two shares) would be reasonable; either the whole, or something less (than the whole). Here, since something less (than the whole) has not been directed either by sages or by compilers; and since it appears, that the rest of the brethren participate (in one case) on account of the employment of their common stock; it is fit, that their participation should be null (in another case) where that does not exist.

द्विरर्जयितुरित्येतस्य च न्यायमूलत्वमेव युक्तम्, अन्यथा श्रुतिकल्पने अर्जकत्वानुप्रवेश, वा पृथग्वाधिकारी कल्पनीयः स्यात्।। 31।।

इस प्रकार से अर्जयिता की दो अंश की प्राप्ति न्यायोचित कही गई है। अन्यथा श्रुति के आधार की कल्पना करने पर या तो अलग से अधिकारी अर्थात् पिता की कल्पना करनी पड़ेगी अथवा अर्जक के लिए दो अंशों की प्राप्ति के अधिकार की निर्देश करने वाली श्रुति की कल्पना करनी पड़ेगी।। 31।।

The rule is founded on reason.

The rule, that the acquirer shall have twice as much as the rest, must be grounded on reasoning : otherwise, (it its

foundation in a passage of Scripture is to be assumed, and reasoning is not to be taken as its ground); it would be necessary either to insert in the maxim of revelation in question, the condition of a gain made (by the father who is declared entitled to two shares); or else to establish separately the title (of an acquirer to a double share).

तस्मादनुपधातार्जितमर्जकस्यैव, नेतरेषामिति सिद्धम्।। 32।।

इस प्रकार से अनुपघात से अर्जित किए गए द्रव्य में अर्जक का ही अधिकार है, दूसरों का नहीं, यही सिद्ध होता है।। 32।।

And the conclusion is true.

It is therefore true, that wealth gained without use of joint stock belongs to the acquirer alone, not to the rest of the co-parceners.

श्रीकरमतस्यानुवादः

किञ्चाविभक्तार्जितम्-सर्वे विभजेयुरिति न तावत् सामान्येन वचनं कल्पनीयम्, शौर्यादिधने पर्युदासदर्शनात्।

तथा मनुः -

'विद्याध्नन्तु यद् यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत्।
मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव माधुपर्किकमेव च'।।

(मनु 9-206)

तथा मनुविष्णू -

'अनुपध्नन् पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जयेत्।
स्वयमीहितलब्धन्तन्नाकामो दातुमर्हति'।। 33।।

(मनु 9-208। विष्णु 72-42)

श्रीकर मत का अनुवाद -

अविभक्त द्वारा अर्जित की गई सम्पत्ति को सब बांट ले - यह जो श्रीकर ने कहा है कि यहाँ केवल इतनी ही श्रुति की कल्पना करनी

चाहिए - यह वचन उनका ठीक नहीं है क्योंकि शौर्यादिधन या विद्याधन के वचन जो मनु आदि स्मृतिकारों ने कहे हैं वे गलत सिद्ध हो जायेंगे। यथा मनु का वचन है कि - विद्या से, मित्र से, विवाह में और मधुपर्क के समय पूज्यता के कारण जिसको जो धन प्राप्त हो, वह धन उसी का होता है। मनु विष्णू ने आगे कहा है कि - पिता के धन को नष्ट नहीं करता हुआ यदि कोई पुत्र अपने पुरुषार्थ (व्यापार आदि) से उपार्जित धन में से किसी के लिए कुछ नहीं देना चाहे तो वह (अपने पुरुषार्थ से उपार्जित धन में से) किसी को कुछ नहीं देवे।। 33।।

It is no general rule, that gains, made before partition, shall be shared. A passage of Manu cited. And of Manu and Viṣṇu.

Moreover, a general maxim (of Scripture) to this extent, "Let all share what is gained by an unseparated co-parcener', cannot be inferred. For an exception to wealth acquired by valour or the like (without use of the joint stock) does occur. Thus manu says, "Wealth, however, acquired by learning belongs exclusively to him who acquired it: and so does anything given by a friend, received on account of marriage, or presented as a mark of respect." So manu and Viṣṇu ordain, "What a brother has acquired by his labour, without using the patrimony, he need not give up without his assent; for it was gained by his own exertion."

अनुपघ्नन्निति विद्यादिधनेऽपि सम्बध्यते, सत्युपघाते विभागवचनदर्शनात्।। 34।।

'अनुपध्नन्' विद्यादि धन से भी संबन्धित है। उपघात होने पर अर्थात् संयुक्त परिवार की सम्पत्ति का व्यय करने पर विभाग होता है।। 34।।

Exposition of those texts.

Without using. This is connected likewise with wealth acquired by learning : for, in such instances also, a precept, ordaining partition if joint funds be used, does occur.

तथा याज्ञवल्क्यः -

'पितृद्रव्याविरोधेन यदन्यत् स्वयमर्जितम्।
मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव दायादानां न तद्भवेत्।।
क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेत्तु यः।
दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च'।।

(याज्ञ0 2-218-19)

तथा नारदः -

शौर्यभार्याधनं हित्वा यच्च विद्याधनं भवेत्।
त्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादो यश्च पैतृकः।।

(नारद 13-6)

तथा व्यासः -

'विद्याप्राप्तं शौर्यधनं यच्च सौदायिकं भवेत्।
विभागकाले तत्तस्य नान्वेष्टव्यं स्वरिक्थिभिः'।।35।।

याज्ञवल्क्य के मतानुसार -

पितृद्रव्य के अविरोध से अर्थात् उसका उपघात किए बिना ही अपने परिश्रम से जो सम्पत्ति अर्जित की जाती है, इसी प्रकार पितृ द्रव्य के अविरोध से मित्र से प्राप्त और विवाह में जो धन प्राप्त होता है उस का विभाजन दायादों में नहीं होता। वंश परम्परागत द्रव्य जो किसी ने अपहरण कर लिया था और दूसरा अपने परिश्रम से उसका उद्धार करता है उसका भी विभाजन नहीं होता। इसी प्रकार विद्या से प्राप्त सम्पत्ति का भी विभाजन नहीं होता है। नारद ने इस प्रसंग में कहा है कि -

शौर्य से प्राप्त धन, विवाह में प्राप्त धन, विद्याधन और प्रीतिपूर्वक प्राप्त धन का विभाजन नहीं होता है।

व्यास के मतानुसार -

विद्या से प्राप्त धन, शौर्य से प्राप्त धन और संबन्धियों से प्राप्त धन विभाजन के समय उसी का होता है जो अर्जित करता है, अन्य अधिकारी प्राप्त नहीं कर सकते।। 35।।

Passages of Yājñavalkya, Nārada and Vyāsa.

Thus Yājñavalkya says: "Whatever else is acquired by the co-percener himself, without detriment to the father's estate, as a present from a friend, or a gift at nuptials, does not appertain to the co-heirs. Nor shall he, who recovers hereditary property, which had been taken away, give it up to the co-perceners : nor what has been gained by science." So Nārada : "Excepting what is gained by valour, the wealth of a wife, and what is acquired by science, which are three sorts of property exempt from partition; and any favour conferred by a father." Likewise Vyāsa : "Wealth gained by science, or earned by valour or received from affectionate kindred, belongs, at the time of partition, to him (who acquired it), and shall not be claimed by the co-heirs."

सौदायिकम्-सुदायः सम्बन्धिभ्यो यल्लब्धम्।। 36।।

सौदायिकम् - सुदायः से बना है जिसका अर्थ है - संबन्धियों से प्राप्त धन।। 36।।

Interpretation of the text.

Received from affectionate, kindred. Obtained from kind relations.

'पितामहेन यद्दत्तं पित्रा वा प्रीतिपूर्वकम्।
तस्य तन्नापहर्तव्यं मात्रा दत्तञ्च यद्भवेत्'।।
'अनाश्रित्य पितृद्रव्यं स्वशक्त्याप्नोति यद्धनम्।
दायादेभ्यो न तद्दद्यात् विद्यालब्धञ्च यद्भवेत्'।।37।।

पितामह ने जो धन दिया है, अथवा पिता ने स्नेहवश जो सम्पत्ति दी है और माता द्वारा जो कुछ दिया जाता है उन सबका अपहरण नहीं करना चाहिए। पितृ द्रव्य का आश्रय लिए बिना ही अपनी शक्ति से जो धन प्राप्त किया जाता है वह दायादों को नहीं देना चाहिए और इसी प्रकार से विद्या से प्राप्त धन भी उसी का होता है जो अर्जित करता है।। 37।।

Another passage of Vyāsa.

"What is given by the paternal grandfather, or by the father as a token of affection, belongs to him (who receives it); neither that, nor what is given by a mother, shall be taken from him. What a man gains by his own ability, without relying on the patrimony, he shall not give up to the co-heirs, nor that which is acquired to learning."

तन्निरासः -

तदेवमादिवचनैर्यावद्वर्ण-वर्णान्तरालानाम्, सङ्कीर्णजातानाम्, सकलविद्यानिमित्तस्य, सौदायिकस्य, च स्वशक्तिमात्रार्जितस्य पर्युदासात्, सर्वमेव पर्युदस्तमिति, तदितराभावात् निर्विषयो स्वजनदत्तस्य च, तथा मित्र-विवाह-मधुपर्कप्राप्तस्य, शौर्येण च युद्धादिना प्राप्तस्य कृषि-सेवा-वाणिज्यादिना च श्रमेणोपार्जितस्य अनुपाघातेन च स्वशाक्तिमात्रार्जितस्य पर्युदासात् सर्वमेव पर्युदस्तमिति तदितराभावात् निर्विषयो विधिः। अथ यथाकथञ्चिदेको, द्विको वा, विषयो लभ्यते, तदा तदेव स्वपदेन निर्देष्टुमुचितं मुनीनाम्, अविभक्तार्जितममुकधनं विभजेदिति, लाघवात् स्वपदात् शीघ्रप्रतीतेश्च॥38॥

इस प्रकार इन स्मृतिकारों के वचनों से सभी वर्णों (अम्बष्ठ-करणादि) वर्णान्तरालों (रथकारादि) और संकीर्ण जातियों में सम्पूर्ण विद्याधन, सौदायिक, स्वजनदत्त, मित्र-विवाह और मधुपर्क से प्राप्त, शौर्य तथा युद्धादि से प्राप्त, कृषि-सेवा-वाणिज्यादि से उपार्जित, श्रम से उपार्जित, साधारण द्रव्य के अनुपघात से केवल अपनी शक्ति से अर्जित द्रव्य के विभाजन का निषेध कर देने के कारण प्रायः सभी कुछ का निषेध हो जाता है। ऐसी स्थिति में श्रीकर द्वारा प्रतिपादित विधि - 'अविभक्तार्जितं सर्वे विभजेयुः' निरर्थक हो जाता है। यदि जिस किसी भी प्रकार से एक या दो प्रकार का ऐसा धन मिल भी जाए तो उसे मुनियों के वचनानुसार स्वपद से कहना उचित होगा यथा -

'अविभक्तार्जितममुकधनं विभजेत्' इसमें लाघव भी है और द्रव्य विशेष का उसके नाम के द्वारा उल्लेख होने के कारण शीघ्र प्रतीति हो जाती है।। 38।।

The supposition of such a rule (see 31) is erroneous.

By this excepting, under these and other texts, in regard to all the tribes and all the classes of mixed or of mediate origin, wealth acquired, without use of the joint stock, by the acquirer's own ability; whether effected by means of any science; or received from affectionate kindred (being given by a relative); or obtained from a friend, or at nuptials, or with a token of respect, or gained by valour (that is, by combat or the like); or earned by labour (that is, by agriculture, service, merchandise etc.); every acquisition (made without use of joint funds) is excepted : therefore, since there can be none other, the (alleged) precept has no pertinence.

श्रीकरमते बाधकमभिधाय, स्वमते लाघवप्रदर्शनम्।

न तु शौर्यादिधनेतरतया, बहुतरपदप्रयोगापत्त्या गौरवात्, पर्युदासत्वे च, सर्वमुनिभिरेव सकलपर्युदसनीयपदानुकीर्तनं कर्तव्यं, तद्विना तदितरज्ञानानुपपत्तेः, मुनीनां पर्युदासवचनं बालप्रलपितमिव स्यात्, प्रदर्शनार्थत्वे तु अनास्थया केनचित् किञ्चित् कीर्तितम्, केनचिच्च किञ्चिदिति युक्तम् सर्वस्याकीर्तनम्।। 39।।

श्रीकर के मत में बाधा दिखलाकर अपने मत में लघुता का प्रदर्शन-शौर्यादि को छोड़कर अविभक्तों द्वारा अर्जित किए गए द्रव्य को सब मिलकर बाँटे - इस विधि में पदों की बहुलता होने से गौरव नहीं है। सब मुनियों के द्वारा इसके विपरीत पद को ही स्वीकार करना चाहिए। उसके बिना इतर ज्ञान-मैत्रधन-विवाहधनादि की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अपि च निषेध वचनों में सभी के द्वारा सभी प्रकार के द्रव्यों का उल्लेख नहीं किया गया है अपितु अनास्था के साथ किसी न किसी

का और किसी ने किसी का उल्लेख कर दिया है।। 39।।

For reasons here stated.

Or a case or two (of acquisition made without use of the common stock) may be, in some manner, assumed, to which the precept may relate. Still those cases should have been declared by express words : since it would have been easy for the sages to have said, 'divide certain property gained by an unseparated co-parcener' : and such property would be readily understood under its own name; better too than by using a long and circuitous expression, like this (wealth acquired before partition), other than the gains of valour (acquired without use of joint funds); for it is burdensome. And, if the present be intended as an exception, all the sages ought to specify every excepted term : for, without that, the meaning of "other than such" would be unexplained; and the restrictive words of the sages would consequently appear as idle as the prattle of children. But, if it be intended for illustration, then some one instance is negligently propounded by one another; and another by another writer; and the ommission of specifying the whole is right.

तस्मात् साधारणधनोपघातार्जितं धनं विभजेदिति विधिः, शौर्यादिपदञ्च वाक्येषु प्रदर्शनार्थम्।। 40।।

अतः 'साधारणधनोपघातार्जितं धनं विभजेत्' यही विधि है और शौर्यादि के विषय में कहे हुए वचनों को दृष्टान्त के रूप में मानना चाहिए।। 40।।

Property gained on the joint stock is divided.

Therefore the maxim is, 'divide wealth acquired with the use of the common stock' : and particular terms, as the gains of valour, are inserted in the texts as instances.

अतोऽविभक्तार्जितत्वमात्रेण धनस्य साधारणत्वाभि-धानमप्रामाणिकम्।। 41।।

इसलिए अविभक्तार्जितधन का अभिधान अप्रमाणिक सिद्ध हो जाता है।। 41।।

Not any property acquired before separation.

Hence the declaring of property common, merely because it was gained by an unseparated co-parcener, is not grounded on authority.

किञ्च -

**'क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेत्त् यः।
दायादेभ्यो न तद्दद्यात् विद्यया लब्धमेव च।।'**

2-119

अत्र याज्ञवल्क्यवचनेऽपि, पितृपितामहादिधनमपि केनचिदपहृतम् योऽभ्युद्धरेत् तस्यैव तत्, नान्येषामिति भवतोऽपि सम्मतं, तेन पूर्वसम्बन्धलेशे सत्यपि अविभक्तानामप्य-भ्युद्धारकत्वेन, तत्र सम्बन्धं निराकुर्वन्नपूर्वत्वेन स्वार्जिते सुदूरमेवान्येषां सम्बन्धं निरस्यति।। 42।।

और क्या याज्ञवल्क्य के वचन में (2/119) भी यही कहा गया है कि पिता-पितामहादि के धन को किसी ने अपहरण कर लिया है जो उसका उद्धार करता है उसी का वह धन होता है अन्य का नहीं। इस प्रकार पूर्व के साथ लेशमात्र संबन्ध होने पर भी अविभक्तों के उद्धारकत्व संबन्ध का निराकरण करते हुए अन्य व्यक्तियों के द्वारा स्वार्जित किए धन सम्बन्ध का दूर से निराकरण हो जाता है।। 42।।

A passage of Yājñavalkya explained.

Besides, the text of Yājñavalkya ("Nor shall he who recovers hereditary property, See 33), is acknowledged by you likewise, as signifying, that, if one recover the property of the father, grandfather, or other ancestor, which has been taken away by any person, it appertains to him alone, not to the rest. Thus, (the author) denying the right of unseparated co-heirs in

the property, because it has been recovered, although a trace of the former right exist, denies the remoter title of the rest to wealth originally gained by the man himself.

श्रीकरमतानुवाद:

यच्चोक्तं श्रीकरेण यदि पितृद्रव्यानुपघातार्जित-मर्जकस्यैव, तथा प्रतिग्रहोपात्तं धनं न कदाचित् भ्रात्रन्तरस्य भवेत्, नहि प्रतिग्रह: पितृद्रव्यविनाशेन सम्भवति, द्रव्यं हि दातुरानमनमुखेन प्रतिग्रहे उपयुज्यते एकहायन्यादिकमिव सोमक्रये, कर्तृशरीरधारणेन वा पयोव्रतादिकमिव ज्योतिष्टोमे। तत्र तावददृष्टार्थे दाने द्रव्यान्तरग्रहणेन न दातुरानतिरपेक्षितेति, न दात्रानत्या द्रव्यमुपयुज्यते, प्रतिग्रहस्य चाल्पकालीनत्वात्, न तत्कर्तुर्भोजनमपेक्षितं दीर्घकालीनज्योतिष्टोमेनेव स्वर्ग-कर्तुरिति।। 43।।

श्रीकरमत का अनुवाद

पूर्वोक्त में यह प्रतिपादित किया गया है कि पितृ द्रव्य का उपघात किए बिना अर्जित द्रव्य अर्जक का होता है, ऐसी स्थिति में श्रीकर का मत है कि प्रतिग्रह से प्राप्त धन में कभी भी दूसरे भाईयों का हिस्सा नहीं होगा क्योंकि प्रतिग्रह की प्राप्ति पितृद्रव्य के विनाश से कभी नहीं होती। प्रतिग्रह में दाता की आनति के लिए पितृद्रव्य का व्यय होता है। जिस प्रकार सोमक्रय में एक वर्ष के बछड़े का उपयोग किया जाता है अथवा ज्योतिष्टोम में शरीर धारण के लिए पयोव्रतादि का उपयोग किया जाता है। इस आशंका का निराकरण करते हुए जीमूतवाहन का कथन है कि दान में दाता अदृष्ट फल की प्राप्ति के निमित्त प्रवृत्त होता है अतएव उसे प्रतिग्रहीता के द्रव्य से आनति की अपेक्षा नहीं होती। प्रतिग्रह अल्पकालिक होता है अतएव दीर्घकालीन ज्योतिष्टोम याग में स्वर्ग की कामना करने वाले कर्ता अर्थात् यजमान की भोजनापेक्षा के साथ सादृश्य बतलाना उपयुक्त नहीं है।। 43।।

Śrīkara's opinion.

It has been said by Śrīkara, 'If wealth, acquired without using the partimony, belong exclusively to the acquirer, then affects, received in a present can never be shared with another brother, for the receipt of present cannot be attended with expenditure of paternal wealth. It is indeed alleged, that valuables are employed at the receipt of gifts, for gratification of the donor, as a heirer or the like in the purchase of sacrificial materials; or as milk for the support of life, during the sacrifice denominated Jyotiṣṭoma. Here the valuables are not employed for the gratification of the giver, since his gratification, by receipt of other effects, is not requisite for a donation, the intension of which is spiritual; and as the act of receiving is momentary, nourishment for the person, who accepts the present, is not requisite, as it is during the tedious celebration of Jyotiṣṭoma, for him who by that ceremony seeks celestial bliss.'

तन्निरास :।

तन्मन्दम्-दापकानत्यर्थमुपहारप्रदानादिना धनोपघातस्य लोके बहुलमुपलम्भात्, कलौ च प्रतिग्रहधनस्य सेवाधन-समानत्वात्। अतएव 'कलौ त्वनुगमान्विते' इति स्मरन्ति।। 44।।

श्रीकर के मत का खण्डन करते हुए जीमूतवाहन ने कहा है कि यह आपत्ति दुर्बल है क्योंकि लोक में भी बहुधा देखा जाता है कि देने वाले की आनति के लिए उपहार आदि का प्रदान होता है। कलियुग में प्रतिग्रह धन को सेवाधन के समान माना गया है।। 44।। अर्थात् जिस प्रकार सेवा के द्वारा स्वामी की आनति का सम्पादन करके वेतन के रूप में द्रव्य की प्राप्ति की जाती है उसी प्रकार कलियुग में उपहार आदि के द्वारा आनति का सम्पादन करके उसमें प्रतिग्रह की प्राप्ति की जाती है।। 44।।

Refuted.

That is futile : for instances often do occur, in the world, of expenditure of wealth, by giving presents to induce a donation; and in the present age, wealth received in gifts is similar to that which is earned by service. Accordingly it is said, "In the Kali" age, (gifts are made) to a follower.

यच्च चिरावस्थितेर्व्यभिचारात् न प्रतिग्रहकारणत्वमानतेः, अतः आनतिद्वारा न अतिग्रहार्थत्वं द्रव्यस्येत्युक्तम्। तन्मन्दतरम्। आनतिद्वारेण चिराश्रयणादीनां प्रतिग्रहकारणत्वात्पुरुषयाशयवैचत्र्येण कस्यचिद् धनदानेन कस्यचिच्चिराश्रयणादिना कस्यचित्तत्तद्गुणानुसन्धानमात्रेण 'आनतेरनियतोपायपरिणामत्वादि'ति।। 45।।

आनति के लिए चिरावस्थिति की आवश्यकता होती है और प्रतिग्रह में यह सम्भव नहीं है क्योंकि प्रतिग्रह अल्पकालिक होता है। अतः यह मत दुर्बल है क्योंकि आनति (पुरुष के चित्त का झुकाव) चिराश्रयण से प्रतिग्रह से, गुणानुसन्धान मात्र से और धन दान से होता है। इस प्रकार आनति के अनियत कारण कहे गए हैं।। 45।।

His reply answered.

And as for what is alleged (by the same author), that 'gratification is no cause of receipt of presents, having no such operation, since long attendance is the cause; and wealth, therefore, is not the occasion of such receipt through the medium of gratification; that is still more futile: for long attendance and the rest became causes of the receipt of presents, trhough the medium of gratification and according to the diversity of men's disposition (gratification), is seen to arise, in the mind of one, from pecuniary gifts; of another, from long attendance or the like, of some, from the mere evincing of particular qualities. If the effect be not produced, for want of an attendant circumstance, it must not be thence concluded to be no cause; since, as is observed accordingly, gratification is produced by

means which are not invariable.

यदप्युक्तम्-अथ तत्सन्निधिमन्तरेणप्रतिग्रहस्यासम्भवात् भोजनमन्तरेण च तदयोगात् तस्यां स्थितौ व्याप्रियमाणं धनं प्रणाल्या प्रतिग्रहं निष्पादयतीति, तदा ज्योतिष्टोमादिकर्मण: प्राचीनमपि भोजनं शरीरस्थितौ व्याप्रियमाणं प्राचीनशरीरस्थि-तिमन्तरेण ज्योतिष्टोमाद्यनिष्पत्ते:, प्रणाल्या ज्योतिष्टोमर्थमिति सर्वमेव भोजनं क्रत्वर्थं स्यात्, न पुरुषार्थम्, तथा च तत्साधनमपि द्रव्यं क्रत्वर्थं, तदर्जनोपायोऽपि क्रत्वर्थं स्यादिति पुरुषार्थत्वम् द्रव्यार्जनस्य, द्रव्यस्य भोजनस्य च हीयेत-इति।।46।।

अत: यह जो कहा गया है कि भोजन के बिना सन्निधि नहीं हो सकती और सन्निधि के बिना प्रतिग्रह असम्भव है। इस स्थिति में व्यय किए जाने वाली जो प्रणाली अर्थात् तरीका है उसी से प्रतिग्रह निष्पन्न होता है। तब ज्योतिष्टोम कर्म में पहले से खाया हुआ भोजन ही हमारे शरीर को स्थित किए हुए है। प्राचीन शरीर स्थिति के बिना ज्योतिष्टोम की निष्पत्ति नहीं हो सकती इसलिए ज्योतिष्टोमार्थ ही यह सब होने पर सारा भोजन क्रत्वर्थ हो जाएगा, पुरुषार्थत्व नहीं होगा। अर्जन करने के उपाय अर्थात् द्रव्य क्रत्वर्थ हो जाएगा और द्रव्यार्जन पुरुषार्थत्व है - यह अनुचित है।। 46।।

His further arguments.

It has been further urged (by the same author), "If (it be alleged), that wealth mediately accomplishes the receipt of presents, being employed during attendance; since receipt cannot take place without contiguity; nor can this be without nourishment : that is denied, for nourishment, used for the support of life, previous to the celebration of Jyotiṣṭoma or other religious ceremony, would mediately serve for that ceremony, since the Jyotiṣṭoma could not take place without previous support of life: all food would, therefore, be intended for religious ends, not for human purposes : and consequently wealth, which supplies it, would be designed for sacrificial

uses; and the means of acquiring it would also be meant for the same end; and thus the maxim, that the acquisition of wealth, wealth itself and food, are adapted to human purposes, would be contradicted.'

तन्मन्दतमम्-प्रणाल्या ज्योतिष्टोमोपकारकत्वेऽपि भोजनस्य साक्षात् तृप्त्यर्थत्वात्, पुरुषार्थस्यैव सतः क्रतूपकारकत्वात् तत्रैदमर्थ्ये प्रमाणाभावात्, उपकारकत्वस्य तादर्थ्यव्यभिचारात्। अतः कथं द्रव्यार्जनस्य, द्रव्यस्य भोजनस्य च क्रत्वर्थत्वमापद्यत इति।। 47।।

जीमूतवाहन के अनुसार यह मत अत्यन्त दुर्बल है। ज्योतिष्टोम उपकारक होता है यह जो प्रणाली है इसमें भोजन साक्षात् तृप्ति प्रदान करता है। अतएव वह पुरुषार्थ ही है, उसके परम्परा से क्रत्वर्थ होने में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अतएव द्रव्यार्जन अथवा भोजन पुरुषार्थ ही है न कि क्रत्वर्थ।। 47।।

Repelled.

That is most futile, for, although it mediately contribute to the celebration of the Jyotiṣṭoma, food obviously serves the immediate purpose of satisfying huner; and being designed for human uses, it contributes to religious ends; but there is no proof of it being intended for such ends; nor does its so contributing operate towards such a result. How then should it follow, that acquisition of wealth, wealth itself, and food, are adapted to religious purposes?

अतएवास्यापि पर्यनुयोगस्यानवकाशः- यदि द्रव्यस्य प्राचीनभोजनद्वारा प्रतिग्रहोपकारकत्वमिष्यते, तदा जन्मत आरभ्य भोजनं विना शरीरावस्थितेरभावात्, नार्जनं सम्भवतीति सर्व एव धनोपायः पितृद्रव्यविनाशेन स्यात्। अतोऽनुपघ्नन् पितृद्रव्यमि 'ति विशेषणं न स्यादिति। यतो विशेषणानर्थक्यादेव भक्षणाद्युपभोगोपयुक्तधनोपघातादन्यस्यैवोपघातादिरूपस्य

वचनार्थत्वात्।। 48।।

अतः पुनः कहने में कोई अवकाश नहीं मिलता अर्थात् श्रीकर के मत को मान लिया जाए तो शरीर की स्थिति के बिना द्रव्योपार्जन सम्भव नहीं है और भोजन के बिना शरीर की स्थिति संभव नहीं है और जन्म से ही भोजन के लिए अनिवार्य रूप से पितृद्रव्य का उपघात अपेक्षित है ऐसी स्थिति पितृद्रव्य के उपघात के बिना द्रव्यार्जन असम्भव है और 'अनुपघ्नन् पितृद्रव्यम्' यह विशेषण अनर्थ हो जाता। परन्तु इस विशेषण का प्रयोग सिद्ध करता है कि भोजन के निमित्त प्रयुक्त पितृद्रव्य के उपघात से भिन्न उपघात को सिद्ध करने के कारण शास्त्रकारों के वचनों की सार्थकता है।। 48।।

An objection obviated.

Hence, (because it was not intended for that purpose though it contribute to the result, or for the reason which will be stated) there is no room for the reproach, 'If wealth be acknowledged to contribute to the receipt of presents, by means of nourishment previous to such receipt, then, since no acquisition of wealth can be made without nourishment from the time of the receiver's birth, every mode of gain would be accompanied with deteriment to the patrimony; and the restriction, "without using the patrimony," (see 3) would therefore not be inserted.' For, lest the restriction become superfluous, the text is understood to signfy employment of wealth other than an expenditure of it adapted a nourishment and similar use.

किञ्च भक्षणाद्युपभोगार्थधनोपघातस्य गृहगतेनाप्यवश्यं कर्तव्यत्वात् न धनार्जनार्थत्वमुपघातस्य तादर्थ्यमेव च तत्प्रयोजकमिति नातिप्रसक्तिः।। 49।।

और क्या भक्षणादि के लिए धन का उपघात तो घर में रहकर भी किया जाता है। धन का अर्जन के लिए उपघात नहीं हैं उस द्रव्यार्जन के लिए (तादर्थ्यम्) यह प्रयोजन है ऐसी प्रसक्ति नहीं है।। 49।।

What is expended for neccessaries, is no cause of an acquisition.

Moreover, an expenditure of wealth for nourishment or other use, must necessarily be made even by a person remaining at home, and such expenditure is not designated for the acquisition of wealth : but its having been actually intended for that purpose is a requisite (to its) being the cause of the gain) : consequently the supposition does not go too far.

अतएवोक्तं विश्वरूपेण, पितृद्रव्यं दत्त्वा यदि नोपार्जितं धनम्, तदा तस्यैव असाधारणं वैवाहिकवदेवोक्तं, न तु भक्षणाद्युपभोगमात्रेण तस्य स्तन्यपानादितुल्यत्वादित्यन्तेन॥ 50॥

विश्वरूप ने कहा है कि - पितृद्रव्य के अनुपघात से अर्जित किया गया द्रव्य वैवाहिक धन के समान असाधारण होता है। इसी प्रकार भोजन के निमित्त व्यय किया गया द्रव्य माता के स्तनपान के समान है॥ 50॥

Viśvarūpa's opinion is consonant to this.

Accordingly (since its being actually intended for the purpose is positively required; its merely contributing to that end is not sufficient); Viṣvarūpa has said, 'When wealth is not acquired by giving (or using) paternal property, it is declared (by the sages) not to be common, any more than wealth received on account of marriage : it becomes not common, merely because property have been used for food or other necessaries; since that is similar to the sucking of the (mother's) breast.

अतएव पुत्रोपनयन-विवाहयोः सोत्सुकसव्ययपितृ-कृतबहुतरधनव्ययेऽपि न व्रतभिक्षादिलब्धस्य वैवाहिकस्य वा साधारण्यम्, धनप्रेप्सया धनव्ययस्याकृतत्वात्॥ 51॥

माता-पिता पुत्र के उपनयन तथा विवाह संस्कार पर बहुत अधिक धन व्यय करते हैं और उनको व्रत, भिक्षा तथा विवाह में

संबन्धियों से जो धन प्राप्त होता है वह उनका साधारण धन नहीं होता क्योंकि वहाँ धन प्राप्त करने की इच्छा से उसका व्यय नहीं किया जाता।। 51।।

So other expenditures without a view to gain.

Hence (because its being actually intended for that purpose is a requisite to its being the cause of the acquisition), though much wealth, belonging to the father, have been expended in festivity at the son's initiation, or at his wedding, what is obtained by him in alms during his austerities as a student, or received on account of his marriage, is not common; for that expenditure of wealth was not made with a view to gain.

तस्माद्धनोद्देशेनैव साधारणधनोपघातेनार्जितं साधारणम्, नान्यदिति सिद्धम्।। 52।।

अतएव धन प्राप्त करने के उद्देश्य से साधारण धन के सहयोग से अर्जित किया गया धन ही साधारण धन होता है।। 52।।

The purpose must have been gain, to reader the acquisition common.

It is, therefore, demonstrated, that wealth, acquired by means of joint stock used for the express purpose of gain, is common property; and no other is so.

जितेन्द्रियेणापि बहुप्रकारं विमृश्योक्तं तदस्य यावदुक्तप्रपञ्चस्य संक्षेपेणायमर्थः प्रत्येतव्यः-यत्किञ्चिद्धनमसाधारणोपायार्जितम्, तद-साधारणम्। विस्पष्टार्थन्तु-विद्याधनन्तु यद् यस्येत्यादिना (मनु 9-206) उदाहरण-प्रपञ्चेनोपन्यस्तम्, असाधारणत्वादेवाविभाज्यमेवंविधमेव धनं साधारणमपि साधारणहेतुसमुत्थमेवंविधमेव, तदपि सुखावबोधार्थं क्वचिदर्थसाधारण्येन, क्वचिच्च व्यापार-तथात्वेन, सम्बन्धसाधारण्येन च प्रदर्शितमित्यन्तेन।। 53।।

जितेन्द्रिय के द्वारा भी बहुत कुछ कहा है। उनके अनुसार उक्तप्रपञ्च का संक्षेप में यह अर्थ है कि - जो कुछ भी असाधारण उपायों से अर्जित किया जाता है वह असाधारण धन होता है। मनु ने भी यस्येत्यादि श्लोक के द्वारा जो प्रस्तुत किया है उसका भी अभिप्राय यही है कि 'साधारण उपाय से अर्जित किया गया धान साधारण है।' इस प्रकार असाधारण धन अविभाज्य और साधारण धन विभाज्य कहा है। अत: यहाँ पर यह बतलाया गया है कि कहीं अर्थ साधारण होता है तो कहीं श्रम साधारण होता है और कहीं सम्बन्ध साधारण होता है।। 53।।

The same results from Jitendriya arguments.

The same import may be deduced by abridging the substance of what has been expressed, after various disquisitions, by Jitendriya, who says, "Whatever is acquired on separate funds is several property. For the sake of perspicuity, (gains of science and other particular sorts) are specified by way of example, in these and other words, Wealth, however, acquired by learning belongs exclusively to him who acquired it." Such sorts of property are exempted from partition, because they are separate; but even these sorts of wealth become common, if there be a sufficient cause of a joint right. This also has, for the sake of ready comprehension, been in certain instances described (in the writings of sages) by the circumstance of joint stock used; in others, by that of united exertion made, in some, by that of common relation.'

बालकेनाप्युक्तम् 'न ह्येकेन भ्रात्रा विद्यादिना लब्धे' अपरेषामधिकारसम्भवः, प्रमाणाभावादित्यन्तेन, यश्चानुपघात-प्रतिग्रहार्जितधनस्य विभागः शिष्टानां दृश्यते, स भ्रातृस्नेहेन, पौरुषवृद्ध्या वा नानुपपन्नः।

यद्वा प्रतिग्रहधनस्य विद्याधनत्वात् विद्याधने च साधारणधनानुपघातार्जितेऽपि समविद्याधिकविद्यानां विभागस्य वाचनिकत्वात् तद्विभाग पश्यन्तः विद्याधनस्य विद्याविशेष-

कृतोऽयं विभाग इत्यजानन्तोऽविभक्तार्जितत्वेनायं विभाग इति भ्रान्ताः स्वयमपि तथैव व्यवहृतवन्तः, तन्मूलश्चापरापरव्यवहार इति न किञ्चिदनुचितम्।। 54।।

बालक ने भी कहा है कि - किसी एक भाई द्वारा प्राप्त किए विद्या धन (अपने परिश्रम से अथवा निजी धन से) पर अर्जक का ही अधिकार होता है। यदि यह कहा जाए कि पितृद्रव्य के अनुपघात से प्रतिग्रह से प्राप्त धन का विभाजन देखा जाता है तो इसका कारण शिष्ट लोगों में या भाइयों में पारस्परिक स्नेह होने से या पौरुषता से होता है।

अथवा इस प्रकार का विभाजन वे लोग करते हैं जो प्रतिग्रह धन को ही विद्याधन समझते हैं और जिस प्रकार विद्याधन के विषय में कहा गया है कि पितृद्रव्य के अनुपघात से अर्जित सम्पत्ति समविद्या या अधिक विद्या प्राप्त करते हैं। इसी नियम को प्रतिग्रह में लगाकर प्रतिग्रह से प्राप्त धन का भी उसी प्रकार विभाजन करते हैं। वे यह नहीं जानते कि विद्याधन में विद्या का विशेष विधान है परन्तु वे लोग 'अविभक्त द्वारा अर्जित सम्पत्ति विभाज्य होती है' ऐसी भ्रान्ति होते हुए स्वयं भी वैसा व्यवहार करने लगते हैं और इसी को मूल समझकर पारस्परिक व्यवहार करने लगते हैं।। 54।।

Bāloka indicates a like opinion.

It has been, likewise, said Bāloka, 'The rest cannot have a right to wealth gained by one brother through science, or similar means; (being acquired without use of joint funds and independently of the exertions of the rest) : since there is no argument for it.

The practice of dividing all presents accounted for.

The practice of dividing wealth gained by receipt of presents without expenditure of joint property, which is observed to prevail among virtuous people, is not unsuitable whether founded on the mutual affection of the brethren, or on a manly sentiment. Or (it may be thus accounted for): people,

observing the partition of wealth received in presents, (for presents are in general gains of science; and, as such, the participation of co-heirs equally or more learned is ordained by a passage of law, though the property have been acquired without use of joint funds); and not knowing, that this partition of the gains of learning is made under a special rule respecting science, but erroneously supposing the partition to take effect because the wealth was gained by an unseparated co-heir, have done so of their own accord. It is not, however, founded on uniform practice. There is consequently nothing incogruous.

यत् पुनर्मनुवचनम् -

'यत् किञ्चित् पितरि प्रेते धने ज्येष्ठोऽधिगच्छति।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालितः॥

(मनु0 9-204)

तस्यायमर्थः -

'पितेव पालयेत् पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातृन् यवीयसः।
पुत्रवच्चानुवर्तेरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः॥

(मनु0 9-108)

एतस्माद्वचनात् पितापुत्रवदवस्थानात् पित्रर्जित इवानुपघातार्जितेऽपि ज्येष्ठधने कनिष्ठानामधिकारः। एतावान् परं विशेषः-पित्रर्जितेऽविदुषामप्यधिकारः, ज्येष्ठार्जिते पुनर्विदुषामेव॥ 55॥

मनु ने कहा है कि - पिता के मरने के बाद यदि बड़ा भाई अपने पुरुषार्थ से धनोपार्जन करे तो उस धन से पढ़े लिखे छोटे भाईयों का भाग होता है। उसका यह अर्थ है कि -

ज्येष्ठ भाई छोटे भाइयों का पालन पिता के समान करे तथा छोटे भाई ज्येष्ठ भाई में धर्म के लिए पुत्र के समान व्यवहार करे। इस प्रकार उपर्युक्त दोनों श्लोकों के आधार पर जीमूतवाहन ने यह निष्कर्ष

निकाला है कि - जिस प्रकार पिता की अर्जित सम्पत्ति में कनिष्ठ भाइयों का अधिकार है उसी प्रकार ज्येष्ठ भाई द्वारा पितृद्रव्य के अनुपघात से अर्जित सम्पत्ति में कनिष्ठ भाइयों का अधिाकार हैं एक विशेष अन्तर यहाँ इतना है कि पिता द्वारा अर्जित सम्पत्ति में सब पुत्रों का अधिकार है परन्तु ज्येष्ठ द्वारा अर्जित धन में केवल विद्वान् भाई का ही अधिकार होता है।। 55।।

55. A text of Manu expounded.

But, as for the text of Manu, ("After the death of the father, if the eldest brother acquire any wealth, a share of that belongs to the younger brothers; provided they have duly cultivated science"), the meaning of it is this; und[illegible]her text, placing the eldest and younger brothers in th[illegible] f father and son, ("As a father should protect h[illegible] the first born cherish his younger brothers[illegible] behave to their elder brother, like childre[illegible] conformably with their duty respectivel[illegible] brothers have a title in the wealth of the eldest[illegible] without use of joint stock, as they have in[illegible] acquisitions. But there is this difference: that even the unlearned sons are entitled to their father's acquired property; but the learned brothers only have a right to participate in the wealth gained by the eldest.

एतच्च पितरि प्रेत इति, ज्येष्ठ इति, यवीयसामिति, विद्यानुपालित इति पदप्रयोगस्यानर्थक्यात् सिद्ध्यति।। 56।।

यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो पितरि प्रेत, ज्येष्ठ इति यवीयसाम्, विद्यानुपालित- इन पदों का प्रयोग अनर्थक हो जाएगा।। 56।।

56. Confirmation of that exposition.

This interpretation is right; for the terms of the text would else become unmeaning; expressing 'after the death of the father' 'if the eldest brother', 'provided they have duly cultivated science.

तस्मादविभक्तार्जितत्वमात्रेणाविभक्तभ्रात्रन्तरस्य भवतीत्यसङ्गतं वचनम्।। 57।।

इस प्रकार अविभक्त भाइयों द्वारा अर्जन करने मात्र से ही अन्य अविभक्त भाइयों का अधिकार होता है - यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।। 57।।

The way anything earned by unseparated brothers gives right to the earnings to others unseparated brothers, this does not seem to be logical.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे षष्ठाध्यायस्य प्रथमः परिच्छेदस्समाप्तः।

षष्ठोऽध्यायः

द्वितीयपरिच्छेदः

तत्र विद्याधनं तावदभिधीयते।

तत्र कात्यायनः -

'उपन्यस्ते तु यल्लब्धं विद्यया पणपूर्वकम्।
विद्याधनन्तु तद्विद्यात् विभागे न नियोजयेत्।।
शिष्यादार्त्विज्यतः प्रश्नात् सन्दिग्धप्रश्ननिर्णयात्।
स्वज्ञानशंसनात् वादात् लब्धं प्राध्ययनाच्च यत्।।
विद्याधनन्तु तत् प्राहुर्विभागे न नियुज्यते।
शिल्पेष्वपि हि धर्मोऽयं मूल्याद् यच्चाधिकं भवेत्।।
परं निरस्य यल्लब्धं विद्यया द्यूतपूर्वकम्।
विद्याधनन्तु तद्विद्यान्न विभाज्यं बृहस्पतिः'।। 1।।

अब विद्याधन का उल्लेख किया जाता है। इस प्रसंग में

कात्यायन ने कहा है-

जो किसी विषय का समाधान करने के लिए शर्त लगाकर विद्या से प्राप्त होता है वही विद्याधन है इसका विभाजन नहीं होता है। जो धन शिष्यों से प्राप्त होता है, किसी यज्ञ में पुरोहिती करने से प्राप्त होता है, संदिग्धा प्रश्नों के निर्णय करने से प्राप्त, अपने ज्ञान को प्रकाशित करने से प्राप्त और अध्यापन से जो प्राप्त होता है वह सब विद्याधन है। विभाजन के समय बांटा नहीं जाता है। यही बात शिल्पियों के विषय में भी है। जो कुछ उन्हें मूल्य के उपरान्त पुरस्कार के रूप में प्राप्त होता है, जुआ के माध्यम से दूसरों को परास्त कर जो प्राप्त होता है वह विद्याधन कहलाता है, उसका विभाजन नहीं होता है - ऐसा बृहस्पति ने कहा है।। 1।।

Gains of science described by Kātyāyan.

On this (occasion, or among topics hinted), the gains cience are explained. Upon that subject Kātyāyan says, at is gained by the solution (of a difficulty), after a prize ɔeen offered, must be considered as acquired through ce, and is not included in partition (among co-heirs). What ɔeen obtained from a pupil, or by officiating as a priest, or (answering) a question, or for determining a doubtful point, through display of knowledge, or by (success in) disputation, or for superior (skill in) reading, the sages have declared to be the gains of science and not subject to distribution. The same rule likewise prevails in the arts; for the excess above the price (of the common goods), and that which is gained through skill by winning from another a stake at play, must be considered as acquired by science and not liable to partition. So Bṛhaspati has ordained."

यदि भवान् भद्रकमुपन्यस्यति, तदा भवते मया एतावद्देयमिति परिणतम्, तत्रोपन्यासं निस्तीर्य लभते, तन्न विभाज्यम्।। 2।।

यदि आप मेरी इस समस्या का समाधान कर देंगे तो मैं आपको इसके बदले में इतना धन दूंगा - इस प्रकार की शर्त होने पर दिया जाने वाले धन का विभाजन नहीं होता।। 2।।

First sor. A prize for the solution of a difficulty.

'If you solve this well, I will give you so much money;' after such an offer, if one solve the difficulty and obtain the prize, it is not subject to distribution.

शिष्यात्-अध्यापितात्।। 3।।

शिष्यात् - अर्थात् अध्यापन से प्राप्त धन।। 3।।

Second sort. Fee for instructing a pupil.

from a pupil. From a person instructed by the acquirer.

आर्त्विज्यतः-यजमानात् दक्षिणादिना लब्धम्।। 4।।

आर्त्विज्यतः - यजमान से प्राप्त दक्षिणा।। 4।।

Third sor. Fee for officiating at religious rites.

By officiating as a priest. Received as a fee or gratuity from a person employing him to officiate at a sacrifice.

दक्षिणा च न प्रतिग्रहः, वेतनरूपत्वात् तस्याः।। 5।।

दक्षिणा से अभिप्राय प्रतिग्रह में प्राप्त धन से नहीं है अपितु दक्षिणा भी वेतन के रूप में प्राप्त होती है।। 5।।

These are dues, not gratuities.

These are fees, not presents; for they are similar to wages or hire.

तथा यत् किञ्चित् विद्यायाम् प्रश्ने निस्तीर्णे अपणितमपि यदि कश्चित् परितोषात् ददाति।। 6।।

शर्त न होने पर भी किसी प्रश्न के निर्णय से प्रसन्नता से दी गई सम्पत्ति।। 6।।

Fourth sort. A reward for solving a question.

So, a question relative to science being resolved, if any

one, through satisfaction, give any thing which had not been previously offered.

तथा यो ह्यस्मिन् शास्त्रार्थे मम संशयमपनयति तस्मै सुवर्णमिदं ददानीत्युपस्थितस्य संशयमपनीय यल्लब्धम् वादिनोर्वा सन्देहे न्यायकरणार्थमागतयोः सम्यङ्निरूपणेन यल्लब्धं षष्ठांशादिकम्॥ 7॥

शास्त्र के अर्थ में 'जो मेरे संशय को दूर करेगा उसको इतना सुवर्ण दूंगा' इस प्रकार के संशय को दूर करने से प्राप्त हुआ धन अथवा वादी प्रतिवादी के सन्देह में न्याय करने से षष्ठांशादि के रूप में प्राप्त धन॥ 7॥

Fifth sort. A reward for clearing a doubtful point or for deciding a litigated question.

Also what is obtained by cleaning the doubts of one by whom an offer has been thus made : "To him, who removes my doubts on the meaning of this passage, I will give this gold." Or (it may signify a fee, such as) the sixth part or the like, received for a correct decision between two litigant parties, who apply for the determination of a dubious and contested point.

तथा शास्त्रादिषु स्वप्रकृष्टज्ञानं विभाज्य यत् प्रतिग्रहादिना लब्धम्॥ 8॥

अपने विशेष शास्त्रीय ज्ञान से प्राप्त हुई दक्षिणा॥ 8॥

Sixth sort. A reward for display a science.

Likewise, what is received in a present or the like for displaying his knowledge in the sacred ordinances and so fourth.

तथा द्वयोः शास्त्रविज्ञानविवादे अन्यत्रपि यत्र कुत्र चिदन्योन्यज्ञानविवादे निर्जित्य यल्लब्धम्॥ 9॥

शास्त्र और विज्ञान दोनों के विवाद में जीता हुआ धन॥ 9॥

Seventh sort. A prize gained or stake won in a disputation.

So, in a contest between two persons respecting their knowledge of sacred ordinances, or in any other controversy whatsoever concerning their respective attainments, what is gained by surpassing the opponent.

तथैकस्मिन् देये बहूनामुपप्लवे, येन प्रकृष्टमधीत्य यल्लब्धम्॥ 10॥

किसी भी प्रतियोगिता में अनेक प्रतिद्वन्द्वियों के होने पर अपने प्रकृष्ट अध्ययन से प्राप्त हुआ धन॥ 10॥

Eighth sort. A prize for reading.

Likewise, where a single article is to be given, and there are many competitors, what is received for reading in a superior manner.

तथा शिल्पादिविद्यया चित्रकरसुवर्णकारादिभिर्लब्धम्॥ 11॥

शिल्पविद्या से, चित्र कला से और अलंकार बनाने की विद्या से प्राप्त धन॥ 11॥

Ninth sort. The gain of a skillful artist.

Also, what is gained by painters, goldsmiths, and other artists, through skill in the arts and so forth.

द्यूतेनापि परं निर्जित्य यल्लब्धम्; तत् सर्वमविभाज्य-मितरैः॥ 12॥

द्यूत में दूसरे से जीतकर प्राप्त हुआ धन॥ 12॥

Tenth sort. A stake won by skill in play.

in like manner, what is won by beating another at play.

तदयमर्थो तु कस्यचिद्विद्यया यल्लब्धमर्जकस्यैव तत्-नेतेराष् प्रदर्शनार्थं तु कात्यायनेन विस्तरेणोक्तं श्रीकरादिभ्रमनिरासार्थम्॥ 13॥

इस प्रकार निष्कर्ष यह है कि जिस किसी भी विद्या से प्राप्त धन पर अर्जक का ही अधिकार है, दूसरों का नहीं। यह सब प्रदर्शन के लिए कात्यायन ने विस्तार से वर्णन किया है और श्रीकरादि के भ्रम को दूर किया है।। 13।।

They are, in general, exempt from partition.

All this is exempt from being shared with the rest of the co-parceners. The meaning is as follows: Whatever is acquired by any (skill or) science belongs to the acquierr, not to the rest. For illustration only, it has been stated at large by Kātyāyana, to obviate the error of Śrīkara and others.

अतः स्वज्ञानख्यापनादिना यत् प्रतिग्रहलब्धम्, तदपि विद्याधनमेव विद्ययैव विदुषे प्रतिग्रहदानात्।। 14।।

अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रतिग्रह में प्राप्त धन भी विद्याधन है क्योंकि विद्वान् व्यक्ति को विद्वता के लिए प्रतिग्रह दिया जाता है।। 14।।

So is any present to a learned man.

Hence (since it is enumerated by Kātyāyana among the gains of science); what is obtained in a present by displaying and making known his own knowledge, is also an acquisition made by science : for a present is given to a learned man on account of his learning.

तथा यमः -

विद्याशीलो धर्मयुक्तः प्रशान्तः क्षान्तो दान्तः सत्यवादी कृतज्ञः।
वृत्तिग्लानो गोहितो गोशरण्यो दाता यज्वा ब्राह्मणः पात्रमाहुः।।
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
नैषां प्रतिग्रहो देयो न शिला तारयेच्छिलाम्।। 15।।

सुयोग्यपात्र की परिभाषा के प्रसंग में यम ने कहा है कि विद्वान्, धार्मिक कृत्य करने वाले, प्रशान्त, क्षमावान्, संयमी, सत्यवादी,

कृतज्ञ, वृत्ति के विषय में जिसकी ग्लानि है, गोरक्षक, गो को शरण देने वाला, दाता और यज्ञ करने वाला ब्राह्मण सुपात्र कहा गया है। अपि च – जो व्रत एवं मन्त्रों का जाप नहीं करता। केवल अपनी जाति से जीविका ग्रहण करता है वह प्रतिग्रह प्राप्त करने योग्य नहीं है। जिस प्रकार शिला से शिला नहीं तैर सकती उसी प्रकार अब्राह्मण को दान देकर धर्मभागी नहीं बन सकते।। 15।।

Yama describes a person worthy of gifts.

So Yama : "A man endowed with science, regular in (the performance of his) duties, contented, patient, with subdued passions, of strict veracity, grateful, disinterested, kind to cows, careful of them, generous, a performer of sacrifices and a priest, the sages pronounce to be a worthy object. But a present should not be conferred on such as neglect rigid observances, or are ignorant of holy texts, or merely live by their class: for a stone transports not a stone (over the stream)."

विद्वत्तयैव पात्रत्वात्, अविदुषाञ्च्चापात्रत्वात्।। 16।।

विद्वान् ही दान ग्रहण कर सकता है, अविद्वान् नहीं अर्थात् वह अयोग्य है।। 16।।

The present is given on account of learning.

For, it is in right of his learning, that he is a fit object of gifts; and unlearned men are unworthy objects.

अतो यत्केनचिदुक्तम् विद्याधनन्तु विद्याध्यापन-निमित्तं यत्, तदुच्यते इति, उक्त-वचनादर्शनेनेति हेयमेव। विद्याशब्दस्य विदज्ञान इत्यस्माद्धातोर्निष्पत्तेः ज्ञानपवचनात्।। 17।।

अतः यह जो किसी के द्वारा कहा गया है कि विद्या के पढ़ाने से प्राप्त धन ही विद्याधन है – यह वचन उक्त वचनों अर्थात् कात्यायन के श्लोकों से अनभिज्ञ होने के कारण हेय मत प्रस्तुत करता है क्योंकि विद्या शिब्द 'विद्' धातु से ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होता है।। 17।।

A different constrction refuted.

Hence, what has been alleged by some one, that the gains of science signify such gifts (only) as are received on account of teaching; must be rejected as having been said for want of seeing the text above cited: and because the word science (vidyā) being derived from the root vid to know, signifies any knowledge (or skill).

यच्च प्रतिग्रहधनस्यापि विद्याधनत्वेन याजनाध्यापन-प्रतिग्रहाणां सङ्कीर्णत्वमापादितं श्रीकरेण। तदतिमन्दम्, विद्याधनत्वसामान्यस्य याजनाध्यापनप्रतिग्रहादिनानाव्यक्ति-सम्बन्धेऽपि व्यक्तीनामसङ्कीर्णत्वात्, तदापि याजनाध्यापनस्या-प्रतिग्रहत्वात् गोत्वसमवायेऽपि नीलकपिलाकापोति-कादिव्यक्तीनामसङ्कीर्णस्याविवादात्॥ 18॥

श्रीकर ने अपना मत प्रतिपादित करते हुए कहा है कि यदि प्रतिग्रह धन को विद्याधन स्वीकार किया जाएगा तो याजन-अध्यापन और प्रतिग्रह में साङ्कर्य हो जाएगा। अर्थात् तीनों ही विद्या से प्राप्त धन हो जाएगें। यह मत अनुचित है। जीमूतवाहन के अनुसार 'विद्याधन' एक सामान्य नियम है। याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह ये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से सम्बन्ध रखते हैं, परस्पर साङ्कर्य उत्पन्न नहीं करते। जिस प्रकार गोत्व एक जाति है और नीलकपिला-कापोति आदि उसकी वैयक्तिकता को प्रकट करते हैं उसी प्रकार विद्याधन भी एक जाति है और याजन अध्यापनादि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का बोध करते हैं॥ 18॥

Śrīkara's objection repelled.

As for what is objected by Śrīkara, that by pronouncing wealth received in presents to be earning of science, receipt of presents, instruction of pupils, and assistance in sacrifice are confounded : that is very futile; since, although presents and the rewards of teaching and assisting in sacrifices and other particular sorts, he connected as being equally gains of science; yet the several sorts are not confounded : for still the rewards of teaching and of sacrificing are not presents; and it is an

uncontested truth, that a black bull, a red or a pied one or other individuals, though equally bulls, are not comfounded.

अतएव शिष्यादार्त्विज्यतः प्राप्तयोर्विद्याधनत्वं स्मरन् मुनिर्याजनाध्यापनयोः सङ्करात् कथं न बिभेति। अतः पक्ष ग्रहणमात्रेण तदभिधानमिति हेयम्॥ 19॥

अतएव अध्यापन से प्राप्त धन और यजमान से मिली दक्षिणा- इनको विद्याधन मानते हुए मुनि (श्रीकर) याजन और अध्यापन के साङ्कर्य से कैसे नहीं डरते। अतः इस पक्ष को ग्रहण करने का अभिधान हेय अर्थात् निम्न है॥ 19॥ दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो याजन है, वह अध्यापन नहीं है, इसी प्रकार जो अध्यापन है वह प्रतिग्रह नहीं है।

His argument refuted.

Accordingly, (as they are not confounded, or because things generically similar are specifically different, therefore), since (it may be asked) 'how does the sage, by pronouncing what is received from a pupil or for officiating as a priest to be the earning of science, fail in discriminating the rewards of teaching and of sacrificing?' the allegation (of their being confounded), merely by way of offering an objection, must be rejected.

शौर्यादिधनमाह कात्यायनः -

'आरुह्य संशयं यत्र प्रसन्नं कर्म कुर्वते।
तस्मिन् कर्मणि तुष्टेन प्रसादः स्वामिना कृतः॥
तत्र लब्धन्तु यत् किञ्चिद्धनं शौर्येण तद्भवेत्।
ध्वजाहृतं भवेद् यत्तु विभाज्यं नैव तत् स्मृतम्॥
संग्रामादाहृतं यत्तु विजित्य द्विषतां बलम्।
स्वाम्यर्थं जीवितं त्यक्त्वा तद्ध्वजाहृतमुच्यते॥ 20॥

शौर्यादि धन के प्रसंग में कात्यायन ने कहा है कि - संशय में पड़ने पर जहाँ प्रसन्नता से अर्थात् साहस से काम किया जाता है और उसका स्वामी उसके कार्य से प्रसन्न हो जाता है। इस प्रसन्नता तथा शौर्य

से प्राप्त धन उसी का होता है। ध्वजाहृत धन का भी विभाजन नहीं होता है अर्थात् स्वामी के निमित्त प्राणों का त्याग करके युद्ध में शत्रुओं के बल पर विजय प्राप्त करके जो लाता है उसे ध्वजाहृत कहते हैं।। 20।।

Gains of valour described by Kātyāyana.

Kātyāyana propounds the gains of valour, "When (a soldier) performs a gallant action, despising danger; and favour is shown to him by his lord pleased with that action; whatever property is then received by him, shall be considered as gained by valour. That and what is taken under a standard, are declared not to be subject to distribution. What is seized (by a soldier) in war, after risking his life for his lord and routing the forces of the enemy, is named spoil taken under a standard."

वैवाहिकन्तु तद्विद्याद्भार्यया यत् सहागतम्।। 21।।

वैवाहिक वह धन है जो पत्नी के साथ आता है 21।।

Nuptial presents explained by the same author.

"But wealth received on account of marriage is considered to be that which has been accepted with a wife."

भार्याप्राप्तिकाले लब्धमित्यर्थः।। 22।

भार्या को जो प्राप्त होता है वह अर्थ है।। 22।।

Exposition of the text.

The meaning is, received at the time of accepting a bride.

तथाऽपरमप्यविभाज्यमाहतुर्मनुविष्णू-

वस्त्रं पत्रमलङ्कारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः।
योगक्षेमप्रचारञ्च न विभाज्यं प्रचक्षते।। 23।।

(मनु. 9-219)

मनु और विष्णु ने अविभाज्य धन के अन्तर्गत कहा है कि वस्त्र, पत्र, अलंकार, पक्वान्न, स्त्रियाँ, योक्षेम और प्रचार अविभाज्य हैं।। 23।।

Other sorts, not liable to partiction, enumerated by Manu

and Viṣṇu.

So Manu and Viṣṇu state other sorts of property exempt from partition. "Clothes, vehicles, ornaments, prepared food, water, women and furniture for repose or for meals, are declared not liable to distribution."

वस्त्रमङ्गयोजितम् पंक्तिपरिच्छदार्हञ्च, पत्रम्-वाहनमश्वादि। अलङ्कारम् अङ्गुलीयकादिकम्। कृतान्नम्-लड्डुकादि। उदकं-कूपवापीगतं प्रचारोप-युक्तम्। स्त्रियः - दासीव्यतिरिक्ताः। योगक्षेमप्रचारम्-शय्यासनभोजना-चमनाद्युपयुक्तभाजनादीनि॥ 24॥

वस्त्र का अर्थ है - अंगों को अलंकृत करने वाले वस्त्र तथा पंक्ति में पहनने वाले वस्त्र बताया है। पत्रम् से अभिप्राय अश्वादि वाहन से है। अलंकार से अभिप्राय अंगूठी आदि है। कृतान्नम् का अर्थ लड्डु आदि है। उदकं से अभिप्राय कूंआ, बावड़ी आदि के जल - जो प्रयोग में लाये जाते हैं। स्त्रियः से अभिप्राय दासी से अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से है। योगक्षेमप्रचारम् का अर्थ शय्यासन, भोजन तथा आचमनादि के प्रयोग में लाए जाने वाले पात्र है॥ 24॥

Explanation of the passage.

Clothes, Personal apparel and raiment intended to be worn at assemblies.

Vehicles - Carriages or horses and the like.

Ornaments - Rings and so forth.

Prepared food - Sweet meats.

Women - Other than female slaves.

Furniture for repose or for meals. Beds, and vessels used for eating and sipping (or drinking) and similar purposes.

तथा व्यासः :-

अविभाज्यं सगोत्रणामासहस्त्रकुलादपि।
याज्यं क्षेत्रञ्च पत्रञ्च कृतान्नमुदकं स्त्रियः॥ 25॥

इसी प्रकार से व्यास के मतानुसार याज्य, क्षेत्र, पत्र, पक्वान्न,

जल एवं स्त्रियाँ सहस्त्रों पीढ़ियों तक सगोत्रों में अविभाज्य हैं।। 25।।

Vyāsa enumerates exempted articles.

So Vyāsa : "A place of sacrifice a field, a vehicle, dressed food, water and women, are not divisible among kinsmen, though (transmitted) for a thousand generations."

याज्यम् - यागस्थानम्, देवता वा, न तु याजनलब्धं धनम्, तस्य विद्याधनत्वेनैव गतार्थत्वात्।। 26।।

याज्यम् से अभिप्राय - याजन से प्राप्त धन से नहीं है अपितु यज्ञस्थान अथवा देवता है।। 26।।

Interpretation of the text.

A place of sacrifice. The spot, where sacrifices are performed; or else an idol : not wealth obtained by sacrificing; for that has been noticed as being the earning of science.

तथा कात्यायनः -

गोप्रचारश्च रथ्या च वस्त्रं यच्चाङ्गयोजितम्।
प्रायोज्यं न विभाज्यन्तु शिल्पार्थं तु बृहस्पतिः।।27।।

कात्यायन ने बृहस्पति के मत का समर्थन करते हुए गोप्रचार, रथ का रास्ता, वस्त्र तथा शरीर पर धारण करने वाले अलंकार, प्रयोजनीय वस्तु तथा शिल्प की वस्तुओं को अविभाज्य कहा है।। 27।।

Kātyāyana specifies other exempted articles.

Thus Kātyāyana : "The path for cows, the carriage road, clothes and anything which is worn on the body, should not be divided; nor what is requisite for use, or intended for arts : so Bṛhaspati declares."

प्रायोज्यं-यद् यस्य प्रयोजनार्हम् यथा श्रुतादौ पुस्तकादि, तत् मूर्खेर्न विभजनीयम्, शिल्पोपयुक्तञ्च शिल्पिनामेव, नातद्विदाम्।। 28।।

प्रायोज्यं से अभिप्राय - जो जिसके प्रयोजन की वस्तु हो उसी को देनी चाहिए मूर्ख को नहीं, शिल्पोपयोगी वस्तुएँ शिल्पियों को ही देनी

चाहिए उससे भिन्न को नहीं।। 28।।

Meaning of the passage.

Requisite for use. What is fit for each person's use; as books and the like in the study of the Vedas. That shall not be shared by ignorant brethren. So what is adapted to the arts, belongs to artists; not to persons ignorant of the particular art.

तथा शङ्खलिखितौ - 'न वास्तुविभागो नोदकपात्रलङ्कारानुपयुक्तस्त्रीवाससामपां प्रचाररथ्यानां विभागश्चेति प्रजापतिः।। 29।।

शंखलिखित का भी यही मत है। उन्होंने प्रजापति के मतानुसार बताया है कि भवन, जलपात्रों, अलङ्कार, प्रतिदिन दिन के उपयोग में आने वाले स्त्री वस्त्र शय्यासन, रथ का रास्ता का विभाग नहीं होता है।। 29।।

Śaṅkha and Likhita exempt certain articles.

Also Śaṅkha and Likhita : "No division of a dwelling takes place; nor of water-pots, ornaments and things not of general use, nor of women, clothes and channels for draining water. Prajāpati has so ordained."

पितरि जीवति यस्मिन् वास्तौ येन गृहोद्यानादिकं कृतं, तत्तस्याविभाज्यं, पितुरप्रतिषेधेनानुमतत्वात्।। 30।।

पिता के जीवित रहते जिस भूमि पर जिसने घर-उद्यानादि बनवाया है वह उसी का है, उसका विभाजन नहीं होता है।। 30।।

Explanation of the text.

A house, garden, or the like, which one of the co-heirs had constructed within the site of the dwelling place, during the father's life-time, remains his indivisible property : for his father has assented by not forbidding the construction of it.

तथा पैतामहमपि द्रव्यं यच्चिरं नष्टम्, अक्षमत्वात्। अथवा प्रतीकारपराङ्मुखतया इतरैरप्रतिकृतं पित्रा स्वधनव्ययशरीरायासाभ्याम् प्रतिकृतं, तत् पितुरेव, न साधारणम्।। 31।।

तथा पितामह का द्रव्य असामर्थ्य के कारण चिरकाल से नष्ट हुआ था अथवा उसका उद्धार करने के लिए वह पराङ्मुख था। दूसरों के द्वारा उसका प्रतिकार अर्थात् उद्धार नहीं हुआ था यदि पिता अपने धन अथवा शारीरिक परिश्रम से प्राप्त करता है तो वह धन पिता का ही है, साधारण नहीं है। उसे अविभाज्य कहा जाता है।। 31।।

Hereditary property recovered is in certain cases exempt.

So, even property inherited from the paternal grandfather which has long been lost and is not recovered by the rest through inability, or through aversion from (the efforts requisite for its) recovery, belongs exclusively to the father, if recovered by him on his own funds and by his own labour; and is not common property.

तथा मनुः -

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात्।
न तत् पुत्रैर्भजेत् सार्द्धमकामः स्वयमर्जितम्।। 32।।

(मनु0 9-209)

मनु का भी यही मत है कि - पिता अपने असामर्थ्य के कारण उपेक्षित जिस पैतृक धन को नहीं पा सका, उस पैतामहिक धन को यदि पुत्र अपने पुरुषार्थ से प्राप्त कर ले और उसमें से दूसरे भाइयों को भाग नहीं देना चाहे तो न देवे।। 32।।

As declared by Manu. Such property belongs to the person recovering it.

Thus Manu ordains : "If a father recover the property of his father, which remained unrecovered, he shall not, against his will, share it with the sons, since, in fact, it was acquired by himself."

पैतृकं द्रव्यं पुत्रैरनवाप्तमप्रतिकृतम्। अनवाप्यमिति अनवाप्येति पाठावनाकरौ।। 33।।

पैतृक द्रव्य को पुत्रों द्वारा प्राप्त नहीं किया गया उसका प्रतिकार नहीं किया गया। अनवाप्यम्, अनवाप्य - यह दोनों पाठ अनुचित हैं।।

33॥

Explanation of the text.

Property appertaining to his father, not recovered by the sons; and retrieved by them. The other readings, anavāpya and anavāpyam (in place of anavāptam) are unfounded.

आह बृहस्पति -

''पैतामहं हृतं पित्रा स्वशक्त्या यदुपार्जितम्।
विद्याशौर्यादिना प्राप्तं तत्र स्वाम्यं पितुः स्मृतम्॥
प्रदानं स्वेच्छया कुर्याद् भोगञ्चैव ततो धानात्।
तदभावे तु तनयाः समांशाः परिकीर्त्तिताः॥ 34॥

बृहस्पति का कथन है कि पितामह का द्रव्य जो कि अदृष्ट है पिता ने अपनी सामर्थ्य से अर्जित किया है। विद्या और शौर्य से प्राप्त धन इन सबका स्वामी पिता होता है। उस धन से वह अपनी इच्छा से उपभोग और दान कर सकता है। उसके अभाव में उसके पुत्र समान रूप से अधिकारी होते हैं॥ 34॥

Bṛhaspati declares property gained or recovered exempt from partition : but after the demise of the acquirer, is is equally divided.

Bṛhaspati says, "Over the grandfather's property, which has been seized (by strangers) and is recovered by the father through his own ability, and over (any thing) gained by him through science, valour, or the like, the father's full dominion is ordained. He may give it away at his pleasure, or he may defray his consumption with such wealth; but, on failure of him, the sons are pronounced entitled to equal share.

स्वशक्त्येत्यसाधारणधनशरीरव्यापारं दर्शयति॥ 35॥

स्वशक्त्या कहने का अभिप्राय असाधारण धन को परिश्रम से प्राप्त करना है॥ 35॥

Exposition of the text.

Through his own ability. The author thus indicates a separate personal exertion.

वचनद्वयेऽपि पितृपदमुपलक्षणम्, स्वयमर्जितमिति हेतोरभिधानात्॥ 36॥

दोनों श्लोकों में पिता पद उपलक्षणस्वरूप है॥ 36॥

And of the preceding passage (see 32)

In both texts, the term 'father' is indefinite: for a person(of the precept) is sated, "Since, in fact, it was acquired by 'himself'. (See 32).

एवञ्च स्वार्जिताक्रमागताद्रव्यवदेव क्रमागतेऽप्येवंरूपे भूमिव्यतिरिक्ते व्यवस्था बोद्धव्या॥ 37॥

पैतृक सम्पत्ति के समान ही भूमि के अतिरिक्त स्वयं उपार्जित द्रव्य जो पैतृक नहीं है - उसे जानना चाहिए॥ 37॥

The rule is the same in regard to property recovered and acquired. Except land.

Thus the rule must be understood in the instance of any such hereditary property, other than land, exactly as in the case of property not hereditary, but acquired by the man himself.

भूमौ तु विशेषमाह शङ्खः -

पूर्वनष्टान्तु यो भूमिमेक एवोद्धरेच्छ्रमात्।
यथाभागं भजन्त्यन्ये दत्त्वा भागं तुरीयकम्॥ 38॥

शंख ने भूमि के प्रसंग में विशेष रूप से कहा है - पूर्व में नष्ट हुई (पैतृक) भूमि का अकेला व्यक्ति अपने परिश्रम से उद्धार करता है अर्थात् उसे प्राप्त करता है उसे चतुर्थांश देकर शेष व्यक्तियों को समान भाग दे देना चाहिए॥ 38॥

Śaṅkha provides a rule for one case of land.

Śaṅkha propounds a special rule regarding land. "Land, inherited in regular succession, but which had been formerly lost and which a single (heir) shall recover solely by his own labour, the rest may divide according to their due allotments, having first given him a fourth part."

यद्यपि असाधारणधनशरीरव्यापारमेवाकारेण दर्शयति, तथापि उद्धर्तुर्नासाधारण्यम्, किन्तु प्रतिकृतभूमेश्चतुर्थांशोऽधिकस्तस्मै दातव्यः, भूमिपदसामार्थ्यात्, तदविवक्षाकारणाभावात्॥ 39॥

यद्यपि असाधारण धन को परिश्रम से प्राप्त करता है तथापि उद्धार करने वाले का वह असाधारण धन नहीं होगा किन्तु उसे चतुर्थांश अधिक देना चाहिए। भूमि पद के सामार्थ्य से उसकी निश्चिंतता है, सन्देह का अभाव है॥ 39॥

The acquirer has a fourth part in addition to his own regular share.

By the term "solely" the author intimates, that neither common funds were used nor joint personal exertions made. Still it does not become the separate property of the person retrieving it; but a fourth part of the land recovered must be given to him in addition (to his regular allotment) : by force of the world land and because there is no reason for supposing it to be vague.

इति विभाज्याविभाज्यनिरूपणम्॥ 40॥

इस प्रकार विभाज्य धन और अविभाज्य धन का निरूपण हुआ॥ 40॥

Consumption.

Thus have been explained both what is divisible and what is exempt from partition.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे षष्ठे द्वितीयः परिच्छेदस्समाप्तः। षष्ठोध्यायश्च समाप्तः।

सप्तमोऽध्यायः

सम्प्रति विभागानन्तरजातस्य विभागः कथ्यते।

तत्र मनु-नारदौ -

'ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम्।
संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजतेत स तैः सह॥ 1॥

(मनु0 9-216, नारद: 13-43)

अब विभाग के अनन्तर उत्पन्न हुए पुत्र का विभाग कहा जाता है। इस प्रसंग में मनु और नारद का मत है कि विभाजन करने के उपरान्त यदि पिता की मृत्यु हो जाती है तो बाद में उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के धन को प्राप्त करता है। यदि पिता की संसृष्ट होकर मृत्यु हो जाती है तो बाद में उत्पन्न पुत्र पिता का भाग उन संसृष्ट भाइयों से प्राप्त करता है॥ 1॥

Manu declares, that a son born after partition is heir to his father; or shares with re-united brothren.

It share of a son born after the partition of the estate is now declared. On the subject Many and Nārada say, "A son, born after a division, shall alone take the paternal wealth; or he shall participate with such (of the brethren) as are re-united with the (father)."

यदि पिता पुत्रान् विभज्य स्वयञ्च यथाशास्त्रं भागं गृहीत्वा, पुत्रैरसंसृष्ट एवं मृतः, तथा विभागानन्तरं जातः पितृधनमेव गृह्णीयात्। स एव तस्य भागः, अथ कैश्चित् पुत्रैः सह संसृष्टः पिता मृतः, तदा संसृष्टेभ्यो भागम् गृह्णीयात्॥2॥

इसी की व्याख्या करते हुए जीमूतवाहन ने कहा है कि यदि पिता पुत्रों को विभाजित करके स्वयं यथाविधि भाग को ग्रहण करते हुए,

पुत्रों के साथ असंसृष्ट होकर मर जाता है तो विभाग के अनन्तर उत्पन्न पुत्र पिता के धन को प्राप्त करता है। वही उसका भाग होता हैं यदि पिता की कुछ पुत्रों के साथ संसृष्ट होकर मृत्यु हो जाती है तो वह संसृष्ट भाइयों से भाग ग्रहण करता है।। 2।।

Interpretation of the text.

If the father, having separated his sons and having reserved for himself a share according to law, die without being re-united with his sons; then a son, who is born after the partition, shall alone take the father's wealth; and that only shall be his allotment. But, if the father die after re-uniting himself with some of his sons, that son shall receive his share from the re-united co-heirs.

तथाच गौतमः-'विभक्तजः पित्र्यमेव' (गौ0 28-27)।।3।।

गौतम के मतानुसार - विभक्तज पुत्र पिता के भाग को प्राप्त करता है।। 3।।

Gautama also pronounces him heir to his father's share.

Thus Gautama says: "A son, begotten after partition, takes exclusively the wealth of his father."

विभागानन्तरं यस्य गर्भाधनम् स विभक्तजः, विभक्तेन जनितः-गर्भाधानादृते जनकस्य जननव्यापाराभावात्। यतो यद्यज्ञातगर्भायामेव स्त्रियां विभक्ताः पुत्राः, तदनन्तरं जातो भ्रातृभ्य एव भागं गृह्णीयात्।। 4।।

विभाजन के पश्चात् जो गर्भ में आता है वह विभक्तजः है इसलिए विभक्तेन जनितः कहा जाता है। अतः यदि स्त्री के गर्भ लक्षण विदित न हो तो विभक्त पुत्र बाद में अपने भाइयों से अंश ग्रहण करता है।। 4।।

Exposition of the passage.

He of whom the conception was subsequent to the division of the estate is a son be gotten after partition; being procreated by a person, who is separated (from co-parceners);

for, without conception, there is no procreation. Therefore, if the sons were separated (from the father), while his wife was pregnant but not known to be so, the son, who is afterwards born (of that pregnancy), shall receive his share from his brothers.

न केवलमेक एव, किन्तु बहवोऽपि विभक्तजाताः पित्र्यमेव धनं गृह्णीयुः।

यदाह बृहस्पतिः –

'पित्रा सह विभक्ता ये सापत्ना वा सहोदराः।
जघन्यजाश्च ये तेषां पितृभागहरास्तु ते।
अनीशः पूर्वकः पित्र्ये भ्रातृभागे विभक्तजः'॥ 5॥

केवल एक ही नहीं अपितु बहुत से पुत्रों के उत्पन्न होने पर भी वे पिता के धन को प्राप्त करते हैं।

यथा बृहस्पति ने कहा है कि –

पिता अपने वर्ण या दूसरे वर्ण की पत्नियों से उत्पन्न पुत्रों से विभक्त हो जाता है तो बाद में उत्पन्न पुत्र पिता के भाग को प्राप्त करते हैं। विभाजन से पूर्व पिता के धन में उत्पन्न पुत्रों का स्वामित्व नहीं है और इसी प्रकार विभाजन के पश्चात् भाइयों के धन में स्वामित्व नहीं है॥ 5॥ जीमूतवाहन ने भी यही कहा है।

The same holds good, if there be more than one such son. A passage of Bṛhaspati cited.

Not one only, but even many sons, begotten after a partition shall take exclusively the paternal wealth. Thus Bṛhaspati says : "The younger brothers of those, who have made a partition with their father, whether children of the same mother, or of other wives, shall take their father's share. A son, born before partition has no claim on the paternal wealth; nor one, begotten after it, on that of his brother."

विभागात् पूर्वं जातः पित्रोः धनेऽनधिकारी, विभक्तजश्च भ्रातृधने।

तथा

पुत्रैः सह विभक्तेन पित्रा यत् स्वयमर्जितम्।
विभक्तजस्य तत् सर्वमनीशाः पूर्वजाः स्मृताः॥
यथा धने तथर्णेऽपि दानाधनक्रयेषु च॥ 6॥

विभक्तज पुत्रों के साथ पिता ने स्वयं जो सम्पत्ति अर्जित की है उसमें विभक्तज पुत्र का ही अधिकार है, विभाजन से पूर्व उत्पन्न पुत्रों का नहीं। जिस प्रकार धन में अधिकार है उसी प्रकार ऋण, दान, निक्षेप और क्रय में भी उसी का अधिकार है॥ 6॥

And explained. A further passage quoted.

One, born previously to the partition, is not entitled to the paternal estate : nor one begotten by the separated father, to the estate of his borhter. So, the same author declares; "All the wealth, which is acquired by the father himself, who has made a partition with his sons, goes to the son begotten by him after the partition. Those, born before it, are declared to have no right, as in the wealth, so in the debts likewise and in gifts, pledges and purchases."

सर्वशब्दात् बहुतरमपि धनं पित्रार्जितं विभक्तजस्यैव॥7॥

सर्व शब्द से अभिप्राय बहुत अधिक धन - जो पिता द्वारा अर्जित किया गया है वह विभक्तज पुत्र का ही है॥ 7॥

An expounded.

Under the term "all", wealth, however considerable, which is acquired by the father, goes to the son begotten by him after partition.

'परस्परमनीशास्ते मुक्ताशौचोदकक्रियाः'॥ 8॥

अशौच और तर्पण क्रियाओं में सब पुत्रों का अधिकार होता है॥ 8॥

A further passage cited.

"They have no claims on each other, except for acts of mourning and libations of wather."

अशौचोदकक्रियामात्रप्रदर्शनेन सुदूरमेव धनाधिकारं निरस्यति॥ 9॥

अशौच और तर्पण क्रिया बतलाकर दूर से ही धनाधिकार का निषेध किया है॥ 9॥

And explained

By specifying "act of mourning and obations of water" only, the author excludes the remoter pretensions to a participation in wealth.

इदञ्च पित्रुपात्तधनमात्रविषयम् यदि तु पैतामहधनमपि भूम्यादिकं विभक्तम्, तदा तद्धनविभागं भ्रातृभ्य एव गृह्णीयात्, मातुर्निवृत्ते रजसि तद्विभागविधानात्॥ 10॥

यहाँ पिता की स्वार्जित सम्पत्ति में ही विभक्तज का अधिकार हैं यदि भूम्यादि पितामहधन का पिता ने विभाजन कर लिया है तो विभक्तज पुत्र भाइयों से धन ग्रहण करता है, जब माता का रजोधार्म निवृत्त हो गया हो॥ 10॥

If land, have been divided, the son subsequently born takes nevertheless a share.

This is applicable only to the case of wealth acquired by the father. But, if property inherited from the grandfather, as land or the like, has been divided, he may take a share of such property from his brothers: for partition of it is authorised (only) when the mother becomes incapable of bearing more children. (Consequently, since the partition is illegal, having been made in other circumstances, it ought to be annulled.)

तदाह विष्णुः -

पितृविभक्ता विभक्तानन्तरोत्पन्नस्य विभागं दद्युरिति॥ 11॥ (वि0 17/3।)

विष्णु ने कहा है कि - पिता से विभक्त पुत्र विभाग के अनन्तर उत्पन्न पुत्र को भाग दे॥ 11॥

Viṣṇu authorizes his participation.

That is declared by Viṣṇu : "Sons, with whom the father has made a partition, should give a share to the son born after the distribution."

तथा याज्ञवल्क्य: –

'विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक्।
दृश्याद्वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात्।। 12।।

(याज्ञ0 स्मृ0 2-123)

याज्ञवल्क्य के मतानुसार - विभाजन के पश्चात् सवर्ण स्त्री से उत्पन्न पुत्र विभाजन का अधिकारी होता है अथवा आय-व्यय का शोधन करके दृष्ट धन का अधिकारी होता है।। 12।।

Yājñavalkya dircts an allotment to be given out of the property forthcoming.

So Yājñavalkya : "When the sons have been separated, one afterwards born of a woman equal in class, shares the distribution. His allotment must positively be made, out of the visible estate corrected for income and expenditure."

'पित्र्यमेव हरेद्धनमिति विरोधात् उक्तयुक्तेश्च। क्रमागतधनविषयमिदम्।। 13।।

जीमूतवाहन के अनुसार 'पित्र्यमेव हरेद्धनमिति' विरोध से और उक्त वचन से यह पैतामह धन से संबन्धित है।। 13।।

That must relate to hereditary property.

Since is disagrees with the ordinance, that "he shall alone take the paternal wealth," (see 1) it must relate to hereditary property for the reason above mentioned.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-
श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे
वभागान्तरजातस्य विभागतिरूपणं नाम
सप्तमोऽध्यायः समाप्तः।

अष्टमोऽध्यायः

अथ विभागानन्तरागतविभागः।

तत्र बृहस्पतिः -

'कृतेऽकृते विभागे वा रिक्थं यत्र प्रदृश्यते।
सामान्यञ्चेद्भवेद् यत्तु तत्र भागहरस्तु सः॥ 1॥

अब विभाग के पश्चात् आए हुए व्यक्ति का धन विभाग कहा है। इस प्रसंग में बृहस्पति ने कहा है कि -

विभाग किया हो अथवा न किया हो, धन का अधिकारी जहाँ दिखाई देता है सामान्य धन में उसका भाग होता है॥ 1॥

The share of an absent co-parcener is directed by Bṛhaspati to be delivered to him.

The participation of one, who arrives after the distribution of the estate, is next declared. On this subject Bṛhaspati says, "Whether partition have, or have not, been made; whenever an heir appears, he shall receive a share of whatever common property there is. Be it debt, or a writing, or house, or field, which descended from his paternal ancestor, he shall take his due share of it, when he comes even though he have been long absent."

ऋणं क्षेत्रं गृहं लेख्यं यस्य पैतामहं भवेत्।
चिरकालप्रोषितोऽपि भागाभागगतस्तु सः।
गोत्रसाधारणं त्यक्त्वा योऽन्यदेशं समाश्रितः।
तद्वंशस्यागतस्यांशः प्रदातव्यो न संशयः।
तृतीयः पञ्चमश्चैव सप्तमो वापि यो भवेत्॥
जन्मनामपरिज्ञाने लभेतांशं क्रमागतम्॥ 2॥

ऋण, खेत, घर और लेख्य जो पितामह के हैं, विदेश से बहुत समय पश्चात् आए हुए व्यक्ति को यदि भाग न मिला हो तो वह भी भाग (धन) का अधिकारी है। अपने गोत्र को छोड़कर जो दूसरे देश का आश्रय लेता है अथवा अन्यत्र चला जाता है तो उसके वंश कोई भी व्यक्ति आए तो उसको भाग अवश्य देना चाहिए। चाहे वह तीसरी, पांचवीं अथवा सातवीं पीढ़ी का ही क्यों न हो। यदि उसका जन्म एवं नाम ज्ञात हो तो पैतृक सम्पत्ति में से अंश प्राप्त करता है।। 2।।

Or to his heir.

"If a man leave the common family, and reside in another country, his share must no doubt be given to his male descendants when they return. Be the descendant third, or fifth, or even seventh, in degree, he shall receive his hereditary allotment, on proof of his birth and name."

यं परम्परया मौलाः सामन्ताः स्वामिनं विदुः।
तदन्वयस्यागतस्य दातव्या गोत्रजैर्महो'।। 3।।

परम्परा से जिन्हें वहाँ के मूल निवासी लोग और सामान्तवासी स्वामी जानते हैं (सहभागी के रूप में) उसके वंश के किसी भी व्यक्ति के आ जाने पर गोत्र के व्यक्तियों के द्वारा भूमि का भाग दे देना चाहिए।।3।।

On proof of his descent.

"To the lineal descendants, when they appear, of that man, whom the neighbours and old inhabitants know by tradition to be the proprietor, the land must be surrendered by his kinsmen."

तदनेन चिरप्रोषितवंश्येन समन्ताद्वासिभिर्मौलैरात्मज्ञान-पूर्वकं भागग्रहणं कार्यम्।। 4।।

जीमूतवाहन ने यहाँ पर केवल इतना ही कहा है कि जो व्यक्ति चिरकाल से विदेश में गया है उसके वंश के मूलनिवासी और सामन्तवासी लोग अपना परिचय देते हुए उनके भाग को ग्रहण कर लेते हैं।। 4।।

Such proof is necessary.

Under this text; the heir (of a co-parcener) long absent shall take his due allotment, after making himself known to the old inhabitants settled on all sides.

इति विभागानन्तरागतविभागः।। 5।।

इस प्रकार से विभाग के अनन्तर आए व्यक्ति (अधिकारी) का विभाग कहा।। 5।।

Conclusion..

Such is the participation of one arriving after a division.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-
श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे
विभागान्तरागतविभागनिरूपणपरः अष्टमोऽध्यायः समाप्तः।

नवमोऽध्यायः

सम्प्रत्येकपितृकाणां सवर्णानुलोमपरिणीतस्त्रीजातानां पुत्राणां विभागः कथ्यते।।1।।

अब एक पितृक, सवर्ण, अनुलोम स्त्री से उत्पन्न पुत्रों का विभाग कहा जाता है।

Partition among the offspring of marriages with women of different tribes.

Partition among sons of the same father by different women, some equal to himself by class, others married in the direct order of the tribes, is now described.

अस्ति च सवर्णानुलोमस्त्रीपरिणयनम्।

तथाच मनुः–

सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽवराः।।
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञः स्युस्ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः।।2।।

(मनु. 3/12-13)

सवर्ण और अनुलोम स्त्रियों के साथ विवाह के प्रसंग में मनु ने कहा है कि–

द्विजातियों के विवाह कर्म में सवर्णा स्त्री श्रेष्ठ मानी गई है। काम के वशीभूत होकर प्रवृत्त पुरुषों की ये स्त्रियाँ क्रमशः निम्न मानी गई हैं– शूद्र पुरुष की शूद्रा भार्या, वैश्य पुरुष की वैश्या और शूद्रा, क्षत्रिय पुरुष की क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा और ब्राह्मण पुरुष की ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा स्त्री कही गई है।

Such marriages are authorised by Manu. The first wife must be of equal class. Subsequent marriages may be con-

tracted in the gradation of the classes.

Marriage is allowed with women in the order of the tribes, as well as with those of equal class; for Manu says, "For the first marriage of the twice born classes, a woman o the same tribe is recommended; but for such, as are impelled by desire, those following are preferable in the order of the classes. A Śūdra woman only must be the wife of a Śūdra; she and a woman of his own tribe (are the only wives) of a merchant; they two, and a woman of his own class, are alone eligible for a man of the royal (or military) tribe; and those (three) and a woman of his own rank (may be wives) of a priest."

शूद्रैवेत्येवकारः सर्वत्र सम्बध्यते, सा ते ता इत्यनन्तर-पूर्वोक्तपरामर्शात् प्रतिलोमपरिणयनं न कार्यमित्यर्थः॥3॥

शूद्रैव में 'एवं' शब्द सब वाक्यों से संबन्धित है। 'सा ते ता' पूर्व के वचनों से सम्बद्ध प्रतिलोम विवाह के लिए नहीं कहा है।

Exposition of the text. Marriages are not allowed with women superior.

A Śūdra woman only. The particle "only" is connected with every member of the sentence; for that term, expressed immediately before, is understood with the words "she", "they two", and "those three". The meaning is, that marriage in the inverse order of the tribes must by no means be contracted.

'कामतस्तु प्रवृत्तानामिति दोषाल्पत्वख्यापनार्थम्, न तु दोषाभाव एव॥4॥

'कामतस्तु प्रवृत्तानाम्' यह कम दोष को बतलाने के लिए है, न कि दोष का अभाव ही है।

And are blamable with women inferior by class.

But for such, as are impelled by desire, these. This indicates an alleviation of offence, not entire exemption from blame.

तदाहतुः शङ्खलिखितौ–"भार्याः कार्याः सजातीयाः श्रेयस्यः सर्वेषां स्युरि"ति पूर्वः कल्पः। ततोऽनुकल्पाः चतस्रो

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण, तिस्रो राजन्यस्य द्वे वैश्यस्य, एका शूद्रस्य॥5॥

शंखलिखित ने कहा है—सबके लिए सवर्ण स्त्री से विवाह करना श्रेष्ठ माना गया है। उससे कुछ कम श्रेष्ठ ब्राह्मण की क्रमशः चार, क्षत्रिय की तीन, वैश्य की दो और शूद्र की एक स्त्री हो सकती है।

Śaṅkha and Likhita cited.

So Śaṅkha and Likhita declare, "Wives must be espoused. Women of like class are preferable for all persons." This is stated as the principal rule. The succedaneous one follows : "Four wives of a Brāhmaṇa are allowed in the direct order; three, of a Kṣatriya; two, of a Vaiśya; and one, of a Śūdra."

जात्यवच्छेदेन चतुरादिसङ्ख्या सम्बध्यते॥6॥

चार आदि की संख्या जाति के अवच्छेदन को बतलाती है।

And explained.

The numbers here stated, "four", are intended to refer to the tribes.

The meaning is, that five or six wives, similar to the husband himself in ass, are not forbidden to a man of the sacerdotal or other tribe. (Acyuta).

एताः परिणीता एव भार्या भवन्ति।

तथाह पैठीनसिः—

चतस्रो ब्राह्मणस्य परिणीताः तिस्रः, द्वे चैका चेतरेषाम्॥7॥

यह सब विवाहित स्त्रियाँ होती हैं। इस प्रसंग में पैठीनसि ने कहा है कि—ब्राह्मण की चार और अन्य वर्णों की क्रम से तीन, दो एवं एक विवाहिता पत्नियाँ होती हैं।

Paiṭhīnasi shows, that marriage is here meant.

These women are wedded wives. So Paiṭhīnasi shows: "Four wedded wives of a Brāmaṇa are allowecd; and three, two, and one, of the rest respectively."

इतरेषाम्–राजन्यादीनां यथाक्रमं तिस्त्रः द्वे, चैका चेति।।8।।

इतरेषाम् से अभिप्राय– क्षत्रियादि अर्थात् क्षत्रिय-वैश्य एवं शूद्र की क्रमशः तीन, दो और एक भार्या होती है।

Interpretation of his text.

Of the rest. Of the Kṣatriya, in their order, three, two and one, may be allowed.

आनुलोम्येऽपि द्विजातेः शूद्रायां बहुदोषमाहतुर्मनुविष्णू–

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्।।
शूद्रावेदी पतत्येत्रेरुतथ्यतनयस्य च।
शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः।।
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते।।9।।

(म. 3/15-16-17)

अनुलोम विवाह होने पर भी मनु और विष्णु ने द्विजातियों का शूद्रा स्त्री के साथ विवाह करने में बहुत दोष कहे हैं–

जो द्विजाति शूद्रा के साथ मोहवश विवाह कर लेता है, वह सन्तान सहित कुलों को शूद्र की कोटि में पहुँचा देता है। अत्रि तथा उतथ्य पुत्र अर्थात् गौतम का मत है कि शूद्रा के साथ विवाह करने वाला पतित हो जाता है। शौनक एवं भृगु के अनुसार शूद्रा में सन्तान उत्पन्न करने से पतित हो जाता है। ब्राह्मण शूद्रा को शय्या पर बिठाकर अधोगति को प्राप्त होता है ओर यदि उससे पुत्र हो जाता है तब तो वह ब्राह्मणत्व से ही गिर जाता है।

Union of a regenerate man with a Śūdra woman is reprobated by Manu and Viṣṇu.

Though (such a marriage be) in the direct order of the classes, Manu and Viṣṇu have strongly censured the union of a man of a regenerate tribe with a Śūdra woman. "Men of the twice-born classes, who, through infatuation, marry a

woman of the low tribe, soon degrade their families and progeny to the state of Śūdras. According to the Atri and (Gautama) the son of Utathya, he, who marries a Śūdra woman, is degraded instantly; according to Śaunaka, on the birth of a son; and according to Bhṛgu, on the birth of a son's son. A Brāhmaṇa, who has ascended the couch of a Śūdra woman, sinks to a region of torment : or, if he have begot a child on her, he loses even his priestly rank."

तदनेन क्रमोढाविषयत्वं वचनानाम्, हारीतवचनमपि मन्वाद्येकवाक्यतया परिणीताविषयम्। यथा–

ब्रह्महा न भवत्यन्यो ब्रह्महा वृषलीपतिः।
यस्तस्यामाहितो गर्भः स तेन ब्राह्मणो हतः।।

अतएव शूद्रावर्जं द्विजातिभार्य्यामाह शङ्खः–

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिता।।
क्षत्रियाचैव वैश्या च क्षत्रियस्य प्रकीर्तिता।
वैश्यैव भार्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता।।10।।

इस प्रकार से यह वचन क्रम से विवाहिता के विषय में कहे गये हैं। हारीत के वचन भी मन्वादि की एकवाक्यता से विवाहिता स्त्री के विषय में हैं यथा– ब्राह्मण को मारने से इतना अपराध नहीं होता जितना कि वृषलीपति अर्थात् शूद्रा में विवाह करने वाला ब्राह्मण (शूद्रापति) ब्रह्महा अपराधी होता है। जो ब्राह्मण शूद्रा पत्नी में गर्भ-धारण करता है वह ब्राह्मणत्व से ही गिर जाता है। अतएव शंख ने द्विजाति की भार्या के प्रसंग में शूद्रा स्त्री का त्याग किया है– ब्राह्मण की ब्राह्मणी, क्षत्रिया और वैश्या स्त्री होती है। क्षत्रिय की क्षत्रिया और वैश्या स्त्री और वैश्य की वैश्या एवं शूद्र की शूद्रा स्त्री कही गई है।

Though she be expoused subsequently to wives of higher classes. A passage of Hārīta confirms this and one of Śaṅkha.

It thus appears, that the texts are applicable to the instance of such a woman married in regular gradation. Hārīta's

text also, which coincides with that of Manu and the rest, relates to a woman espoused. Thus he says, "No other is so sacrilegious, as is the husband of a woman of the servile tribe; for that Brāhmaṇa is slain by the child, which he himself begets on her." Accordingly (since marriage with a Śūdra woman and procreation of issue by her, are offences), śaṅKha omits the śudra in is describing a wife eligible for a twice-born man. A "Brāhmaṇa; a Kṣatriya and a Vaiśya are propouded as the allowed wives of Brāhmaṇa, a Kṣatriya and a Vaiśya of a Kṣatriya; but a Vaiśya is ordained the only wife of a Vaiśya; and a Śūdra of a Śūdra.

अतः स्वयमनूढायां शूद्रायामपत्यजनने नैते दोषाः, किन्तु स्वल्पदोषः प्रायश्चित्तञ्चाल्पमिति वक्ष्यति॥11॥

अतः ब्राह्मण अविवाहिता शूद्रा में पुत्र उत्पन्न करता है तो यह दोष (उपर्युक्त) नहीं होते किन्तु अल्प दोष होता है और इसके लिए प्रायश्चित्त भी थोड़ा कहा गया है।

But adultery with such a woman is comparatively venial.

Hence these evils do not ensue on the procreation of offspring upon a Śūdra woman, not married to (the Brāmaṇa) himself but a venial offence is committed and as slight penance is requisite, as will be shown.

अत्र चातुर्वर्ण्यविभागमाह मनुः–

'त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः।
वैश्याजस्सार्द्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत्॥
सर्वं वा रिक्थजातन्तु दशधा परिकल्प्य तत्।
धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित्॥
चतुरोंऽशान् हरेद्विप्रस्त्रीनंशान् क्षत्रियासुतः।
वैश्यापुत्रो हरेद्द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत॥12॥

(मनु. 1/151, 152, 153)

अब चारों वर्णो के विभाग को मनु ने कहा है–ब्राह्मण का पुत्र तीन अंश, क्षत्रिया पुत्र दो अंश, वैश्या पुत्र डेढ़ अंश और शूद्रा पुत्र एक अंश

प्राप्त करता है। अथवा– सम्पूर्ण सम्पत्ति को दस भागों में विभक्त करके धर्म को जानने वाला निम्न विधि से धर्मपूर्वक विभाग करे– ब्राह्मणी पुत्र को चार, क्षत्रिया पुत्र को तीन, वैश्या पुत्र को दो और शूद्रा पुत्र को एक भाग प्राप्त होता है।

Partition among sons by wives from various tribes, is propounded by Manu.

Manu propounds the distribution among sons of four classes. "Let the venerable son take three shares of the heritage; and the son of the Kṣatriya wife, two shares; the son of the Vaiśya wife, a share and a half; and the son of the Sūdra wife, may take a share. Or let a person, conversant with law, divide the whole collected estate into ten parts and make a legal distribution by this (following) rule : let the venerable so receive four parts; the son of the Kṣatriya, three; let the son of the Vaiśya have two parts; and let the son of the Śūdra take a single part."

किञ्चिद्गुणवत्त्वेन विभागप्रकारद्वयम्।।13।।

जो कुछ गुणवान् हैं उनके लिए दो प्रकार का विभाजन कहा है।

In two modes a accoding to the merit of the sons.

Two modes are propounded on the supposition of some (superiority of) good qualities (in the sons belonging to regenerate tribes, or in the Śūdra's son).

तत्र विष्णुः–

ब्राह्मणस्य चतसृषु चेत् पुत्रा भवेयुरित्यादि।

(विष्णुः१८-१)

अनेन क्रमेणांशकल्पना अन्यत्रापि भवतीत्यन्तम्।।14।।

(वि. 18-40)

विष्णु ने अपनी स्मृति में प्रारम्भ में कहा है कि– ब्राह्मण की चार स्त्रियों में उत्पन्न पुत्र हों इत्यादि और अन्त में कहा है कि इस क्रम से सम्पत्ति का विभाजन अन्यत्र भी होता है।

Viṣṇu has stated the distribution in detail.

On this subject Viṣṇu has delivered rules : "If there be sons of a Brāhmaṇa by women of the four tribes," down to the concluding passage, "On this principle, shares should be distributed in other cases likewise."

ब्राह्मणजातो राजन्यापुत्र एव यदि जन्मना सर्वज्येष्ठो गुणवांश्च, तदा ब्राह्मणेन सह तुल्यभागः कार्यः, ब्राह्मणेन, क्षत्रियेण वा जातो वैश्यश्चेत्तद्रूपः, तदा क्षत्रियेण सह तुल्यांशः।

यथाह बृहस्पतिः–

'विप्रेण क्षत्रियाज्जातो जन्मज्येष्ठो गुणान्वितः।
भवेत् समांशः क्षत्रेण वैश्याजातस्तथैव च'॥15॥

तथा बौधायनः–सवर्णापुत्रानन्तरापुत्रयोरनन्तरापुत्रश्चेद् गुणवान्, सः ज्येष्ठभागं गृह्णीयात्, गुणवान् हि शेषाणां भर्ता भवतीति॥15॥ (बौ. ध. सू. 20-3-12)।

ब्राह्मण का क्षत्रिया से उत्पन्न पुत्र जन्म से ज्येष्ठ तथा गुणवान् हो तो वह ब्राह्मणी पुत्र के तुल्य भाग प्राप्त करता है। इसी प्रकार ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय के द्वारा वैश्या स्त्री से उत्पन्न पुत्र उसके अनुरूप अंश प्राप्त करता है। उसका क्षत्रिय के साथ समान अंश होता है। इस प्रसंग में बृहस्पति ने यही कहा है कि– ब्राह्मण का क्षत्रिया से उत्पन्न जन्म से ज्येष्ठ एवं गुणवान् हो तो वह ब्राह्मणी पुत्र के बराबर अंश प्राप्त करता है। इसी प्रकार क्षत्रिय का वैश्या से उत्पन्न पुत्र क्षत्रिया पुत्र के समान भाग प्राप्त करता है।

बौधायन ने इस प्रसंग में कहा है कि–

सवर्ण पुत्र और अनन्तरवर्णपुत्र में से यदि अनन्तर वर्ण वाला पुत्र गुणवान् हो तो वही ज्येष्ठ पुत्र का भाग प्राप्त करता है क्योंकि गुणवान् पुत्र ही शेष पुत्रों का भरण-पोषण करता है।

Being elder by birth, a son shares with the higher tribe : agreebly to a passage of Bṛhaspati and one of Baudhāyana.

The son of a Brāhmaṇa by a Kṣatriya wife, if eldest of all by birth and superior in virtue, shall be an equal sharer with the Brāhmaṇa son : and the son of a Brāhmaṇa, or of Kṣatriya, by a Vaiśya wife, shall, in like circumstances, be an equal participator with the Kṣatriya son. So Bṛhaspati directs : "The son of a Kṣatriya wife, being elder by birth and endowed with superior qualities, shall have an equal share with the venerable son of the Brāhmaṇī, and in like manner, the son of a Vaiśya wife shall share equally with the soldier." So Baudhāyana says, "Of the sons by a woman of equal class and by one of the next inferior tribe, if this son of the wife one degree lower (than her husband) be (the most) virtuous, he may take the allotment of an eldest son. For a virtuous brother is the supporter of the rest."

अनेनैव शूद्रस्याप्येवंधिस्य वैश्येन सह समांशिता दर्शिता॥16॥

इस प्रकार शूद्र की भी वैश्य के साथ समांशता दिखाई गई है।

Even the Śūdra's son has that right.

It is thus shown, that the Śūdra likewise, in similar circumstances, shall have an equal share with the Vaiśya son.

या तु प्रतिग्रहेण पित्रार्जिता भूमिः, सा ब्राह्मणीपुत्रस्यैव, न क्षत्रियादेः गृहं क्रमागतं क्षेत्रञ्च द्विजातिपुत्राणामेव, न शूद्रस्य।

तदाह बृहन्मनुः—

ब्रह्मदायागतां भूमिं हरेयुर्ब्राह्मणीसुताः।
गृहं द्विजातयः सर्वे यथा क्षेत्रं क्रमागतम्॥17॥

पिता द्वारा प्रतिग्रह में प्राप्त होने वाली भूमि केवल ब्राह्मणी पुत्र की ही होती है, क्षत्रियादि पुत्रों की नहीं, वंश परम्परागत घर खेत, द्विजाति में उत्पन्न पुत्रों के होते हैं, शूद्रापुत्र के नहीं। बृहन्मनु ने भी यही कहा है—ब्राह्मणी का पुत्र प्रतिग्रह में प्राप्त भूमि को ग्रहण करता है। द्विजाति के सभी पुत्र वंश परम्परागत घर और खेत प्राप्त करते हैं।

But he has no right to land, according to Bṛhat Manu; especially a pious grant.

But land, which has been acquired by the father, through acceptance (of a pious donation); shall belong to the son of Brāhmaṇi exclusively, not to the Kṣatriya son and the rest : and the house and hereditary field, apperation to the sons of regenerate classes, not to the Śūdra. So Bṛhat Manu declares : "The sons of the Brāhmaṇi shall take and which was received as a pious gift; but all the sons of twice-born classes shall have the house, as well as the field, which has descended from ancestors."

क्रमादागतयोः पितामह-प्रपितामहादिगृहीतयोः सकलद्विजातिसम्बन्धः, क्रमागतमित्यविशेषेणाभिधानात्। प्रतिग्रहभूमौ च क्षत्रियादिसुतानामेव अधिकारनिषेधेन तन्नप्त्रादीनामप्यननुज्ञानम्।।18।।

क्रमागतम् का संबन्ध द्विजाति में उत्पन्न पुत्रों का पितामह और प्रपितामह की सम्पत्ति में अधिकार से है। प्रतिग्रह में प्राप्त भूमि में न केवल क्षत्रियादि पुत्रों के अधिकार का निषेध है अपितु उनके नप्ता अर्थात् पौत्रादि का भी निराकरण किया गया है।

Though other sons share other land.

All sons, belonging to regenerate tribes, have a right to hereditary acquisitions gained both by the paternal grandfather and by the paternal great grandfather; for it is expressed without restriction, "descended from ancestors." But, in the case of land obtained by acceptance (of a donation), since the right of the Kṣatriya's son and the rest is denied, that of grandsons and other descendants (claiming through such sons) is (property) unacknowledged.

तदाह बृहस्पतिः—

न प्रतिग्रहभूर्देया क्षत्रियादिसुताय वै।
यद्यप्यस्य पिता दद्यान्मृते विप्रासुतो हरेत्।।

एवञ्च प्रतिग्रहभूमिरेव ब्रह्मदायागतेत्युक्तम्। ब्रह्म-वेदः, तदध्ययनतदर्थ-ज्ञानवत्तया प्रतिग्रहविधानात्।।19।।

बृहस्पति ने इस प्रसंग में कहा है कि क्षत्रियादि पुत्र के लिए प्रतिग्रह में भूमि नहीं देनी चाहिए। यदि पिता ने अपने जीवन काल में दे दी हो तो उसके मरने पर ब्राह्मणी पुत्र प्राप्त कर ले। इस प्रकार प्रतिग्रह भूमि ही ब्रह्मदाय से प्राप्त है। यहाँ पर ब्रह्म का अर्थ वेद है। उसके अध्ययन के लिए अर्थ ज्ञान से प्रतिग्रह का विधान है।

A passage of Bṛhaspati confirms this. A pious grant is meant.

This is declared by Bṛhaspati : "Land, obtained by acceptance of donation, must not be given to the son of a Kṣatriya or other wife of inferior tribe : even though his father give it to him, the son of the Brāhmaṇi may resume it, when (his father is) dead." And thus (since the text of Bṛhaspati has the same foundation), land, obtained by acceptance of donation, is the same which has been termed (by Manu) land received as pious gift (brahmedāya) : for the study of the Vedas (here signified by the term brahme), and the knowledge of their menaning, have been propounded as qualifications for the receipt of gifts.

न पुनर्मनूक्तार्चनलब्धा।

यथा–

आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्रागां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते।।

(मनु.7-82)

अर्चनरूपत्वादस्य।।20।।

यहाँ पर मनु ने प्रतिग्रह से प्राप्त भूमि को नहीं कहा अपितु सत्कार से प्राप्त का भी विधान किया है। यथा मनु के मतानुसार– राजा वेदाध्ययन के बाद गुरुकुल से गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने वाले ब्राह्मणों की पूजा (धनधान्य गृहादि को देकर आदर-सत्कार) करे, क्योंकि यह ब्राह्मण राजा की अक्षय निधि कही गयी है।

Not a merer present.

It is not land which has been received as a present, according to the text of Manu : ("To priests returned from the mansion of their preceptors, let the king show due respect; for that holy mode of showing respect by kings, is pronounced unperishable"). Since this assumes the form of a token respect.

अथवा इयमेकेन निषिद्धा, अन्या परेण।।21।।

अथवा एक ने एक का निषेध किया है, दूसरे के द्वारा दूसरे का निषेध हुआ है। अर्थात् मनु ने अर्चन का निषेध किया है और बृहस्पति ने प्रतिग्रह का निषेध किया है।

However, this may be also inteded.

Or else, this land is expected by the one author, as the other is by the other.

Notes : This is excepted by the one author as the other is by the other- This, meaning a respectful present, is excepted by one, namely, by Bṛhaspati; and land received in a pious donation, by the other, namely, by Vṛddha Manu. Hence, both sorts descend from the father to the son of the Brāhmaṇi wife (Cūḍāmaṇi).

This, which is in the form of a respectful present, is excepted by one, namely, by Manu; and the other, meaning land received as a pious gift, by the other, that is, by Bṛhaspati : and thus both sorts of land belong exclusively to the Brāhmaṇi's son. (Śrīkṛṣṇa and Acyuta).

न तु ब्राह्मणस्य भूमिर्ब्रह्मदायः द्विजातीनां क्रमागतक्षेत्र-सम्बन्धस्य वाचनिकत्वात्। केवलशूद्रस्यैव निषेधाच्च।

यथा बृहस्पतिः—

शूद्राद्द्विजातिभिर्जातो न भूमेर्भागमर्हति।
सजातावाप्नुयात् सर्वमिति धर्मो व्यवस्थितः।।22।।

ब्राह्मण की प्रतिग्रह में प्राप्त भूमि से संबन्ध नहीं है अपितु द्विजातियों की वंश परम्परागत खेत से भी संबन्ध है। केवल शूद्रा पुत्र के

अधिकार का निषेध है। यथा बृहस्पति ने कहा है कि–द्विजाति से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न पुत्र भूमि के भाग को प्राप्त नहीं करता, किन्तु सजाति अर्थात् ब्राह्मणी, क्षत्रिया एवं वैश्या स्त्री में उत्पन्न पुत्र सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त करता है, यही धर्म की व्यवस्था है।

But a Brāhmaṇa's landed property in general is not holy.

But the land of a Brāhmaṇa is not universally a holy heritage (Brāhma-dāya) : for it is expressly declared, that sons of twice-born classes have a right to the hereditary field; and the Śudra is alone excluded. So a passage of law expresses : "The son, begotten on a Śūdri woman by any man of a twice-born class, is not entitled to a share of land; but one, begotten on her, being of equal class, shall take all the property (whether land or chattels); thus is the law settled.

भूमिमात्रोपादानात् क्रयप्रसादादिनापि द्विजातिलब्धभूमौ शूद्रस्यानधिकारः सिद्ध्यति॥23॥

यहाँ पर भूमिमात्र का ग्रहण होने के कारण क्रय और प्रसाद आदि के द्वारा भी यदि द्विजाति को भूमि प्राप्त होती है तो उसमें भी शूद्र का अनधिकार सिद्ध होता है।

The Śudra'son cannot inherit land however acquired.

Since land only is metioned, it follows, that a Śūdra's son has no right to land acquired by his father, being of a regenerate tribe, through purchase, or through favour, or through and other means.

यस्तु शूद्र एवैकः पुत्रो ब्राह्मणस्य, स तृतीयभागाधिकारी, भागद्वयं सपिण्डानाम्, तदभावे सकुल्यानाम्, तदभावे श्राद्धकर्तुः।

यदा देवलः–

निषाद एकः पुत्रस्तु विप्रस्य तृतीयभाक्।
द्वौ सपिण्डः सकुल्यो वा, स्वधादाताऽथवा
हरेत्॥24॥

यदि ब्राह्मण का एकमात्र एक शूद्र पुत्र हो तो सम्पत्ति में से तीन भाग वह प्राप्त करता है। दो भाग सपिण्ड प्राप्त करते हैं। इनके अभाव में सकुल्य और सकुल्य के अभाव में श्राद्धकर्त्ता ब्राह्मण प्राप्त करता है। देवल ने भी यही कहा है कि–

ब्राह्मण का एकमात्र पुत्र निषाद तीन भाग प्राप्त करता है और दो भाग सपिण्ड प्राप्त करते हैं, इनके अभाव में सकुल्य और तदनन्तर श्राद्धकर्ता प्राप्त करते हैं।

Being the only son of a Brāhmaṇa, the child of the Śūdra woman takes a third : according to Devala.

A Śūdra, being the only son of a Brāhmaṇa, is entitled to a third part (of the inheritance) : and (the remaining) two parts go to the Sapiṇḍas ; or on failure of them to the Sakulyas; or, it there be none, to the person, who performs the obsequies. So Devala. ordains : "A Niṣāda, being the only son of a priest, shall have a third part (of the haritage); and let the kinsman, near or remote, who performs the obsequies (for the deceased), take the two (remaining) shares."

ब्राह्मणेन शूद्रायां जातो निषाद उच्यते। सपिण्ड-सकुल्ययोस्तु भेदम् वक्ष्यति॥25॥

ब्राह्मण से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न सन्तान निषाद कहलाती है। सपिण्ड और सकुल्य का भेद आगे कहेंगे।

Interpretation of the passage.

The son, begotten by a Brāhmaṇa on a Śūdri, is termed a Niṣāda. The difference between the Sapiṇḍa and Sakulya (the near and the remote kinsman) will be explained (under the head of succession to the estate of a man who leaves no son).

क्षत्रियवैश्ययोस्तु यदि शूद्र एवैकः पुत्रः, तदा तद्धनस्यार्द्धहरः, अपरमर्द्धम् वक्ष्यमाणाः पुत्रधनाधिकारक्रमेण गृह्णीयुः।

तथा विष्णुः–

'द्विजातीनां शूद्रस्त्वेकपुत्रोऽर्द्धहरः अपुत्रर्क्थस्य या गतिः, सा अर्द्धस्य द्वितीयस्य॥26॥ (विष्णु. 18-32-33)

क्षत्रिय और वैश्य से शूद्रा स्त्री में एक ही पुत्र हो तो वह सम्पत्ति का आधा भाग प्राप्त करता है। शेष आधी सम्पत्ति आगे कहे जाने वाले पुत्रहीन व्यक्ति के अधिकारी प्राप्त करते हैं। विष्णु का भी यही मत है कि– द्विजाति से उत्पन्न एकमात्र शूद्रा पुत्र सम्पत्ति का आधा भाग प्राप्त करता है। दूसरा आधा भाग पुत्रविहीन मृत स्वामी के धन के उत्तराधिकारी ग्रहण करते हैं।

Being the only son of a Kṣatriya of Vaiśya, he takes half; as provided by Viṣṇu. Other heirs take the residue.

If a Śūdra be the only son of a Kṣatriya or of a Vaiśya, he takes half of his estate; and the next heirs, according to the order of succession subsequently explained in regard to the estate of one who has no male issue, shall take the other half. So Viṣṇu says, "A Śūdra, being the only son of any twice-born man, takes half his property; and the other half goes where the estate of a childless man would devolve."

इदञ्च तृतीयभागाधिकारित्वम्; अर्द्धहरत्वञ्च विद्या विनयसम्पन्नस्येति वेदितव्यम्।

यदाह मनुः–

यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रो यद्यपुत्रोऽपि वा भवेत्।
नाधिकं दशमाद्दद्यात् शूद्रापुत्राय धर्मतः॥

(मनु.9.154)

अनेन द्विजातिपुत्राभावेऽपि दशमांशाधिकदाननिषेधात् पूर्वस्य उत्तमैकशूद्रापुत्रगोचरत्वमेव ज्ञायते।

यच्च मनुना–

ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक्।
यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेद्॥

(मनु. 9, 155) इति

अनेन रिक्थभागित्वमेव निषिद्धम्, तत् पितृप्रसादलब्धधन-दशमांशत्वे सतीति विज्ञेयम्।।27।।

यह तीन भाग और आधे भाग का विधान विद्या और विनय से सम्पन्न शूद्रा पुत्र के विषय में है। इस प्रसंग में मनु ने कहा है कि–यद्यपि समान जातिवाली स्त्रियों में उत्पन्न पुत्रवाला हो या पुत्रहीन हो किन्तु धर्मानुसार शूद्रापुत्र को दशमांश से अधिक अंश नहीं देना चाहिए। इस प्रकार द्विजाति के पुत्रों के अभाव में भी शूद्रा पुत्र के लिए दसवें भाग से अधिक देने का निषेध है और पूर्व के वचन (अर्थात् जहां शूद्रा पुत्र को आधी सम्पत्ति देने का विधान है) उत्तम एकमात्र शूद्रा पुत्र के लिए दृष्टिगोचर होते हैं। मनु ने कहा है कि– ब्राह्मण-क्षत्रिय- वैश्य से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न पुत्र धन का भागी नहीं होता। किन्तु इसका पिता जो कुछ इसके लिए दे देता है वही इसका धन होता है।

इससे शूद्रा पुत्र को दाय का अधिकार नहीं दिया है। दसवां हिस्सा पिता द्वारा प्रीतिपूर्वक दिए गये धन के विषय में है।

If not virtuous, he has a tithe only, as declared by Manu; or no share, if his father had given him so much.

Here the right to a third part, or the succession to half the estate, must be understood as restricted to the instance of a person endowed with science, morality and virtue. For Manu says, "Whether he have sons, or have no sons, by other wives, no more than a tenth part must be given to his son by a Śudra wife. Since more than a tenth part is by this text forbidden, although there be ṇo son belonging to a regenerate tribe; it appears, that the preceding text relates to an excellent only son by a Śūdra woman. As for the prohibition of his participating in the estate, as declared by Manu; ("The son of a Brāhmaṇa, a Kṣatriya, or a Vaiṣya, by a woman of the servile class, shall not share the inheritance : whatever his father may give him, let that only be his property). It must be explained as implying, that the property, received by him through his father's favour, amounts to a tenth part of the estate.

Notes : It must be explained - For it is said, 'that only, which his father may give him, shall be his.' (Śrīkṛṣṇa).

यच्चाह बृहस्पतिः—

अनपत्यस्य शुश्रूषुर्गुणवान् शूद्रयोनिजः।
लभेताजीवनं शेषं सपिण्डाः समवाप्नुयुः॥

वर्तनोचितकृष्याद्यर्थं किञ्चिद्दातव्यमित्यर्थः। निर्गुणस्य अन्तेवासिविधिना वृत्तिमूलं भक्तादिकं पादशुश्रूषया देयम्,

यच्चाह मनुः—

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत् सुतम्।
स पारयन्नेवशवस्तस्मात् पारशवः स्मृतः॥

(मनु.9-178)

तदपरिणीतशूद्रासुताभिप्रायम्, परिणीतायाः सकृदृतावुपगमनस्य वैधत्वात्, तत्रैव च गर्भस्थितेः, न च द्वितीयादिसम्पर्केष्वपि।

यथा याज्ञवल्क्यः—

अपुत्रे भ्रातरि मृते तान्तु गच्छेदृतौ सकृत्।

तथा मनुः—

यथाविध्युपगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्।
मिथो भजेदाप्रसवात् सकृत् सकृदृतावृती॥

(मनु. 9, 170)

प्रथमोपगमनमात्रस्य गर्भहेतुत्वे सकृद्वचनं दृष्टार्थं स्यात्, अन्यथाऽदृष्टार्थत्वमस्य कल्पनीयम्, अत एव लोकेऽपि प्रथमसम्पर्कदिवसमादाय मङ्गलाचारार्थं नियतमासविहितपुंसवनसीमन्तोन्नयनाद्यर्थञ्च मासगणना दृश्यते, अतः कामादुत्पादयेत् सुतमित्यनूढाशूद्राभिप्रायमेव॥28॥

वृहस्पति ने कहा है सवर्ण पुत्र न होने पर शूद्र योनि में उत्पन्न पुत्र यदि सेवा करने वाला और गुणवान् हो तो आजीवन पर्यन्त उसका भरण-पोषण करना चाहिए और शेष सम्पत्ति सपिण्ड प्राप्त करते हैं। यहाँ पर जीमूतवाहन का मत है कि जीवनोपयोगी कृषि आदि कुछ साधन देने चाहिए परन्तु यदि वह निर्गुणी हो तो उससे अन्तेवासी विधि से वृत्तिमूल, भोजनाच्छादन तथा पादशुश्रूषा करवानी चाहिए। मनु ने पारशव पुत्र की परिभाषा देते हुए कहा है कि- वह पुत्र जो किसी ब्राह्मण द्वारा विषयासक्त होने पर किसी शूद्रा स्त्री से उत्पन्न किया जाता है वह पारशव कहलाता है, क्योंकि वह जीवित रहते हुए भी शव के समान है।

यह अविवाहिता शूद्रा स्त्री की ओर संकेत करता है। विवाहिता स्त्री का पति एक बार अभिगमन करे, यही शास्त्र विधि है। दूसरी बार सम्पर्क न करे।

याज्ञवल्क्य के मतानुसार भाई के पुत्रहीन मरने पर उसकी स्त्री ऋतुकाल में एक बार (अन्य पुरुष से) गमन करे।

मनु ने इस प्रसंग में कहा है कि-

वह देवर विधिपूर्वक इसे स्वीकार कर शुद्धिवाली उसके साथ प्रत्येक ऋतुकाल में एक-एक बार गर्भधारण होने तक संभोग करे।

प्रथम संसर्ग गर्भ धारण करने का हेतु है। सकृत-वचन दृष्टार्थ को बतलाता है अन्यथा अदृष्टार्थ की कल्पना हो जाएगी। लोक में भी देखते हैं कि संसर्ग से मास की गणना होती है। गंगलाचार के लिए नियत मास में पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार किए जाते हैं। अतः काम-वासना से उत्पन्न पुत्र अविवाहिता शूद्रा के लिए समझना चाहिए।

But a bastard should have a maintenance or the means of earning a livelihood; as Bṛhaspati directs. A passage of Manu cited. Also passage or Yājñavalkya.

A passage of Bṛhaspati expresses, "The virtuous and obedient son, borne by a Śūdra woman, to a man who has no other offspring, should obtain a maintenance; and let the kinsmen take the residue of the estate" : which signifies, that something should be given, to enable him to practice agriculture or some other profession adapted to earn a subsistence; but to one deficient in good qualities, food and other

necessaries, as means of subsistence, may be given, in consideration of his behaving with humility and obedience like a pupil. Thus a passage of Manu declares, "A son, begotten through lust on a Śūdra woman by a man of the priestly class, is even as a corpse though alive, and is thence called a living corpse (pāraśava)" These (two) passage imply, that the Śūdra woman is unmarried. For a husband is enjoined to approach his wedded wife once in the proper season; and conception takes place then only, not on subsequent intercourse. Thus Yājñvalkya says, "If a brother die without male issue, let another approach the widow once in the proper season; and Manu ordains, "Having espoused her in due form, she being clad in a white robe, and pure in her moral conduct, let him approach her secretly once in each proper season, until issue be had." The first intercourse being the cause of pregnancy, the mention of "once" may be intended for a secular purpose : else, it must be supposed to be meant for a spiritual end. Accordingly, in the practice of the world, months are counted from the day of the first intercourse, as well for regulating auspicious observances, as for determining the performance of ceremonies restricted to particular months, as the Puṅsavana and Simantonnayana. Hence, the expression "A son begotten through lust on a Śūdra," must relate to the child of an unmarried Śūdra.

शूद्रस्य पुनरपरिणीतदास्यादिशूद्रापुत्रपितुरनुमत्या पुत्रान्तर-तुल्यांशहरः।

तदाह मनुः–

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत्।
सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ।।29।।

(मनु. 9, 179)

शूद्र का अविवाहित शूद्रा में या दासी में उत्पन्न पुत्र पिता की अनुमति से पुत्रों के समान भाग प्राप्त करता है। मनु ने इस प्रसंग में कहा है कि–दासी में अथवा दास की पत्नी दासी में शूद्र से उत्पन्न पुत्र पिता

की अनुमति से विवाहिता स्त्री के पुत्रों के बराबर अंश प्राप्त करता है।

However, the bastard of a Śūdra man by a Śūdra woman may inherit, conformably with a passage of Manu.

But the son of a Śūdra, by a female slave or other unmarried Sūdra woman, may share equally with other sons, by consent of the father. Thus Manu says, "A son, begotten by a man of the servile class on his female slave, or on the female slave of his slave, may take a share of the heritage, if permitted : thus is the law established."

अनुमतिमन्तरेण त्वर्द्धांशहरः।

तदाह याज्ञवल्क्यः–

जातोऽपि दास्यां शूद्रेण कामतोंऽशहरो भवेत्।
मृते पितरि कुर्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागिनम्॥30॥
(2,34)

आज्ञा के बिना आधा भाग ग्रहण करता है। याज्ञवल्क्य का भी यही मत है कि– शूद्र से दासी में उत्पन्न पुत्र पिता की इच्छा से दाय अर्थात् सम्पत्ति को प्राप्त करता है। अतः पिता की मृत्यु के पश्चात् भाइयों को आधा भाग दे देना चाहिए।

Or he may take half a share according to Yājñavalkya.

Without such consent, he shall take half a share : as Yājñavalkya directs : "Even a son, begotten by a Śudra on a female slave, may take a share by the choice of the father; but, if the father be dead, the brethren should make him partaker nof half a share."

Notes : The brethren-The sons by a wedded wife. (Maheśvara).

परिणीतास्त्रीजातो भ्रातृशून्यस्तु सर्वमेव धनं गृह्णीयात्, यदि दौहित्रः नास्ति।

तदाह याज्ञवल्क्यः–

अभ्रातृको हरेत् सर्वदुहितृणां सुतादृते॥ (2, 135)

सति तु दौहित्रे समं विभज्य गृह्णीयात्, विशेषाश्रवणात्,

तथाह्य परिणीताजातत्वेऽप्यस्य पुत्रत्वात्, अपरस्य तु परिणीतासन्तानत्वेऽपि दौहित्रत्वात् तुल्यांशस्यैव युक्तत्वात्॥31॥

शूद्र का अविवाहिता से उत्पन्न पुत्र भ्रातृहीन होने पर सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त करता है यदि दौहित्र न हो। याज्ञवल्क्य का भी यही मत है—भाई न हो और पुत्री का पुत्र न हो तो सम्पत्ति दासी का पुत्र प्राप्त करता है। दौहित्र के होने पर दासीपुत्र उसके समान भाग प्राप्त करता है। इस प्रकार अविवाहिता से उत्पन्न पुत्र और विवाहिता की केवल दौहित्र सन्तान हो तो समान भाग प्राप्त करती है।

He shall share equally with a daughter's son, according to Yājñavalkya.

Begotten on a unmarried woman and having no brother, he may take the whole property : provided there be not a daughter's son. So Yājñavalkya ordains : "One, who has no brothers may inherit the whole property; for want of daughter's sons." But, if there be a daughter's son, he shall share equally with him : for no special provision occurs : and it is fit, that the allotment should be equal; since the one, though born of an unmarried woman, is son of the owner; and the other though sprung from a married woman, is only his daughter's son.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-
श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने नवमोऽध्यायः समाप्तः।

दशमोऽध्यायः

पुत्रिकौरसयोर्विभागः

सम्प्रति पुत्रिकाकरणानन्तरमौरसपुत्रे जाते तयोर्विभागः प्रतिपाद्यते॥1॥

अब पुत्रिका करने के उपरान्त औरस पुत्र उत्पन्न हो जाए तो उनके विभाग का प्रतिपादन करते हैं।

Partition between a legitimate son and an appointed daughter.

If a true legitimate son be born after the appointment of a daughter to raise up issue, the distribution to be made between them is here propounded.

तत्र पुत्रिकौरसयोस्तुल्यांशित्वम्, न पुनः पुत्रिकाया ज्येष्ठत्वेन विंशोद्धारार्हता।

तदाह मनुः–

पुत्रिकायां कृतायान्तु यदि पुत्रोऽनुजायते।
समस्तत्र विभागः स्यात् ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः॥

(मनु. 9, 134)

स्वतो ज्येष्ठपुत्रकार्याकरणात् स्वपुत्रद्वारेण पुत्रिकायाः पिण्डदातृत्वात्।

तदाह मनुः–

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात् स्वधाकरम्॥2॥

(मनु. 9, 127)

वहाँ पर पुत्रिका और औरस पुत्र में समान भाग होता है। पुत्रिका के ज्येष्ठ होने से वह विंशोद्धार के योग्य नहीं है यथा मनु ने कहा है कि–

पुत्रिका करने के बाद यदि पुत्र उत्पन्न हो जाए तो उन दोनों को समान भाग होता है क्योंकि स्त्री में ज्येष्ठता नहीं होती। अर्थात् ज्येष्ठ होने पर भी स्त्री को विंशोद्धार नहीं प्राप्त होता। जीमूतवाहन ने यहाँ पर कहा है कि पुत्रिका ज्येष्ठ पुत्र के कार्य स्वयं नहीं करती परन्तु उसका पुत्र ही पिण्ड दानादि किया करता है। यथा मनु ने कहा है कि–

पुत्रहीन पिता कन्यादान करते समय "इस कन्या से जो पुत्र होगा वह मेरी श्राद्धादि पारलौकिक क्रिया करने वाला होगा" ऐसा जामाता से कहकर उस कन्या को पुत्रिका करे।

They share equally, according to Manu. Her appointment described in another passage of Manu.

In such a case, the appointed daughter and the legitimate son take equal shares : nor is the appointed daughter entitled to a deduction of a twentieth part in right of seniority. So Manu declares : "A daughter having been appointed, if a son be afterwards born, the division of the heritage must, in that case, be equal : since there is no right of primogeniture for the woman." For the appointed daughter does not herself perform the functions of an eldest son; but, through her son, presents funeral oblations : as is hinted by Manu : "He, who has no son may appoint his daughter in this manner to raise up a son for him : saying, the child which shall be born of her, shall be mine for the pupose of performing my obsequies."

न च पुत्रिकायामेव प्रथमं पुत्रे जाते तदनन्तरमौरसपुत्रोत्पत्तौ, पुत्रिका-पुत्रस्य ज्येष्ठांशता भवेदिति वाच्यम्, तस्य पौत्रत्वात्।

तदाह मनुः–

'अकृता वा कृता वापि यं विन्देत् सदृशात् सुतम्।
पौत्री मातामहस्तेन दद्यात् पिण्डं हरेद्धनम्।। (मनु. 9,136)

पुत्रिका हि पुत्रः, तस्याः पुत्रः पौत्र एव भवति, तद्वांश्च

पौत्री भवतिन च ज्येष्ठत्वेन पौत्रस्यांशातिरेकः श्रुतोऽस्ति॥3॥

पुत्रिका का पुत्र यदि पहले उत्पन्न हो और बाद में औरस पुत्र उत्पन्न हो तब पुत्रिका पुत्र की ज्येष्ठता नहीं माननी चाहिए क्योंकि पुत्रिका पुत्र पौत्र के समान है। मनु का वचन है कि– पुत्रिका की गई अथवा न की गई पुत्री के गर्भ से समान जाति वाले पति के द्वारा उत्पन्न पुत्र से ही नाना पुत्रवान् होता है। वह नाना के लिए पिण्डदान करे तथा पुत्र उसका सब धन प्राप्त करे।

पुत्रिका ही पुत्र है, उसका पुत्र पौत्र ही होता है और उससे युक्त पिता पौत्र वाला होता है। ज्येष्ठ होने से पौत्र को अतिरिक्त अंश का विधान नहीं है।

Her son is considered as a son's son.

It must not be supposed, that if the appointed daughter first bear a son an a legitimate son of her father be afterwards born, her son should have the allotment of an eldest son : for he is considered as a son's son. Manu intimates as much, saying, "By that male child, whom a daughter, whether formally appointed or not, shall produce from an husband of an equal class, the maternal grandfather becomes grandsire of a son's son : let that son give the funeral oblation and possess the inheritance." For the appointed daughter is, as it were, a son (putra); and her son is deemed a son's son (pautra); and her father, to whom he thus appertains, becomes grandsire of a son's son. Now there has not been any mention of a peculiar allotment in right of primogeniture for the son's son.

यत्तु वसिष्ठवचनम्–

अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलङ्कृताम्।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति॥

(व.17, 116)

पुत्रिकापुत्रस्यैव पुत्रत्वं वदति, तेन पुत्रिकायास्ततपुत्रस्य च पुत्रत्वम्। तन्न। मनुविरोधात्, पिण्डदानमात्रयोगात् पुत्रत्वमस्य

गौणम्, तद्द्वारेणैव पुत्रिकाया पिण्डदातृत्वाद् एकस्य स्वतः, अन्यस्य तद्योगात्॥4॥

वसिष्ठ का वचन है कि भाई से हीन अलंकृत इस कन्या को मैं तुम्हारे लिए देता हूँ इससे जो पुत्र हो, वह मेरा पुत्र हो। इस प्रकार पुत्रिका का पुत्र ही पुत्र कहा जाता है उसके पुत्र से ही पुत्रत्व है। अतएव दोनों ही पुत्र हुए। ऐसा जो कहा जाता है वह ठीक नहीं है क्योंकि मनु के वचन के साथ विरोध हो जाएगा पुत्रिका पुत्र के माध्यम से पिण्डदान करती है अतएव पुत्रिका में पुत्रत्व गौण है। पुत्रिका का पुत्र स्वयं पिण्डदान करता है अतः उसमें पुत्रत्व मुख्य है। इस प्रकार एक तो स्वयं पुत्रिका का पुत्र पिण्डदान करता है और दूसरा (पुत्रिका) पुत्र के माध्यम से पिण्डदान करती है।

He is figuratively called son in a passage of Vasiṣṭha.

As for the text of Vasiṣṭha, which declares the son of an appointed daughter to be an adopted son : ("This damsel, who has no brother, I will give unto you, decked with ornaments; the son, who may be born of her, shall be my son"), whence it appears, that both the appointed daughter and her son are (denominated) sons : this designation of him as a son must (since it contradicts Manu; and since the oblation of a funeral cake is the only quality of a son, which he possesses); be figurative : for, through him the appointed daughter, offers the funeral oblations; and thus one actually is such, and the other is so by his means.

पुत्रिकौरसयोस्तु सवर्णत्वे सति पूर्वोक्तविभागो बोद्धव्यः असवर्णत्वे तु तयोरसवर्णौरसपुत्रवदेव विभागः पुत्रिकौरसयोः समानत्वात्॥5॥

पूर्वोक्त विभाग सवर्ण पुत्रिका और औरस पुत्र के लिए कहा है। उन दोनों के असवर्ण होने पर असवर्ण औरस पुत्र के समान विभाग होता है। पुत्रिकापुत्र और औरस पुत्र समान है।

This is restricted to equal class. Else the true son has the allotment of his tribe.

The distribution before mentioned must be understood in the case where the legitimate son and the appointed daughter are of the same tribe : but, if they be of dissimilar classes, a distribution between them must be made as between legitimate sons appertainring to different classes : for the true son and the appointed daughter are equal.

यदि च कृतापि पुत्रिका पुत्रमनुत्पाद्यैव विधवा भूता, वन्ध्यात्वेन हि वाऽवधृता, तदा तस्याः पितृधने अनधिकारः, स्वधाकरपुत्रार्थं पुत्रिकायाः कृतत्वात्, तदभावे दुहित्रन्तर-तुल्यत्वात्।।6।।

पुत्रिकाकरण के अनन्तर पुत्रोत्पत्ति से पूर्व यदि वह पुत्री विधवा हो जाती है या बांझ हो जाती है तो उसका पिता के धन में अधिकार नहीं होता, वह अन्य दुहिताओं के समान ही मानी जाती है क्योंकि पुत्रिका बनाने का मुख्य उद्देश्य पुत्र द्वारा पिण्डदान करना होता है।

If she be barren or a widow, the appointment gives no right.

But, if a daughter, being actually appointed, become a widow without having borne a son, or if she be ascertained to be barren, she has not, in that case, a right to her father's wealth : since the appointment was made for the sake of a son, who may perform obsequies; and on failure of that, she is similar to any other daughter.

औरसेन तु क्षेत्रजादीनां विभागे, ये पितृसवर्णा औरसपुत्रा-श्चोत्तमसवर्णाः पुत्रिकापुत्र–क्षेत्रज–कानीन– गूढ़जापविद्ध–सहोढ़ज–पौनर्भव–दत्तक–स्वयमुपागत–कृतक–क्रीताः पुत्राः ते औरसपुत्रभागस्य तृतीयांशभागिनः।

तदाह द्वादशपुत्रानभिधाय देवलः–

एते द्वादश पुत्रास्तु सन्तत्यर्थमुदाहृताः।
आत्मजाः, परजाश्चैव, लब्धाः, यादृच्छिकास्तथा।।

तेषां षट् बन्धुदायादाः पूर्वेऽन्ये पितुरेव षट्।
विशेषश्चापि पुत्राणामानुपूर्व्या विशिष्यते॥
सर्वे ह्यनौरसा ह्येते पुत्रा दायहराः स्मृताः।
औरसे पुनरुत्पन्ने तेषु ज्यैष्ठ्यं न विद्यते॥
तेषां सवर्णा ये पुत्रास्ते तृतीयांशभागिनः।
हीनास्तमुपजीवेयुर्ग्रासाच्छादनसम्भृताः॥7॥

औरस के साथ क्षेत्रजादि के विभाग में जो पिता के समान वर्ण के और औरस पुत्र से उत्तम वर्ण के होते हैं उन पुत्रों को अर्थात् पुत्रिका पुत्र-क्षेत्रज-कानीन, गूढ़न-अपविद्ध-सहोढज-पौनर्भव-दत्तक-स्वयमुपागत-कृतक एवं क्रीत को औरस पुत्र का तृतीय भाग मिलता है। देवल ने बारह प्रकार के पुत्रों के विषय में कहा है कि– ये बारह प्रकार के पुत्र सन्तान प्राप्ति के लिए हैं। उन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया है– आत्मज, परज, लब्ध और यादृच्छिक। इनमें पूर्व के छः बन्धुदायाद होते हैं अर्थात् बन्धु आदि सपिण्डों के दाय को ग्रहण करते हैं और अन्य छः पिता के दाय को ग्रहण करते हैं। इन पुत्रों में क्रमानुसार वैशिष्टय बताया गया है। औरस पुत्र के न होने पर ये पुत्र पिता के सम्पूर्ण धन को प्राप्त करते हैं। औरस पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर उनमें ज्येष्ठता का विधान नहीं है। उनमें जो सवर्ण पुत्र हैं वे तृतीयांश के भागी होते हैं और जो हीन वर्ण के हैं उनको भोजन-वस्त्र देकर भरण-पोषण करना चाहिए।

Other adopted sons, sharing with a true son, take a third; according to Devala.

In a partition among sons of the wife and the rest with a true legitimate son, such of them, as are of the same class with the (adoptive) father and superior by tribe to the true son, whether they be sons of an appointed daughter, or issue of the wife, or offspring of an unmarried damsel, or secretly produced, or abandoned (by the natural parents) or received with a bride, or born of a twice-married woman, or given or self-given, or made or bought; shall be entitled to the third part of the share of a true son. So Devala, after having described the twelve sons expressly declares, "These

twelve sons have been propounded for the purpose of offspring : being sons begotten by a man himself, or procreated by another man or received (for adoption), or voluntarily given. Among these, the first six are heirs of kinsmen and the other six inherit only from the father : the rank of sons is distinguished in order as enumerated. All these sons are pronounced heirs of a man who has no legitimate issue by himself begotten : but, should a true legitimate son be afterwards born, they have [illegible] Such among them, as are of equ[illegible] a third part as their allot[illegible] st live dependent on hin[illegible]

औरसादयः ष[illegible] नामपि सपिण्डादीनाम् दा[illegible] यहराः न सपिण्डादीनाम्॥8॥

औरसादि छः प्रकार के [illegible] ही ग्रहण नहीं करते अपितु बन्धुओं के सपिण्डादियों के [illegible] धन को ग्रहण करते हैं। अन्य छः प्रकार के पुत्र केवल पिता के दाय को ही ग्रहण करते हैं सपिण्डादि के नहीं।

Six heirs to kinsmen; and six heirs to the adopter.

The true legitimate son and the rest, to the number of six, are not only heirs of their father, but also heirs of kinsmen; that is, of sapiṇḍas and other relations. The others are successors of their (adoptive) father, but not heirs of collateral relations (Sapiṇḍas).

औरसपुत्रशून्यस्य पितुः सर्वहराः, औरसे सति ये पितृसवर्णास्ते तृतीयांशहराः॥9॥

औरस पुत्र के अभाव में ये पुत्र पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति को ग्रहण करते हैं। औरस पुत्र के हो जाने पर पिता के सवर्ण पुत्र तृतीयांश प्राप्त करते हैं।

They share with a true son.

They take the whole estate of a father, who has no legiti-

mate issue by himself begotten; but, if there be a true son, such of them, as are of the same tribe with the father, take a third part.

पुत्रिकाया अपि औरसतुल्यत्वादयमेव भागक्रमः॥10॥

पुत्रिका का भी औरस पुत्र के बराबर भाग प्राप्ति का नियम है।

Also with the appointed daughter.

Since the appointed daughter is equal to the true legitimate son, the same order of distribution must be observed in her case.

ये तु पितुहीनवर्णाः, औरसपुत्राच्चोत्तमवर्णाः, ते औरसस्य पञ्चमं षष्ठं वांशम् गुणवदगुणतया गृहणीयुः।

यथा मनुः–

षष्ठन्तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात् पैतृकाद्धनात्।
औरसो विभजन् दायं पित्रा पञ्चममेव वा॥11॥

इति। (मनु. 9-154)

जो पिता से हीनवर्ण और औरस-पुत्र से उत्तम वर्ण के हैं वे औरस पुत्र का छठा या पाँचवा अंश क्रमशः गुणवान् या अगुणवान् होने पर प्राप्त करते हैं। मनु का भी यही मत है कि- पिता के धन में से विभाजन करते हुए औरस पुत्र क्षेत्रज पुत्र को षष्ठांश या पंचमांश दे देवे।

Another allotment stated by Manu.

But those (adopted sons), who are inferior by class to the father, yet superior to his legitimate son, shall take the fifth or the sixth part of a legitimate son's share, according to their good qualities, or the want of such qualities. Thus Manu syas : "Let the legitimate sons, when dividing the paternal heritage, give a sixth part, or a fifth, of the patrimony, to the son of the wife."

देवलवचनेन सर्वेषां क्षेत्रजतुल्यत्वाभिधानात् मनुवचने क्षेत्रजपदमुपलक्षणम्॥12॥

देवल के वचनानुसार सब पुत्र क्षेत्रज के बराबर है। मनु के अनुसार क्षेत्रज पद उपलक्षण स्वरूप है।

Since all adopted sons are, in Devala text (see 7), equal to the wife's son, the term kṣetraja (son of the wife) is in Manu's text, indefinite (and comprehends) other descriptions of sons).

ये तु पितुरौरसाच्च भ्रातुर्हीनवर्णास्ते ग्रासाच्छादन-मात्राधिकारिणः।

तदाह मनुः–

'एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम्'॥

(मनु. 9, 163)

तथा कात्यायनः–

'उत्पन्ने त्वौरसे पुत्रे तृतीयांशहराः स्मृताः।
सवर्णा असवर्णास्तु ग्रासाच्छादनभागिनः'॥13॥

जो पुत्र पिता तथा औरस भाइयों से हीन वर्ण के होते हैं उन्हें भोजनाच्छादन प्राप्त होता है। इस प्रसंग में मनु का मत है कि–

केवल औरस पुत्र ही पिता के धन का स्वामी होता है। शेष पुत्रों को दोषनिवृत्ति के लिए भोजन वस्त्र आदि देना चाहिए। इसी प्रकार कात्यायन का मत है कि– औरस पुत्र के पैदा होने पर अन्य सजातीय पुत्र तृतीय अंश के भागी होते हैं और विजातीय को भोजन वस्त्र ही मिलता है।

Food and raiment allowed, if they are of lower tribes, as directed by Manu; and by Kātyāyana.

But such as are inferior by class to the father, and to their brother, his legitimate son, are entitled only to food and raiment. So Manu declares : The legitimate Son is the sole heir of his father's estate; but, for the sake of pity, he should give a maintenance to the rest. "Thus Kātyāyana says, "If a legitimate son be born, the rest or pronounced sharers

of a third part, provided they belong to the same tribe (with the father); but, if they be of a different class, they are entitled to food and raiment only."

मनुवचने शेषपदम्, कात्यायनवचने चासवर्णपदं हीनवर्णपदम्, देवलेनैकवाक्यत्वात्॥14॥

मनु के वचन में 'शेष' पद और कात्यायन का 'असवर्ण' पद हीन वर्ण को बतलाते हैं। देवल के एक वचन से भी यही बोध होता है।

Exposition of the passages.

The term "the rest" in the text of Manu, as well as the phrase "if they be of a different class" in that Kātyāyana, signify one of inferior tribe : conformably with the text of Devala. (see 7)

अनियोगोत्पन्नक्षेत्रजस्यौरसेन सह विभागमाह मनुः–

यद्येकऋक्थिनौ स्यातामौरस-क्षेत्रजौ सुतौ।
यद् यस्य पैतृकं ऋक्थं स तद् गृह्णीत नेतरः॥15॥

(मनु. 9, 162)

अनियोग से उत्पन्न क्षेत्रज और औरस पुत्र के विभाग को मनु ने कहा है–यदि एक व्यक्ति के धन के अधिकारी औरस तथा क्षेत्रज दोनों ही पुत्र हों तो वह धन जिसके पिता का है, वही अर्थात् औरस पुत्र ही ग्रहण करे, दूसरा अर्थात् क्षेत्रज पुत्र नहीं।

Special case of a true son and a son of the wife, stated by Manu.

Manu states the distribution between a true son, and the issue of the wife produced without due authority. "If there be two sons, a legitimate one, and the son of a wife, claiming the estate of the same person, each shall take the property which belonged to his father; and not the other."

यस्य बीजाद् यो जातः, स तस्य धनं गृह्णीयात्, इतरे अन्यबीजजाताः न गृह्णीयुरित्यर्थः।

अत एव नारदः–

द्वौ सुतौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने।
तयोर्यद् यस्य पित्र्यं स्यात् सतद् गृह्णीत नेतरः॥16॥

(मनु. 9, 191)

जीमूतवाहन ने यहाँ पर कहा है कि जिसके बीज से जो उत्पन्न होता है वह उसी के धन को ग्रहण करता है, दूसरे के बीज से उत्पन्न पुत्र नहीं ग्रहण करता। नारद ने कहा है कि– दो पिताओं से उत्पन्न दो पुत्र यदि स्त्री के धन के विषय में विवाद करें तो जो धन जिस पिता ने स्त्री को दिया है वही पुत्र धन को प्राप्त करता है, अन्य नहीं।

Exposition of the text. A passage of Nārada cited.

Let each receive the wealth of him, from whose seed be sprung : and let not the other take it, who sprung from the seed of another person. Accordingly Nārada says, "if two sons, begotten by two fathers, contend for the wealth of the woman, let each of them take that which was his father's property; and not the other."

यत् पितृदत्तं यद्धनं स्त्रियाः, तत्पुत्रस्तद्बीजजस्तद्धनं गृह्णीयात्, नान्यः इत्यस्तु किं विस्तरेण॥17॥

पिता ने स्त्री को जो धन दिया है, उसके पुत्र अपने पिता के धन को ग्रहण करते हैं, अन्य के नहीं। अधिक विस्तार से क्या।

And explained.

The wealth, appertaining to the woman, which was given to her by respective fathers, let the son of each father severally take : and not the other. It would be needless to enlarge.

**इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-
श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे
पुत्रिकौरसयोर्विभागो नाम दशमोऽध्यायः समाप्तः।**

एकादशोऽध्यायः

प्रथमपरिच्छेदः

अपुत्रधनविभागः

अथापुत्रस्य मृतस्य धने परस्परविरुद्धवचनदर्शनेन व्याख्यातारः विवदन्ते॥1॥

अब अपुत्र मृत के धन में विभिन्न व्याख्याकारों के परस्पर विरुद्ध वचनों का उल्लेख करेंगे। इस प्रसंग में बृहस्पति ने प्रथम पत्नी को उत्तराधिकारी घोषित करते हुए कहा है कि–

Opinions vary as to the order of succession on failure of male issue.

In regard (to succession) to the wealth of a deceased person, who leaves no male issue, authors disagree, in consequence of finding contradictory passages of law.

तथा बृहस्पतिः–

'आम्नाये स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभिः।
शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्यफले समा॥
यस्य नोपरता भार्या देहार्धं तस्य जीवति।
जीवत्यर्धशरीरेऽर्थं कथमन्यः समाप्नुयात्॥
सकुल्यैर्विद्यमानैस्तु पितृ-मातृ-सनाभिभिः।
असुतस्य प्रमीतस्य पत्नी तद्भागहारिणी॥
पूर्वं प्रणीताग्निहोत्रं मृते भर्तरि तद्धनम्।
विन्देत् पतिव्रता साध्वी धर्म एष सनातनः॥
जङ्गमं स्थावरं हेम कुप्यं धान्यं रसोऽम्बरम्।
आदाय दापयेच्छ्राद्धं मास-षाण्मासिकादिकम्॥

पितृव्य-गुरु-दौहित्रान् भर्तुः स्वस्रीय-मातुलान्।
पूजयेत् कव्य-पूर्ताभ्यां वृद्धानाथातिथीन् स्त्रियः॥
तत्सपिण्डा बान्धवा वा ये तस्याः परिपन्थिनः।
हिंस्युर्धनानि तान् राजा चौरदण्डेन शासयेत्'॥2॥

वेद में, स्मृतियों में, लोकाचार में पत्नी विद्वानों द्वारा पति का आधा शरीर कही गई है, पुण्य एवं पाप के फल वह पति के साथ तुल्य रूप में ग्रहण करती है। जिस पुरुष की पत्नी मृत नहीं, उसकी देह का आधा भाग जीवित है, उसके जीवित रहते हुए कोई दूसरा व्यक्ति उसके धन को कैसे प्राप्त कर सकता है? अतएव सकुल्य, पिता, माता, सहोदर भाई आदि के रहते हुए भी अपुत्र मृत पुरुष की सम्पत्ति उसकी पत्नी को मिलती है। यदि पति से पूर्व पत्नी की मृत्यु हो जाती है तो पत्नी उसका अग्निहोत्र ले लेती है–(देखिए–धर्मशास्त्र का इतिहास द्वितीय भाग–पृ. 907) किन्तु यदि पति की उससे पूर्व मृत्यु हो जाती है तो वह पति-शुश्रूषा में निरत पत्नी उसकी सम्पत्ति को प्राप्त करती है, यही सनातन धर्म है। चल एवं अचल सम्पत्ति, सोना, साधारण धातु आदि, अन्न, पेय पदार्थ, वस्त्र प्राप्त कर लेने के उपरान्त उसे मासिक, षाण्मासिक एवं वार्षिक श्राद्ध करना पड़ता है। उसे अन्त्येष्टि क्रिया-कर्मों एवं पूर्त्त द्वारा अपने पति के चाचा गुरु, दौहित्र मामा, वृद्ध या असहायों का, अतिथियों एवं स्त्रियों का सम्मान करना चाहिए। यदि सपिण्ड बन्धु या शत्रु इस सम्पत्ति को हानि पहुँचाये तो राजा उन्हें चोरों के समान दण्ड दे।

Bṛhaspati declares the wife to have a preferable title; before parents and collaterals.

Thus Bṛhaspati says, "In Scripture and in the code of law, as well as in popular practice, a wife is declared by the wise to be half the body of her husband, equally sharing the fruit of pure and impure acts. Of him, whose wife in not deceased, half the body survives. How then shuold another take his property, while half his person is alive? Let the wife of a deceased man, who left no male issue, take his share notwithstanding kinsmen, a father, a mother, or uterine

brother, be present. Dying before her husband a virtuous wife partakes of his consecrated fire : or, if her husband die (before her, she shares) his wealth : this is a primeval law. Having taken his movable and immovable property, the precious and the base metals, the grains, the liquids and the clothes, let her duly offer his monthly, half-yearly and other funeral repeats. With presents offered to his manes and by pious liberality, let her honour the paternal uncle of her husband, his spiritual parents and daughter's sons, the children of his sisters, his maternal uncles and also ancient and unprotected persons, guests and females (of the family). Those near or distant kinsmen, who become her adversaries, or who injure the woman's property, let the king chastise by inflicting on them the punishment of robbery."

तदेतैः सप्तवचनैरपुत्रस्य मृतस्य यद् यावद्धनं स्थावर-जङ्गम-हेमादिकम् भर्तुः, तत्सर्वं सोदर-भ्रातृ-पितृव्य-दौहित्रादिषु सत्स्वपि पत्न्या एवेति। ये तु तद्धनग्रहणे प्रतिपक्षाः, स्वयमेव वा गृह्णन्ति। ते चौरवद्दण्डनीया इति ब्रुवाणो बृहस्पतिः पत्नीसद्भावे पितृ-भ्रातृप्रभृतीनां धनाधिकारं सुदूरम् निरस्यति॥3॥

बृहस्पति के उपर्युक्त सात वचनों द्वारा यह बतलाया गया है कि पुत्रहीन व्यक्ति के मर जाने पर उसकी चल एवं अचल सम्पत्ति पर सहोदर भाई-चाचा एवं दौहित्र आदि के विद्यमान होने पर भी पत्नी का अधिकार है। जो प्रतिपक्षी उसके धन को ग्रहण करते हैं अथवा स्वयं ग्रहण करते हैं उन्हें चौर के समान दण्ड का विधान बतलाकर पत्नी के रहते हुए पिता-भाई आदि के धनाधिकार का दूर से ही निषेध किया है।

The widow succeeds to her husband if there be no sons.

By these seven texts Bṛhaspati having declared that the whole wealth of a deceased man, who had to male issue, as well the immovable as the movable property, the gold and other effects, shall belong to his widow, althogh there be brothers of the whole blood, paternal uncles, (daughters), daughter's sons and other heirs; and having directed, that

any of them. who become her competitors for the succession, or who themselves seize the property, shall be punished as robbers; totally denies the right of the father, the brothers and the rest, to inherit the estate if a widow remain.

Notes : By these seven texts- The passage above cited comprises seven stanza.

तथा याज्ञवल्क्यः–

'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा।
तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः।।
एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः'।।

(याज्ञ. 2. 136. 137)

अनेन पूर्वपूर्वस्याभावे परपरस्याधिकारं वदन् सर्वेभ्यः पूर्वं पत्न्या एव धनाधिकारमभिधत्ते।।4।।

याज्ञवल्क्य का भी इस प्रसंग में मत है कि–

पुत्रहीन व्यक्ति के मर जाने पर पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भाइयों के पुत्र, गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति, बन्धु, शिष्य और ब्रह्मचारी में पहले-पहले के न होने पर उसके बाद वाले धन के अधिकारी होते हैं। यह विधि सभी वर्णों के लिए है। इस प्रकार पूर्व-पूर्व के अभाव में बाद वाले का अधिकार बताते हुए सबसे पहले पत्नी का ही धन में अधिकार माना है।

She is first in Yājñavalkya's enumeration.

In like manner Yājñavalkya says, "The wife and the daughters, also both parents, brothers likewise and their sons, gentiles, cognates, a pupil and a fellwo student : on failure of the first among these, the next in order is indeed heir to the estate of one, who departed for heaven leaving no male issue. This rule extends to all persons and classes." Thus affirming the right of the last mentioned on failure of the preceding, the sage propounds the succession of the widow in preference to all the other heirs.

तथा विष्णुः–अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि, तदभावे दुहितृगामि, तदभावे पितृगामि, तदभावे मातृगामि, तदभावे भ्रातृगामि, तदभावे भ्रातृपुत्रगामि, तदभावे सकुल्यगामि, तदभावे बन्धुगामि, तदभावे शिष्यगामि, तदभावे सहाध्यायिगामि, तदभावे ब्राह्मणधनवर्ज राजगामि॥5॥ (विष्णु 17-4-13)

विष्णु का भी यही मत है कि– पुत्रहीन व्यक्ति का धन, पत्नी, पत्नी के अभाव में दुहिता, इसके पश्चात् पिता तदुपरान्त माता, इसके अभाव में भाई, भाई के अभाव में भाई के पुत्र, इनके अभाव में सकुल्य, इनके अभाव में बन्धु, बन्धु के अभाव में शिष्य और शिष्य के अभाव में सहाध्यायी प्राप्त करता है। इन सबके अभाव में ब्राह्मण के धन को छोड़कर शेष वर्णों के धन को राजा प्राप्त करता है।

And first in Viṣṇu's.

So Viṣṇu ordains : "The wealth of him, who leaves no male issue, goes to his wife; on failure of her, it devolves on daughters; if there be none, it belogs to the father; if he be dead, it appertains to the mother; on failure of her, it goes to the brothers; after them, it descends to the brother's sons; if none exist, it passes to the kinsmen (bandhu); in their default, it devolves on relations (sakulya) : (failing them, it belongs to the pupil) : on failure of these, it comes to the fellow-student : and for want of all those heirs, the property escheats to the king; excepting the wealth of a Brāhmaṇa.

अनेनापि क्रमपरेण प्रथमं पत्न्या एव धनाधिकारो निरूपितः। न च वर्तनोपयुक्तधनमात्राधिकारार्थं पत्नीवचनमिति वाच्यम्। सकृच्छ्रुतस्य धनपदस्य पत्न्यपेक्षमकृत्स्नपरत्वम्, कृत्स्नपरत्वञ्च भ्रात्राद्यपेक्षमिति तात्पर्यभेदस्यान्याय्यत्वात्। अतः कृत्स्नधनगोचर एव पत्न्या अधिकारो वाच्यः॥6॥

इस प्रकार इस क्रम में भी प्रथम पत्नी का ही धनाधिकार बतलाया गया है। 'पत्नी' इस वचन में पत्नी का केवल वर्तनोपयेगी धनमात्र में

अधिकार नहीं समझना चाहिए। एक बार प्रयुक्त हुआ धन पद एक स्थान पर पत्नी के लिए अकृत्स्न अर्थ देता है और दूसरे स्थान पर भाइयों आदि के लिए कृत्स्न अर्थ देता है–ऐसा तात्पर्य में भेद करना अन्याय है। अतः सम्पूर्ण धन में पत्नी का अधिकार कहना उचित प्रतीत होता है।

The passages above cited do not allot her a mere subsistence.

By this text, relating to the order of succession, the right of the widow, to succeed in the first instance, is declared. It must not be alleged, that the mention of the widow is intended merely for the assertion of her right to wealth sufficient for her subsistence. For it would be irrational to assume different meanings of the some term used only once, by interpreting the word wealth as signifying the whole estate in respect of brothers and the rest and not the whole estate in respect of the wife. Therefore, the widow's right must be affirmed to extend to the whole estate.

तथा वृद्धमनुः–

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता।
पत्न्येव दद्यात् तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च।।7।।

वृद्धमनु का भी यही कथन है कि– पुत्रहीन पत्नी अपने पति की शय्या को पवित्र रखती हुई तथा व्रत करती हुई अपने पति का पिण्डदान करती है ओर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति को ग्रहण करती है।

But her husband's share, as in a passage of Bṛhat Manu.

Thus Bṛhat Manu says, "The widow of a children man, keeping unsullied her husband's bed, and persevering in religious observances, shall present his funeral oblation and obtain (his) entire share."

तत्पिण्डमित्यतस्तदित्यनुषज्यते तच्छब्देन भर्तुः परामर्शात् भर्तुः कृत्स्नमंशं पत्नी लभेत, न तु स्वांशकृतस्नमित्यर्थः। कृत्स्नस्वांशोद्देशेन लभेतेति विधानानुपपत्तेः स्वामिभाव-ज्ञापनार्थत्वादस्य। न च स्वांशे स्वामिभावज्ञापनमर्हति

स्वांशज्ञापनेनैव ज्ञातत्वात्।।8।।

वृद्धमनु के श्लोक में आए हुए तत्पिण्डं शब्द में 'तत् शब्द पति के लिए प्रयुक्त हुआ है और वही 'कृत्स्नमंशं' के साथ भी अन्वित होता है। अतएव पत्नी पति के सम्पूर्ण, धन को प्राप्त करती है। यहाँ 'कृत्स्नम्' शब्द स्वांश के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'कृत्स्नस्वांशोद्ददेशेन लभेतेति' में पत्नी स्वांश को प्राप्त करे–यदि ऐसा अर्थ किया जाए तो यह भी उचित नहीं क्योंकि वृद्ध मनु के वचन में पत्नी का पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर स्वत्व बतलाया गया है स्वांश पर नहीं। क्योंकि स्वांश से तो पहले ही स्वामिभाव की प्रतीति होती है।

Exposition of the text.

"His" is repeated or understood from the words "his funeral oblation;" for that term alludes to her husband. The meaning therefore is 'the wife shall obtain her husband's entire share'; not 'she shall obtain her own entire share'; for the direction, that 'she shall obtain,' would be impertinent, in respect of her own complete share. Since the intention of the text is to declare a right of property, it ought not to be interpreted as declaring such right in regard to the person's own share; for that is known already from the enunciation of it as that person's share (and it need not therefore be declared).

न च ग्रहणविधानार्थम् तदिति वाच्यम्। स्वधनग्रहणस्य रागादेव प्राप्तत्वात्।।9।।

यदि यह कहा जाए कि 'लभेत' शब्द स्वांश को अपनी इच्छा से विनियोग करने के लिए प्रयुक्त हुआ है, तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि 'स्वांश' में यथेष्ट विनियोग पहले से ही विद्यमान है।

A different interpretation refuted.

Nor should it be said, that the intention of the text is to authorise the taking (or using) of the goods (not to declare the right of property); for the taking or using of one's own property is a matter of course.

न च नियमार्थम् वचनमिति वाच्यम्, अदृष्टार्थत्वापत्तेः। नियमे न नियोज्यादिकल्पनमपि स्यात्॥10॥

यदि 'स्वांशं गृह्णीयात्' से नियम की प्राप्ति स्वीकार की जाए तो यह भी उचित नहीं है क्योंकि नियम से अदृष्ट फल की प्राप्ति होती है जबकि पत्नी के विषय में यह नियम चरितार्थ नहीं होता क्योंकि यहाँ तो साक्षात् दृष्ट फल की प्राप्ति है। इसके साथ ही अदृष्ट की कल्पना करने से नियोज्यादि की कल्पना करनी पड़ेगी।

The text is no injunction.

Nor can the text be supposed to intend a positive injunction (that she should take her own share). For its purpose would be spiritual; and, if it were an injunction, a person who commanded and other particulars (as in the omission) must be inferred.

यच्चोक्तं न ह्यनन्धादिः पुत्रोंऽशं कृत्स्नं लभेतेत्युक्ते पित्र्यं कृत्स्नमंशमिति, किं तर्हि कृत्स्नं स्वांशमिति। तथात्रापि कृत्स्नं स्वांशापेक्षमिति। तन्न; अनन्धादिः पुत्रोंऽशं कृत्स्नं लभेतेति वचनाभावात्, दृष्टान्तानुपपत्तेः।

भवतु वा, तथापि पूर्वोक्तहेतुना स्वांशं लभेतेति पित्र्यनुपपत्तेः पित्रंशापेक्षमेव वर्णनं युक्तम्॥11॥

यह जो कहा गया है कि जो पुत्र अन्धा नहीं है वह अपने सम्पूर्ण अंश को प्राप्त करता है, पिता के सम्पूर्ण अंश को नहीं। उसी प्रकार पत्नी भी कृत्स्न स्वांश को प्राप्त करती है। लेकिन यह वचन ठीक नहीं है क्योंकि "अनन्धादि पुत्रोऽशं कृत्स्नं लभेत' इस प्रकार के वचन का अभाव होने से यह दृष्टान्त अनुपयुक्त है। इस प्रकार पूर्वोक्त हेतु से पत्नी कृत्स्न स्वांश को प्राप्त करती है यह भी अयुक्त है। इस प्रकार निष्कर्ष यह है कि जिस प्रकार पुत्र पिता के कृत्स्न अंश को प्राप्त करता है उसी प्रकार पुत्रहीन पति के सम्पूर्ण धन को पत्नी प्राप्त करती है।"

Nor can it intend the allotment of a share only.

It is alleged, that, as the passage, "let a son, who is nei-

ther blind nor otherwise disqualified, take an entire share," (the meaning is), not 'his father's entire share' but 'his own complete allotment'; so, in this instance likewise, the terms are (interpreted as) relative to the widow's own complete allotment. That is not accurate; for since there is no such passage of law as that stated, the example is impertinent; or admitting that there is, still, since for the reason before mentioned it would be impertinent as a precept, (the alleged example) will be rightly interpreted as relative to the father's share.

अत एव सर्वत्रान्यधन एव अन्यस्वत्वसम्बन्धज्ञापनं मुनयः कुर्वन्ति। यथा पितृधने पुत्राणाम्, अपुत्रधने पत्न्यादीनामित्यादि। न पुनः स्वांशग्रहणे प्रेरयन्ति॥12॥

मुनियों के मतानुसार अन्य के धन में अन्य का स्वत्व होता है यथा पिता के धन में पुत्रों का, अपुत्र के धन में पत्नी आदि का स्वत्व होता है। नियम स्वांश में स्वत्व बतलाने के लिए नहीं बनते अपितु सम्पूर्ण धन में अधिकार का निर्देश करते हैं।

Authors are not at the pains of declaring a man's right of property in that which is his own.

Accordingly (since the scope of the precept cannot be to declare a right of property in a person's own wealth); the sages do, in all instances, propound the right of a different person (as heir), to the wealth of another (who is his predecessor); for example, that of sons to the paternal estate; and that of widows and the rest to the goods of a man who leaves no male issue; and so in other cases. They do not needlessly bid a person take his own share.

यच्च सम्बन्धिशब्दत्वेन स्वसम्बन्ध्युपस्थापकत्वम्। यथा मातेति न परमाताऽवगम्यते इत्युक्तम्, तदप्ययुक्तम्, अनुपात्तसम्बन्धिविषयत्वात् तस्य, न हि डित्थस्य मातरमानयेत्युक्ते प्रयोज्यस्य माता प्रतीयते, प्रयोजकस्य वा। तद्वदत्रापि तत्पिण्डमिति तत्पदोपात्तत्वात् सम्बन्धिनः कथं

पत्यपेक्षिता। विधानानुपपत्तिश्च पूर्वमुक्तैव॥13॥

यह जो आक्षेप किया गय है कि संबन्धी शब्द से स्व सम्बन्धी का बोध होता है जैसे माता से स्वमाता की ओर निर्देश होता है, विमाता का नहीं। लेकिन यह ठीक नहीं है क्योंकि इस नियम का औचित्य वहीं है जहाँ स्व संबन्धी का निर्देश नहीं होता। परन्तु जब यह कहा जाता है कि 'डित्थस्य मातरमानय' तब इस वचन से डित्थ की माता का ही सम्बन्ध होता है प्रयोज्य या प्रयोजक की माता का नहीं। अत: यहाँ पर भी 'ततपिण्डं' में तत् शब्द स्व संबन्धी (पति) का निर्देश करते हुए पत्नी का सम्पूर्ण अधिकार बतलाता है।

The text does not intend her share.

It is alleged, that by the mention of the relative, the correlative is suggested; and thus, when the word mother is (singly) employed, it is not understood to intend a stranger's mother. This object is irrelevant; for the maxim is applicable where the correlative is not specified : and thus, when it is said "call Diṭṭha's mother," neither the mother of the messenger, nor of the sender, is supposed to be meant. In like manner, since the correlative is here indicated by the pronoun in the phrase 'his funeral oblation," how can (the word share) refer to the wife? And the incongruity of supposing the text to be an injunction, has been already shown (see 10).

तस्मात् कृत्स्नतदंशग्रहणमेव पत्न्या वृद्धमनुर्बोधयति॥14॥

इस प्रकार पत्नी का पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर स्वत्व होता है, स्वांश पर नहीं।

Conclusion in regard to the interpretation of the passage (see 7).

Therefore, it is demonstrated, that Bṛhat Manu (see 7), declares the widow's right of taking his (that is, her husband's) entire share.

विपरीतवचनानां योजनम्।

तथा पत्यधिकारविपरीतबोधकानि वचनानि। यथा

शङ्ख-लिखित- पैठीनसियमाः। 'अपुत्रस्य स्वर्यातस्य भ्रातृगामि द्रव्यम्' तदभावे पितरौ हरेताम्, पत्नी वा ज्येष्ठा सगोत्रशिष्यः सब्रह्मचारिणः॥15॥

विधवा पत्नी के अधिकार के विपरीत मत रखने वाले शङ्ख-लिखित-पैठीनसि-यम एवं देवल के वचन प्राप्त होते हैं यथा-पुत्रहीन व्यक्ति के मर जाने पर उसका द्रव्य भाइयों को प्राप्त होता है, भाइयों के अभाव में माता-पिता, ज्येष्ठा पत्नी और उनके अभाव में सगोत्र शिष्य, सब्रह्मचारी प्राप्त करते हैं।

Texts of an apparent contrary import occur, viz, a passage of Śaṅkha, paiṭhīnasi etc..

Passage of various authors, which declare the contrary of the widow's right of succession, are the following. Śaṅkha, Likhita, Paiṭhīnasi and Yama say, "The wealth of a man, who departs for heaven, leaving no male issue, goes to his brothers. If there be none, his father and mother take it, or his eldest wife, or a kinsman (sagotra), a pupil, or a fellow-student."

अत्र भ्रातुरभावे पित्रोः, तयोरभावे पत्न्यधिकार इति विरोधः॥16॥

यहाँ इस विरोध में भाइयों के अभाव में माता-पिता और माता-पिता के अभाव में पत्नी का अधिकार बताया गया है।

Which prefers the brothers and the parents to the wife.

Here, in contradiction to the preceding texts, the succession of the father and mother, if there be no brother or that of the wife, if they be both dead, is propounded.

तथा देवलः-

'ततो दायमपुत्रस्य विभजेयुः सहोदराः।
तुल्या दुहितरो वापि ध्रियमाणः पितापि वा॥
सवर्णा भ्रातरो माता भार्या चेति यथाक्रमम्।
एषामभावे गृह्णीयुः कुल्यानां सहवासिनः'॥17॥

देवल का भी यही मत है कि–

अपुत्र व्यक्ति के मर जाने पर उसके धन में सहोदर भाई, सवर्ण कन्या, पिता, भिन्नोदर सवर्ण भाई, माता एवं पत्नी को क्रम से अधिकार मिलता है। इनके अभाव में समीप के बन्धुओं को वह धन प्राप्त होता है।

Also a passage of Devala.

So Devala ordains : "Next let brothers of the whole blood divide the heritage of him who leaves no male issue, or daughters equal (as appertaining to the same tribe); or let the father if he survive or (half) brothers belonging to the same tribe, or the mother, or the wife, inherit in their order, On failure of all these, the nearest of the kinsmen succeed."

अत्र सर्वादौ भ्रातुरधिकारः, सर्वशेषे च भार्याया इति विरोधः।।18।।

अतः इन वचनों से यही सिद्ध होता है कि सर्वप्रथम भाई का अधिकार होता है और अन्त में पत्नी का।

Which places the brothers first and the widow last.

Here the contradiction is, the brother being placed first of all the heirs, and the widow last.

केषाञ्चिन्मतेन समाधानम्, बृहस्पतिवचनैस्तन्निरासश्च

अत्र केचिदविभक्तसंसृष्टगोचरो भ्रात्रधिकारः प्रथमम्, विभक्तासंसृष्टगोचरश्च पत्न्यधिकार इति समादधति।।19।।

कुछ आचार्यों के द्वारा इसका समाधान किया गया है और बृहस्पति के वचन से उसका खण्डन किया गया है।

यहाँ पर कुछ आचार्यों की दृष्टि से मृतधनी अविभक्त और संसृष्ट हो तो उसके धन पर प्रथम भाई का अधिकार होता है। यदि मृत व्यक्ति विभक्त एवं असंसृष्ट हो तो प्रथम पत्नी का अधिकार होता है।

That cannot be reconciled, referring the brother's succession to the case of union, and the wife's to the instance of separation.

Some reconcile the contradiction by saying, that the preferable right of the brother supposes him either to be not separated or to be re-united; and the widow's right of succession is relative to the estate of one, who was separated from his coheirs and not re-united with them.

तद्बृहस्पतिविरुद्धम्। यदाह–

'विभक्ता भ्रातरो ये च सम्प्रीत्यैकत्र संस्थिताः।
पुनर्विभागकरणे तेषां ज्यैष्ठ्यं न विद्यते।।
यदा कश्चित् प्रमीयते प्रवजेद्वा कथञ्चन।
न लुप्यते तस्य भागः सोदरस्य विधीयते।।
या तस्य भगिनी सा तु ततोंऽशं लब्धुमर्हति।
अनपत्यस्य धर्मोऽयमभार्यापितृकस्य च।।
संसृष्टानान्तु यः कश्चिद्विद्याशौर्यादिना धनम्।
प्राप्नोति तस्य दातव्यो द्व्यंशः शेषाः समांशिनः।।20।।

बृहस्पति का वचन इसके विपरीत है। उन्होंने कहा है कि–

विभक्त भाई स्नेहवश एकत्र रहने लगें तो पुनः विभाजन करने पर ज्येष्ठ भाई को श्रेष्ठांश नहीं मिलता। यदि किसी भाई की मृत्यु हो जाती है या कोई संन्यासी हो जाता है तो उसके अंश का लोप नहीं होता प्रत्युत सहोदर भाई-बहन उसके भाग को प्राप्त करते हैं। यह नियम उस व्यक्ति के लिए है जो पुत्र, पत्नी एवं पितृविहीन है। संसृष्टियों में जो कोई विद्या या शौर्यादि से धन प्राप्त करता है तो उसको दो अंश मिलते हैं, शेष को समान अंश मिलता है।

It would contradict Bṛhaspati.

That is contrary to a passage of Bṛhaspati, who says, "Among brothers, who become re-united, through mutual affection, after being separated, there is no right of seniority, if partition be again made. Should any one of them die. or in any manner depart (by entering into a religious order,

Śrīkṛṣṇa and Acyuta.), his portion is not lost, but devolves on his uterine brother. His sister also is entitled to take a share of it. This law concerns one who leaves no issue, nor wife, nor parent. If any one of the re-united brethren acquire wealth by science, valour, or the like, (with the use of the joint stock), two shares of it must be given to him and the rest shall have each a share."

अत्रोपक्रमोपसंहारयोः संसृष्टत्वकीर्तनात् तत्सन्दंशपतितम्, 'न लुप्यते तस्य भागः सोदरस्य विधीयते' इति वचनं संसृष्टविषयं वाच्यम्। अत्र च 'अनपत्यस्य धर्मोऽयमभार्या-पितृकस्य चे' ति पुत्र-दुहितृ-पत्नी-पितृणामभावे संसृष्टस्य सोदरस्य भ्रातुरधिकारं बोधयतीति, कथं तस्य पत्नी-बाधकत्वम्।।21।।

यहाँ पर (बृहस्पति के वचनों में) प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संसृष्टियों का वर्णन किया गया है। मध्यम के वचन 'न लुप्यते तस्य भागः सोदरस्य विधीयते' भी संसृष्ट का ही निर्देश करते हैं। 'अनपत्यस्य धर्मोऽयमभार्यापितृकस्य च' यह वचन पुत्र, दुहिता, पत्नी एवं पिता के अभाव में संसृष्ट भाइयों के अधिकार को बतलाते हैं। अतः पत्नी कैसे बाधक हो सकती है अर्थात् पत्नी के अधिकार का निषेध कैसे किया जा सकता है।

Who intimates the wife's preferable right in the instance of re-united brethren.

Here, since re-union of parceners is specified at the beginning and at the close of the text, the intermediate passage, "his share is not lost, but devolves on his uterine brother," must be understood as relating to a re-united parcener. And the author. saying "this law concerns one who leaves no issue, nor wife, nor parent," declares the right of a re-united uterine brother as taking effect on failure of son, daughter, widow and parents. How then does (the re-united brother) bar the widow's title to the succession?

किञ्च 'न लुप्यते' इति अविभक्तत्वे संसृष्टत्वे च भ्रात्रन्तरीयद्रव्य- मिश्रीभूतस्य द्रव्यस्य पृथगप्रतीतौ लोपाशङ्कायां न लुप्यत इति वचनमुपपद्यते। विभक्तस्यासंसृष्टस्य तु धने विभक्तत्वप्रतीतौ का लोपाशङ्का। तस्मात् संसृष्टविषयत्व-मेवामीषां वचनानाम्॥22॥

और भी भाइयों के संसृष्ट होने पर एक भाई की सम्पत्ति दूसरे भाई की सम्पत्ति में मिश्रित हो जाती है और पृथक् द्रव्य की प्रतीति नहीं होती। अतः लोप की आशंका होने पर 'न लुप्यते' इस वचन का प्रयोग किया गया है क्योंकि यदि ये वचन विभक्त एवं असंसृष्ट भाइयों के विषय में होते तो विभाजन हो जाने पर भाग के लोप होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः ये वचन संसृष्ट के विषय में हैं।

The text must relate to re-united co-heirs.

Besides the text expresses, that "his share is not lost"; and the expression is pertinent in regard to unseparated parceners and re-united co-heirs, since the lapse of the share might be supposed, because the property, being intermixed with another borther's effects, is not seen apart; but, the property of a separated co-heir being distinctly perceived in a separate state, what room is there for supposing its lapse? Therefore, these texts (of Bṛhaspati, vide see 20) relate to re-united co-heirs.

किञ्च पत्न्यादेः पूर्वं भ्रात्रधिकारज्ञापकशङ्खादिवचनानां संसृष्टभ्रातृविषयत्वं वचनाद्वा न्यायाद्वा। तत्र न तावद्वचनात्। विशेषवचनाभावात्, संसृष्टिनस्तु संसृष्टीत्यादिवचनानां तु भ्रात्रधिकारावसरे विशेषज्ञापनपरत्वेन भ्रात्रधिकारमात्रपरत्वानु-पपत्तेः॥23॥

और क्या कहा जाए कि शंखादि के वचन जो पत्नी से पूर्व भाइयों का अधिकार मानते हैं वे संसृष्ट भाइयों के प्रसंग में है अर्थात् मृत पति के संसृष्ट होने पर सर्वप्रथम भाई का अधिकार होता है क्योंकि वचन तथा न्याय से यही सिद्ध होता है। यहाँ पर वचन के आधार पर खण्डन

करते हुए कहा जाता है कि शंखादि के वचनों में संसृष्टत्व का उल्लेख नहीं किया गया है। अतः ये संसृष्टत्व के विषय में नहीं है। अपि च याज्ञवल्क्य का वचन (2/38) 'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी' वचन भाइयों के अधिकार का निर्देश करते हैं अर्थात् भाइयों के विभाजन के समय यदि कुछ भाई संसृष्ट अथवा असंसृष्ट हों तो मृत संसृष्ट भाई के धन को जीवित संसृष्ट भाई प्राप्त करता है अन्य असंसृष्ट जीवित भाई नहीं।

The proposed, mode of reconciling the seeming contradiction (see 19) is unsupported by positive texts.

Moreover, the inference, that the text of Śaṅkha and others above cited (see 15), which declare the preferable right of the brother before the widow and the rest, relate to a re-united borther, (as well as an unseparated one). must be drawn either from the authority of a text of law; for there is none which bears that meaning expressly; and the passages, concerning the succession of the re-united parcener (sect. 5. See 13) containing special provisions regarding the brother's succession, cannot intend generally the right of a brother to inherit (to the exclusion of a widow).

अनन्तरोपन्यस्तबृहस्पतिवचनानाञ्च संसृष्टविषयत्वे पुत्र-दुहितृ-पत्नीपितृपर्यन्ताभावेसोदरभ्रात्रधिकारज्ञापकत्वात्, तद्विरुद्धत्वादसंसृष्टविषयत्वमेव तावदयुक्तम्, न तु संसृष्ट-विषयत्वम्।।24।।

बृहस्पति के वचन शंखादि के वचनों के विरोधी हैं क्योंकि बृहस्पति के वचन संसृष्टी परक होने पर पुत्र-दुहिता-विधवा पत्नी पिता के अभाव में सहोदर भाई का अधिकार मानते हैं जबकि शंखादि के वचन असंसृष्ट भाइयों का निर्देश करते हैं क्योंकि उनमें संसृष्टत्व शबद प्रयुक्त नहीं हुआ है।

The preceding passages (see 15), do not relate to unseparated and re-united co-heirs.

Since the texts of Bṛhaspati just now cited (see 20) contradict that inference; for the brother's right is there declared to take effect, in the case of re-union, on failure of son, daugh-

ter, widow and parents; brethren not re-united must be the subject (of those passages of Śaṅkha, See 15). That alone is right; and they do not relate to (unseparated and) re-united brethren.

अथ न्यायादिदमभिधीयते। तथाहि संसृष्टत्वे यदेकस्य भ्रातुर्धनम्, तदपरस्यापि। तत्रैकस्य मरणेन स्वत्वनाशेऽपि जीवतस्तत्र स्वामित्वानपायात् तस्यैव तद्भवति। ननु पत्न्याः, भर्तृमरणेन पत्नीस्वत्वस्यापि नाशात्। यथा सत्सु पुत्रादिषु न तद्धनं पत्न्या इति॥25॥

न्याय का आधार लेकर कहा जाता है कि संसृष्ट होने पर सम्मिलित द्रव्य में जितना एक भाई का अधिकार होता है उतना ही अन्य भाई का अधिकार होता है। जब एक भाई की मृत्यु हो जाती है तो उसके स्वत्व का नाश होने पर भी अन्य जीवित भाई उसके धन को प्राप्त कर लेता है क्योंकि उसका स्वत्व उस द्रव्य में विद्यमान रहता है। यदि यह कहा जाए कि उस द्रव्य में पत्नी का स्वत्व होता है तो यह मत भी ठीक नहीं है क्योंकि पति की मृत्यु के पश्चात् अन्य पुत्रादि के जीवित रहते हुए पत्नी के स्वामित्व का नाश हो जाता है।

It is equally unsupported by reasoning.

But it is said, this inference is deduced from reasoning. Thus, in the instance of re-union (or in that of a subsisting co-parcenery), the same goods, which appertain to one brother, belong to another likewise. In such case, when the right of one ceases by his demise, those goods belong exclusively to the survivor, since his ownership is not divested. They do not belong to the widow : for her right ceases on the demise of her husband; in like manner as his property devolves not on her, if sons or other (male descendants) be left.

तन्मन्दम्। नहि संसृष्टत्वेऽपि यदेवैकस्य तदेवापरस्यापि, किन्त्वविज्ञातैकदेशं तत् द्वयोः, न तु समग्रमेव, समग्रत्वकल्पनायां प्रमाणाभावादित्युक्तमादावेव॥26॥

जीमूतवाहन के अनुसार यह मत मन्द है क्योंकि संसृष्ट होने पर जो एक भाई की सम्पत्ति है वही दूसरे भाई की सम्पत्ति नहीं होती। केवल दोनों को अपने-अपने निश्चित अंश का ज्ञान नहीं होता (अर्थात् कोई भाई यह नहीं कह सकता कि यह मेरा भाग है) और न ही दोनों का [illegible] मिलित अधिकार होता है क्योंकि ऐसे वचनों [illegible]

[illegible] nfuted.

[illegible] true, in the instance of [illegible] nery), what belongs to [illegible] ner. But the property [illegible] ortions of the aggre- [illegible] ry right to the whole; [illegible] nership of the whole: [illegible] g the term partition [illegible] the position, that the [illegible], accruing to her from [illegible] But the cession of the [illegible] e male issue, appears only [illegible] cession of male issue.

[illegible] धने पत्न्याः स्वामित्वं भर्तृमरणात् नश्यतीत्यत्र च प्रमाणाभावात्। सति तु पुत्रे तदधिकारशास्त्रादेव पत्नीस्वत्व- नाशोऽवगम्यते, अत्रापि संसृष्टभ्रात्रधिकारशस्त्रात् तद्विनाशोऽवगम्यत इति चेत्, न, संसृष्टभ्रातृगोचरत्व-स्याद्याप्यसिद्धेः। सिद्धे हि भ्रातृसंसृष्टभर्तृमरणेन पत्नी-स्वामित्वानाशे भ्रात्रधिकारशास्त्रस्य संसृष्टविषयत्वम्, सति तु तद्विषयत्वे शास्त्रस्य पत्नीस्वामित्वनाश इतीतरेतरा-श्रयत्वम्॥27॥

ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि विवाह होने वर पति के धन में जो पत्नी का स्वत्व उत्पन्न होता है वह उसकी मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो जाता है क्योंकि इस प्रकार के प्रमाणों का अभाव है। यदि ऐसी शंका की जाए कि जैसे पुत्र के होने पर पत्नी के स्वत्व का नाश सिद्ध होता

है उसी प्रकार संसृष्ट भाइयों के अधिकार में भी पत्नी के स्वत्व का नाश सिद्ध है तो जीमूतवाहन इस युक्ति का भी खण्डन करते हैं क्योंकि इनके अनुसार ये (शंखलिखितादि के) वचन संसृष्टीपरक हैं यह अभी भी असिद्ध है। परन्तु यदि ऐसा मान लिया जाये कि भाइयों से संसृष्ट पति के मरने पर पत्नी के स्वमित्व का नाश होनेपर ये वचन संसृष्ट भाइयों के विषय में हैं और ये वचन क्योंकि संसृष्टीपरक है इसलिए इनके द्वारा पत्नी का (मृतपति के धन में) अधिकार नष्ट हो गया तो यह युक्तिक्रम उचित नहीं होगा क्योंकि इस प्रकार अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हो जाएगा; पहले इन वचनों में संसृष्ट भाइयों की कल्पना की जाएगी फिर भाइयों से संसृष्ट पति के मरने पर पत्नी के स्वामित्व का नाश सिद्ध होगा।

An objection answered.

If it be said, that the cessation of her right, in this instance also, does appear from the law which ordains the succession of the re-united parcener : the answer is, no, for it is not true that the text relates to re-united parceners; since the law, which declares the brother's right of succession, may relate to re-united brethren, it it be true, that the widow's right of ownership ceases by the demise of her husband who was re-united with his co-heirs; and the widow's proprietary right does so cease, provided the law relate to the case of re-united brethren. Thus the propositions reciprocate.

किञ्च शङ्खलिखितादिवचनानामविभक्तसंसृष्टगोचरत्वे अविभक्तस्य संसृष्टस्य च धनं तद्विधभ्रातृगामि, तस्य तु तथाविधस्याभावे पितरौ हरेतामित्यन्वयो वाच्यः, तदा च विकल्पनीयं, किं विभक्तासंसृष्टौ पितरौ गृह्णीयाताम्, उताविभक्तसंसृष्टौ। तत्र न प्रथमः कल्पः। 'पत्नी दुहितरश्चैव' इत्यादिना विभक्तासंसृष्टयोः पित्रोः पत्नीबाध्यत्वात्, कथं पत्नीतः पूर्वं तयोरधिकारः। नापि द्वितीयः। अविभक्तसंसृष्ट-भातृसद्भावेऽपि अविभक्तसंसृष्टपितृग्राह्यत्वस्य सर्वेषाम-विवादात्।।28।।

यदि शंखलिखितादि के वचनों को अविभक्तसंसृष्टविषयक माना जाए तो इसका अन्वय इस प्रकार होगा कि अविभक्तसंसृष्ट के धन को उसका भाई प्राप्त करे अथवा उसके अभाव में माता-पिता ग्रहण करें। यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसी स्थिति में क्या विभक्त असंसृष्ट माता-पिता धन प्राप्त करते हैं या अविभक्त संसृष्ट माता-पिता धन प्राप्त करते हैं। यहाँ पर प्रथम विकल्प उचित नहीं है क्योंकि याज्ञवल्क्य के वचन 'पत्नी दुहितरश्चैव' में विभक्तासंसृष्ट माता-पिता पत्नी द्वारा बाधित हो जाते हैं अतः पत्नी से पूर्व इनका अधिकार कैसे हो सकता है? दूसरा विकल्प भी उचित नहीं है क्योंकि अविभक्त संसृष्ट भाइयों के होने पर भी अविभक्त संसृष्ट पिता को ही धन प्राप्ति का अधिकार सर्वमान्य है।

A further reason stated.

Besides, if the texts of Śaṅkha, Likhita and the rest (see 15), relate to unseparated or re-united parceners, they must be interpreted as signifying, that 'the wealth of one, who is either unseparated or re-united, goes to a brother who is so; or, if there be none such, the two parents, take it. In that case, a question may be propossed, shall parents, who are separated and not re-united take the heritage? Or parents who are either unseparated or re-united? Here the first proposition is not admissible; for how can the claim of parents, who are separated and not re-united, be perferred to the wife's, since they are excluded by her, under the passage before cited? Nor is the second proposition maintainable; for all agree, that a father, being unseparated or re-united, takes the heritage in preference to an unseparated or re-united brother.

किञ्च यथा पित्रा भ्रात्रा च विभक्तासंसृष्टधने शरीरदातृतया "आत्मा वै जायते पुत्रः" इत्येकत्वश्रुतेर्धन-शरीरयोश्च प्रभुत्वात् तत्पितृदेयपितामह- प्रपितामहपिण्डद्वये च सपिण्डनेन मृतस्य भोक्तृत्वात्, जीवति च पितरि पुत्राणां पार्वणपिण्डदानाभावात् भ्रातृभ्यः पूर्वं पितुरधिकारः तथेतरत्रापि

युक्तः, अविभाग-संसर्गयोर्वा अविशेषात्, पितृ-भ्रात्रोस्तुल्य-वदधिकारः युक्तः, न तु भ्रातुरभावे पितुरिति युक्तम्।।29।।

यदि कोई व्यक्ति अपने पिता एवं भाई से विभक्त होने पर असंसृष्ट रहता है तो उसके धन पर भाई से पूर्व पिता का ही अधिकार होता है क्योंकि "आत्मा वै जायते पुत्र:" (पिता ही पुत्र को जीवन देता है) श्रुति वचन के अनुसार पिता का पुत्र के धन एवं शरीर पर स्वामित्व होता है। अपि च मृतक का पिता उसके पितामह एवं प्रपितामह दो का पिण्डदान करता है जिनको मृतक पिण्डदान देने के लिए बाध्य रहता है। पिता के जीवित रहते हुए पुत्र को पार्वण श्राद्ध करने का अधिकार नहीं होता। अत: भाई से पूर्व पिता का ही अधिकार होता है। अविभक्त संसृष्ट संपत्ति में पिता और भाई का तुल्य अधिकार रहता है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि पिता से पूर्व भाई का अधिकार है।

An additional argument set forth.

Moreover, as in the instance of the estate of one, who was separated from and not re-united with, his father and his brother, the father has the right of succession before brothers, because he has authority over the person and wealth of his son; since he gave him life; (for their identity is affirmed in holy writ, where it is said "he himself is born a son"): and beacause the deceased by participating (with the means of the grandfather and great grandfather) in funeral offerings, partakes of two oblations of food which his father must prersent to the grandfather and great grandfather (at the same time that none are presented by his brother), for sons do not offer the half-monthly oblations of food, while their father lives; so the same (preference of the father before the brother) is fit in the other instance (of the estate of one who is either unseparated or re-united). Or, since they are like in respect of co-parcenery and re-union, the equal right of father and son would be proper, not the postponement of the father's claim to the brother's.

किञ्चाविभक्तसंसृष्टौ पितरौ गृह्णीयातमिति द्विवचनमप्यनुपपन्नम्। मात्रा सह विभागाविभागयोरभावात्।

अत एव धनसंसर्गाभावोऽपि।

यदाह बृहस्पतिः–

विभक्तो यः पुनः पित्रा भ्रात्रा चैकत्र संस्थितः।
पितृव्येणाथवा प्रीत्या स तु संसृष्ट उच्यते।।

अनेनैतद्दर्शयति-येषामेव हि पितृ-भ्रातृ-पितृव्यादीनां पितृपिता- महार्जितद्रव्येणाविभक्तत्वमुत्पत्तितः सम्भवति; त एव विभक्ताः सन्तः परस्परप्रीत्या यदि पूर्वकृतविभागध्वंसेन यत्तव धनम्, तन्मम धनम्, यन्मम धनम् तत्तवापीति। एकत्र गृहे एकगृहिरूपतया संस्थिताः संसृज्यन्ते, न पुनरेवंरूपाणां द्रव्यसंसर्गमात्रेण सम्भूयकारिणां वणिजामपि संसर्गित्वम्। नापि विभक्तानां द्रव्यसंसर्गमात्रेण पूर्वोक्तप्रीति- पूर्वकाभिसन्धानं बिना, अतः संसर्गित्वाविभक्तत्वयोर्मात्रा सहासम्भवात्, कथं मातृगतो भ्रातृसद्भावाधिकारविरोधः समाधेयः।।30।।

यदि शंखलिखित के वचन अविभक्तसंसृष्टीपरक माने तो "पितरौ" में द्विवचन का प्रयोग सर्वथा अनुपयुक्त है क्योंकि 'पितरौ' के विग्रह (माता च पिता च) में माता का अर्थ भी विद्यमान है। परन्तु माता के साथ विभाग और संसृष्टत्व की स्थिति की कोई संभावना नहीं है।

बृहस्पति ने कहा है–

विभाजन के बाद जो अपने पिता, भाई अथवा चाचा के साथ प्रीति के कारण इकट्ठे रहने लगता है वह संसृष्ट कहलाता है।

इससे यह ज्ञात होता है कि जिन पिता, भाई-चाचा का पिता एवं पितामह द्वारा अर्जित की गई सम्पत्ति में जन्म से अधिकार होता है वे विभक्त होने के पश्चात् पूर्व विभाजन को ध्वस्त करके परस्पर प्रीति के कारण प्रतिज्ञा करते हैं कि 'जो तुम्हारा धन है वह मेरा है और जो मेरा है वह तुम्हारा है एक ही घर में इकट्ठे होकर रहना संसृष्ट है। केवल द्रव्य के संसर्ग मात्र से संसृष्टि नहीं होती। ऐसी स्थिति तो व्यापारियों में द्रव्यसंसर्ग के द्वारा इकट्ठे व्यवसाय करने की होती है। अतः माता के

साथ संसृष्टी और विभाजन नहीं हो सकता है। इसलिए माता के विद्यमान होने पर भाइयों के विरोधी वचन कैसे स्वीकार किये जा सकते हैं। (अर्थात् भाइयों के पूर्व ही माता का अधिकार है।)

The proposed explanation is insufficient. It is inconsistent with Bṛhaspati's definition of re-union. Interpretation of the text.

Further, the dual number, expressing, that 'parents, who are unseparated or re-united, take the heritage,' is unsuitable : for there is neither partition, or co-parcenery, with the mother; and consequently no re-union of estates; since Bṛhaspati says, "He, who being once separated, dwells again, through affection, with his father, brother, or paternal uncle, is termed re-united. He thus shows, that persons. who by birth have common rights in the wealth acquired by the father and grandfather, as father (and son), brothers, uncle (and nephew), are re-united, when, after having made a partition they live together, through mutual affection, as inhabitants of the same house, annulling the previous partition and stipulating, that "the property, which is mine, is your' and that, which is mine in your The partnership of traders, who are not so circumstanced, and only act in concert on an united capital, is no re-union. Nor are separated co-heirs re-united merely by junction of stock, without an agreement prompted by affection as above stated. Therefore, since neither re-union nor co-parcenery with a mother can exist, how is the contradiction in regard to the succession devolving on her before brothers, to be reconciled?"

अस्मिन् विषये स्वसिद्धान्तवर्णनम्

सम्प्रति धीमद्भिः समाधीयते। तत्र विष्णुवादिवचनेभ्यः पुत्राद्यभावमात्रेण पत्न्यधिकारः स्पष्टमवगम्यते। युक्तञ्चैतत् यन्मृतधनं पुत्र-पौत्र-प्रपौत्राणामेव प्रथमं भवति।

तथाहि मनुविष्णु–

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।

तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

(मनु. 9/138/विष्णु 15-43)

तथा हारीतः-

पुन्नामा निरयः प्रोक्तश्छिन्नतन्तुश्च नैरयः।
तत्र वै त्रायसे यस्मात् तस्मात् पुत्र इति स्मृतः॥

तथा शङ्ख-लिखितौ-

पितृणामनृणो जीवन् दृष्ट्वा पुत्रमुखं पिता।
स्वर्गी स तेन जातेन तस्मिन् संन्यस्य तदृणम्॥
अग्निहोत्रं त्रयो वेदा यज्ञाश्च शतदक्षिणाः।
ज्येष्ठपुत्रप्रसूतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

तथा मनु-शङ्ख-लिखित-विष्णु-वशिष्ठ-हारीताः-

पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्॥

(मनु 9-137, वशिष्ठ 13-5, विष्णु 15-45)

तथा याज्ञवल्क्यः-

लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रकैः (1-78) ॥31॥

अब बुद्धिमानों के द्वारा समाधान किया जाता है। विष्णु आदि के वचनों से पुत्रादि के अभाव से पत्नी का अधिकार स्पष्ट ज्ञात होता है। यह युक्तिसंगत भी है कि मृत व्यक्ति का धन प्रथम पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र को प्राप्त होता है।

मनु और विष्णु का वचन है कि-

जिस कारण पुत्र 'पुं' नामक नरक से पिता की रक्षा करता है, उस कारण से स्वयं ब्रह्मा ने उसे 'पुत्र' कहा है।

हारीत- 'पुं' नामक नरक है। जो सन्तानरहित है वह मानों नरक

में रहता है। उस नरक से पिता की रक्षा करने के कारण उसे पुत्र कहा जाता है।

शंखलिखितौ–पिता जीवनकाल में पुत्र का मुख देखकर पितृऋण से मुक्त होता है। उसके उत्पन्न होने से उसमें ऋण सर्मपित करने से वह स्वर्ग को प्राप्त होता है। अग्निहोत्र, तीन वेद और सैकड़ों दक्षिणाओं वाले यज्ञ ज्येष्ठ पुत्र के जन्म की सोलहवीं कला के बराबर नहीं हैं।

मनु-शङ्खलिखित-विष्णु-वशिष्ठ-हारीत के अनुसार–

पुत्र से स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है, पौत्र से उन लोकों में अनन्तकाल तक निवास करता है और प्रपौत्र से सूर्य लोक को प्राप्त करता है।

याज्ञवल्क्य के अनुसार–

पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र से इस लोक में वंश अविच्छिन्न बना रहता है और स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

Approved mode of reconciling the apparent contradiction Sons confer benefits on their father : as appears from passags of Manu and Viṣṇu, Hārīta, Śaṅkha and Likhita, Manu and Yājñavalkya.

In the next place, the manner in which the difficulty is removed by the wise, will be stated, From the texts of Viṣṇu (see 5), and the rest (as Yājñavalkya, See 4) it clearly appears, that the succession devolves on the widow, by failure of sons and other (male descendants) : and this is reasonable; for the estate of the deceased should go first to the son, grandson and great grandson. Thus Manu and Viṣṇu say, "Since a son delivers (trāyate) his father from the hell called put, "therefore he is named puttra by the self-existent himself." So Hārīta says, "A certain hell is named put, and he, who is destitute of offspring, is tormented in hell. A son is therefore called puttra, because he delivers his father from that region of horror." In like manner, Śaṅkha and Likhita declare, "A father is exonerated in his life-time from debt to his own ancestors, upon seeing the countenance of a living son: he becomes entitled to heaven by the birth of his son and devolves on him his own debt. The sacrificial hearth, the three

vedas, and sacrifices rewarded with ample gratituties, have not the sixteenth part of the efficacy of the birth of an eldest son." Thus Manu, Śaṅkha, Vasiṣṭha, Likhita and Hārīta ordain, "By sa son, a man conquers worlds; by a son's son, he enjoys immortality; and, afterwards, by the son of a grandson, he reaches the solar abode." So Yājñavalkya says, "The attainment of worlds, immortality and heaven, depend on a son, grandson and great grandson."

तदेवं पुत्रादिभिर्जन्मतः प्रभृति पितुः परलोकोचितमहोपकारनिष्पादनात्, मृतस्य तस्य च पार्वणविधिना पिण्डदानात्, पुत्राद्यर्थं तद्धनं मृतमेवोपकरोतीति न्यायप्राप्तं पुत्रादीनां स्वामित्वं श्रुतम्।

तथोक्तप्रकारकत्वेनैव धनसम्बन्धं मनुरप्याह–

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः।
पितृणामनृणश्चैव स तस्माल्लब्धुमर्हति।।32।।

(मनु. 9–106)

इस प्रकार पुत्रादि जन्म से पिता का पारलौकिक कल्याण करता है और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पार्वणविधि से पिण्डदान करता है। अतः पुत्र उस (पिता के) धन को प्राप्त कर मृत व्यक्ति का उपकार करते हैं इसलिए पुत्रादि का स्वामित्व न्यायोचित है।

इस प्रकार उपकारक होने से धनसंबन्ध के प्रसंग में मनु ने कहा है कि–

मनुष्य ज्येष्ठ पुत्र की उत्पत्ति मात्र से पुत्रवान् हो जाता है और पितृ ऋण से छूट जाता है। अतः ज्येष्ठ पुत्र पिता की सब सम्पत्ति पाने के योग्य है।

The benefit conferred is the reason of their succession. Manu.

Thus the proprietary right of sons and the rest is expressly ordained, as already inferrible from reasoning; because the wealth, devolving upon sons an the rest, benefits the deceased : since sons or other male descendants pro-

duce great spiritual benefit to their father or ancestor from the moment of their birth; and they present funeral oblations, half-monthly, in due form, after his decease. So Manu declares the right of inheritance to be founded on benefits conferred : "By the eldest son as soon as born, a man becomes the father of male issue and is exonerated from debt to his ancestors; such a son, therefore, is entitled to take the heritage."

तस्मादिति हेतूपन्यासात् दायभागप्रकरणे च पुत्रादीनां नानाविधपित्राद्युपकारकत्वकीर्तनस्य अनन्यप्रयोजनकत्वात्, उपकारकत्वादेव धनसम्बन्धः मनोरनुमत इति गम्यते॥33॥

'तस्मात्' इस हेतु से दायभागप्रकरण में पुत्रादि को अनेक प्रकार से पितादि के उपकारक (बताए) कहे गए हैं। अन्य कोई प्रयोजक न होने से उपकारी का ही धन में अधिकार होता है ऐसा मनु का मत है।

Assents to this doctrine.

From the mention of it as a reason ("therefore"), and since there can be no other purpose in speaking of various benefits derived from sons and the rest, while treating of inhetance, it appears to be a doctrine to which Manu assents, that the right of succession is grounded solely on the benefits conferred.

अतएव पुत्रपदं प्रपौत्रपर्यन्तपरम्, तत्पर्यन्तानामेव पार्वणविधिना पिण्डदानोपकारकत्वस्याविशेषात्॥34॥

अतएव पुत्र पद को प्रपौत्रपर्यन्त समझना चाहिए क्योंकि पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र ये तीनों पार्वण विधि से पिण्डदान करने से उपकारक होते हैं।

Therefore the right extends to the great grandson.

Accordingly (since benefits ar derived from the great grandson as well as from the son), the term "son" (in the text of Manu, See 32, or in that of Viṣṇu, See 5, or in those of Yājñavalkya), extends to the great grandson; for, as far as that degree, descendants equally confer benefits by presenting oblations of food in the prescribed form of half-monthly obsequies.

अन्यथा पुत्रपदस्य स्वार्थत्यागानुपपत्तेः पौत्राधिकारज्ञापकं वचनम् कथञ्चित् यदि लभ्येतापि, प्रपौत्रस्य तु न पृथक् वचनमस्ति॥35॥

अन्यथा पुत्र पद में अपने अर्थ क़ा त्याग न करने से पौत्र का अधिकार बोधक वचन कहीं मिल भी जाए परन्तु प्रपौत्र का अधिकार बोधक पृथक् वचन नहीं मिलता।

Reason of his inference.

Else (if it were not inferrible from reason, or if Manu did not mean, that the right of succession rests upon benefits conferred); the word son could not quit its proper sense (for a larger import); and a passage, declaratory of the grandson's right, must be somehow assumed but admitting that such a passage may be assumed (as inferrible from the declared right of a daughter's son considered as a son's son); still there is no separate text concerning the great grandson.

तस्मादुपकारकत्वादेव प्रपौत्रस्याप्यधिकार इति पुत्रपदमुपलक्षणम्॥36॥

अतः पिण्डदान तीनों में समान रूप से उपकारक होने से पुत्र पद तीनों (पौत्र और प्रपौत्र सहित) का उपकारक है।

His right rest on the benefits conferred by him.

Therefore the great grandson's right of succession is founded on benefits derived from him; and the word son is of comprehensive import.

अतएव बौधायनः "अपि च प्रपितामहः, पितामहः, पिता, स्वयं, सोदर्याः भ्रातरः, सवर्णायाः पुत्रः, प्रपौत्रः एतान् अविभक्तदायादान् सपिण्डानाचक्षते, विभक्तदायानामपि सकुल्यानाचक्षते, असत्स्वन्येषु तद्गामी ह्यर्थो भवति, सपिण्डाभावे सकुल्यः, तदभावे पिता चाचार्योऽन्तेवासी ऋत्विग्वाहरेत तदभावे राजा"॥37॥ (बौ.ध.सू. 1/11/7-12)

अतएव बौधायन का वचन है– प्रपितामह, पितामह, पिता, स्वयं, एक ही माता-पिता से उत्पन्न अपने भाई, सवर्णा पत्नी से उत्पन्न पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र– यह अविभक्तदायाद सपिण्ड कहलाते हैं। विभक्तदायाद सकुल्य कहलाते हैं। जब कोई संबन्धी नहीं रह जाता तो मृत पुरुष की सम्पत्ति सपिण्डों को प्राप्त होती है। सपिण्डों के अभाव में सकुल्य को प्राप्त होती है। सकुल्य के अभाव में पिता तुल्य आचार्य, आचार्य के अभाव में अन्तेवासी शिष्य और उसके अभाव में यज्ञ करने वाले ऋत्विक् सम्पत्ति को ग्रहण करें। इनके अभाव में राजा ग्रहण करे।

Baudhāyana intimates as much, in enumerating Sapiṇḍas.

Accordingly Baudhāyana says, "The paternal great grandfather and grandfather, the father, the man himself, his brothers of the whole blood, his son by a woman of the same tribe, his son's son and his great grandson : all these, partaking of undivided oblations, are pronounced sapiṇḍas. Those, who share divided oblations are called sakulyas. Male issue of the body being left, the property must go to them On failure of sapiṇḍas or near kindred, sakulyas, or remote kinsmen, are heirs. If there be none, the preceptor, the pupil, or the priest, takes the inheritance. In default of all these, the king (has the escheat)."

अस्यार्थः–पित्रादिपिण्डत्रये सपिण्डने भोक्तृत्वात् पुत्रादिभिश्च त्रिभिः तत्पिण्डस्यैव दानात्, यश्च जीवन् यत् पिण्डदाता, स मृतः सन् सपिण्डनात् तत्पिण्डभोक्ता, एवञ्च सति मध्यस्थितः पुरुषः सर्वेषां जीवन् पिण्डदाता, स मृतः तत्पिण्डभोक्ता च, परेषां जीवतां पिण्डसम्प्रदानभूत आसीत्, मृतैश्च तैः सह दौहित्रादिदेयपिण्डभोक्ता अतो एषामयं पिण्डदाता, ये वास्य पिण्डदातारः, ते अविभक्तपिण्डरूपं दायमदन्तीत्यविभक्तदायादाः सपिण्डाः पञ्चमस्य तु पूर्वस्य मध्यमः पञ्चमो न पिण्डदाता, न च तत्-पिण्डभोक्ता, एवमधस्तनोऽपि पञ्चमो न मध्यमस्य पिण्डदाता, नापि

तत्पिण्डभोक्ता, एतेन वृद्धप्रपितामहप्रभृतयस्त्रयः पूर्वपुरुषाः प्रतिप्रणप्तुश्च प्रभृत्यधस्तनास्त्रयः पुरुषाः एकपिण्डभोक्तृत्वाभावात् विभक्तदायादाः सकुल्याः इत्याचक्षते।।38।।

इसका अर्थ है—पितादि तीन पिण्डों में सपिण्ड होने से भोग करने के कारण पुत्रादि तीन (पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र) के द्वारा पिण्ड दिए जाते हैं और जो जीवित है वह पिण्ड देता है। वह मरने पर सपिण्डी होने से पिण्ड का भोग करता है। इस प्रकार मध्यस्थित पुरुष सबको जीवित रहते हुए पितरों को पिण्ड देता है। मृत्यु के बाद वह पिण्ड का भोग रता है। नीचे वाले जीवित व्यक्ति पिण्ड का सम्प्रदान करता है और पर दौहित्रादि दिए जाने वाले पिण्ड का भोग करता है। इस प्रकार ह पिण्ड देता है और जो उसे पिण्ड देते हैं, वे अविभक्तदायाद कहलाते हैं। मध्यम से पूर्व का पाँचवा नीचे से पाँचवें को पिण्ड और न ही पाँचवा पिण्ड का भोग कर सकता है। इसी प्रकार ाँचवा मध्यम को पिण्ड नहीं दे सकता और न ही पाँचवें के कर सकता है। इस प्रकार वृद्धप्रपितामह से ऊपर के तीन र प्रपौत्र से नीचे के तीन पुरुष एक पिण्ड भोक्तृत्व अभाव से दायाद सकुल्य कहलाते हैं।

position of his text.

The meaning of the passage is this : since the father and certain other ancestors partake of three funeral oblations as participating in the offerings at obsequies; and since the son and other descendants, to the number of three, present oblations to the deceased (or to be shared by his manes); and he, who, while living, presents an oblation to an ancestor, partakes, when deceased, of oblations presented to the same person; therefore, such being the case, the middle-most (of seven), who, while living, offered food to the manes of ancestors and when dead partook of offerings made to them, became the object to which the oblations of his descendants were addressed in their life-time and shares with them when they are deceased, the food which must be offered by the daughter's son and other (surviving descendants beyond the

third degree). Hence those (ancestors), to whom he presented oblations, and those (descendants), who present oblations to him, partake of an undivided offering in the form of (piṇḍa) food at obsequies. Persons, who do partake of such offerings, are sapiṇḍas. But one distant in there fifth degree neither gives an oblation to the fifth in ascent, nor shares the offering presented to his manes. So the fifth in descent neither gives oblations to the middle person who is distant from him in the fifth degree, nor partakes of offerings made to him. Therefore three ancestors, from the grandfather's grandfather upwards and three descendants from the grandson's grandfather upwards and three descendants from the grandson's grandson downwards, are denominated sakulyas, as partaking of divided oblations, since they do not participate in the same offering.

इदञ्च सपिण्डत्वम्, सकुल्यत्वञ्च दायग्रहणार्थमुक्तम्।।39।।

इस प्रकार सपिण्ड और सकुल्य का सम्बन्ध दाय ग्रहण करने के लिए कहा है।

The relation of sapiṇḍas regards inheritance.

This relation of sapiṇḍas (extending no further than the fourth degree), as well as that of sakulyas, has been propounded relatively to inheritance.

अतएव मनुनापि

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः।
इत्यभिधाय कुत, इत्यपेक्षायाम्,
त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते।।
चतुर्थ सम्प्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते।।40।।

(मनु. 9/185-186)

अतएव मनु ने कहा है–

(पिता के) धन पाने का अधिकारी सहोदर भाई या पिता नहीं होते, किन्तु पुत्र होते हैं। इस प्रकार कहकर कैसे, अपेक्षा होने पर पुनः कहा गया है–

तीन (पिता, पितामह और प्रपितामह) का उदक (तर्पण) करना चाहिए और तीन का पिण्डदान (श्राद्ध) होता है। चौथा इनको देने वाला होता है, इनके साथ पाँचवें किसी का कोई संबन्ध नहीं होता है।

Corroborated by a passage of Manu.

Accordingly (since the right of succession to property is founded on competence for offering oblations at obsequies), Manu likewise, after premising "Not brothers, nor parents, but sons, are heirs of the father"; proceeds, in answer to the question why? to declare, "To three must libations of water be made, to three must oblations of food be presented; the fourth in descent is the giver of those offerings; but the fifth has no concern with them.

अशौचाद्यर्थन्तु पिण्डलेपभुजामपि तद्दत्तपिण्डलेपभोक्तृत्वेन सपिण्डत्वम् मार्कण्डेयपुराणे निर्दिष्टम्–

पिण्डलेपभुजश्चान्ये पितामहपितामहात्।
प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः।।
इत्येवं मुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः साप्तपौरुष।

(मार्कण्डेय पु. 28-4)

अशौचकर इत्यर्थः।।41।।

अशौचादि में सपिण्डता पिण्डलेप तक होती है। मार्कण्डेय पुराण में पिण्डलेप का भोग करने से ही सपिण्डता का निर्देशन किया है–

पितामह के पितामह तक तीन पुरुषलेप संबन्धी होते हैं। उनमें यजमान सप्तम है। मुनियों ने इस प्रकार से सात पीढ़ी तक का संबन्ध बताया है।

For mourning and other purposes, the relation of sapiṇḍas is more comprehensive : according to a passage of the Mārkaṇḍeya purāṇa.

But for mourning and other purposes, the relation of sapiṇḍas extends to such as partake of the remains of oblations; for that relation is defined in the Mārkaṇḍeya Purāṇa as founded on participation in the wipings of offerings.

"Three others, from the grandfather's grandsire upwards, are declared to be partakers of the residue of oblations; they, and the person who performs the religious rite, being seventh in descent contitute that relation, which is termed by the holy sages kin within the seventh degree. The meaning here is kin which occasions impurity (on occasions of deaths and births.

अतएव मनुनाप्युक्तमाशौचप्रकरणे।

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥ (मनु. 5-60)

अन्यथा त्रयाणामित्यनेन विरोधः स्यात्॥42॥

अतएव मनु ने भी अशौच प्रकरण में कहा है– सपिण्डता सात पीढ़ी में निवृत्त हो जाती है और समानोदकता जन्म तथा नाम के न जानने पर निवृत्त हो जाती है।

अन्यथा त्रयामुदकं (9/186) के साथ विरोध हो जाएगा।

And one of Manu.

Accordingly Manu likewise has said, when treating of uncleanness by reason of mourning, "The relation of sapiṇḍas ceases with the seventh person (in ascent or descent); and that of samānodakas ends only where birth and family name are no longer known." Else this passage would be in contradiction to the text before cited : "To three must libations of water be made." (see 39)

प्रपौत्रपर्यन्ताभावे तु वैधव्यात् प्रभृति व्रतादिना भर्तुः परलोकहिताचारणेन पुत्रादिभ्यो जघन्येति, तेषामभावे धनहारिणी पत्नी।

तदाह व्यासः–

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता।
स्नाता प्रतिदिनं दद्यात् स्वभर्त्रे सतिलाञ्जलीन्॥

कुर्याच्चानुदिनं भक्त्या देवतानाञ्च पूजनम्।
विष्णोराराधनञ्चैव कुर्यान्नित्यमुपोषिता॥
दानानि विप्रमुख्येभ्यो दद्यात् पुण्यविवृद्धये।
उपवासांश्च विविधान् कुर्यात् शास्त्रोदितान् शुभे!
लोकान्तरस्थं भर्तारमात्मानञ्च वरानने।
तारयत्युभयं नारी नित्यं धर्मपरायणा॥43॥

प्रपौत्रपर्यन्त अभाव होने पर विधवा होते ही पत्नी (मृत) पति का व्रतादि के द्वारा परलोक में उपकार करती है वह यद्यपि पुत्र से जघन्य है लेकिन उसके अभाव में पत्नी पति की सम्पत्ति को प्राप्त करती है। व्यास ने कहा है कि–

पति की मृत्यु के पश्चात् सदाचारिणी पत्नी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए प्रतिदिन स्नान करके पति तथा उसके पितरों को तिलाञ्जलि देती है। वह प्रतिदिन देवताओं का भक्तिपूर्वक पूजन करती है तथा विष्णु की आराधना एवं नैत्यिक उपवासों के साथ पुण्यवृद्धि के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान देती है। शास्त्रोक्त विविध उपवासों द्वारा धर्मपरायणा नारी (पत्नी) परलोकगामी पति और अपने आपको तारती है। कल्याणकारी विविध उपवासों द्वारा धर्मपरायणा नारी परलोकगामी पति और अपने को तारती है।

The widow, conferring spiritual benefits on her husband in the next degree to the male issue, succeeds on failure of it. A passage of Vyāsa.

But, on failure of heirs down to the son's grandson, the wife, being inferior in pretensions to sons and the rest, because she performs acts spiritually beneficial to her husband from the date of her widowhood, (and not, like them, from the moment of their birth), succeeds to the estate in their default. Thus Vyāsa says, "After the death of her husband, let a virtuous woman observe strictly the duty of continence; and let her daily, after the purification of the bath, present water from the joined palms of her hands to the manes of her husband. Let her day by day perform with devotion the

worship of the gods and especially the adoration of Viṣṇu, practising constant obsequiousness. She should give alms to the chief of the venerable for increase of holiness and keep the various fasts which are commanded by sacred ordinances. A woman, who is assiduous in the performance of duties, conveys her husband, though abiding in another world and herself (to a region of bliss)".

तदेवमादिभिर्वचनैः पत्न्या अपि नरकनिस्तारकत्वश्रुतेः धनहीनतया वा अकार्यं कुर्वती पुण्यापुण्यफलसमत्वेन भर्तारमपि पातयतीति, तदर्थं तद्धनम् पूर्वस्वाम्यर्थमेव भवतीति युक्तं पत्न्याः स्वाम्यम्।।44।।

इन व्यास के वचनों से ज्ञात होता है कि पत्नी भी नरक से रक्षा करती है। वह निर्धन होने पर अकार्य (अनुचित कार्य) करती है तो पति को नरक में डाल देती है क्योंकि पत्नी और पति के पुण्य फल और अपुण्य फल समान होते हैं। अतः पत्नी का पति के धन में अधिकार पति का उपकार करने से होता है।

Shows, that her good or bad conduct affects her husband in another world. Wealth, devolving on her, is beneficial to him.

Since by these and other passages it is declared, that the wife rescues her husband from hell; and since woman doing improper acts through indigence, causes her husband to fall (to a region of horror); for they share the fruits of virtue and of vice; therefore the wealth devolving on her is for the benefit of the former owner: and the wife's succession is cosequently proper.

अतः शङ्खादिवचनेषु व्यवहितयोजना कार्या, अपुत्रस्य स्वर्यातस्य धनं ज्येष्ठा पत्नी हरेत्, तदभावे पितरौ हरेताम्, तदभावे भ्रातृगामीति। तदभावे इति मध्यपठितं पूर्वेण भ्रातृगामीत्यनेन, परेण च पितरौ हरेतामित्यनेन सम्बध्यते, अविरोधात् न्यायस्योक्तत्वाच्च। न त्वश्रुताविभक्तसंसृष्ट-गोचरत्वकल्पना।।45।।

अतः शङ्खादि के वचनों में व्यवहित योजना है। पुत्रहीन व्यक्ति के मर जाने पर उसके धन को ज्येष्ठा पत्नी इसके अभाव में माता-पिता और इनके अभाव में भाई प्राप्त करते हैं। यहाँ मध्यस्थित 'तदभावे' पद पूर्व के भाई के साथ और पर पितरों (माता-पिता) से संबन्धित है। यह वचन अविरुद्ध और न्यायसंगत है। अतः शंखादि के वचनों में अविभक्त संसृष्ट की कल्पना निराधार है।

Proper interpretation of the text of Śaṅkha. (see 15)

Hence (since the wife's right of succession is founded ·ason), the construction in the text of Śaṅkha, see (15) ·e arranged by connection of remote terms in this ·'The wealth of a man, who departs for heaven leav- ·ale issue, let his eldest (that is, his most excellent) ·or, in her default, let the parents take it : on failure · goes to the brothers.' The terms "if there be none ·here be none (that is, if there be no wife)," which ·e middle of the text, (see 15) are connected both ·preceding sentence "it goes to his brothers," and ·subsequent one "his father and mother take it." For · agrees (with passages of Viṣṇu and Yājñavalkya, See ·5, which declare the wife's right); and the reasonable- ·s of this has been already shown (see 43).

अतः अविशेषेणैव विभक्तत्वाद्यनपेक्षयैव अपुत्रस्य भर्तुः कृत्स्नधने पत्न्यधिकारः जितेन्द्रियोक्त आदरणीयः॥46॥

अत जितेन्द्रिय नामक आचार्य के मत को स्वीकार करते हुए सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि विभक्तादि की अपेक्षा किए बिना ही पुत्रहीन व्यक्ति के सम्पूर्ण धन पर पत्नी का ही अधिकार होता है।

46. A different opinion (see 19) is erroneous. Jitendriya's doctrine is right.

The assumption of any reference to the condition of the brethern as unseprated or as re-united, not specified in the text, is inadmissible (being burdensome and unnecessary). Therefore the doctrine of Jitendriya, who affirms the right of the wife to inherit the whole property of her hus-

band leaving no male issue, without attention to the circumstance of his being separated from his co-heirs or united with them, (for no such distinction is specified), should be respected.

पत्नीत्वञ्च प्रथममुत्तमवर्णायाः। ज्येष्ठा पत्नीत्यभिधानात् वर्णक्रमेण ज्येष्ठत्वात्।

तदाह मनुः–

यदि स्वाश्च पराश्चैव विन्देरन् योषितो द्विजाः।
तासां वर्णक्रमेणैव ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च॥

(मनु. 9-85)

अतः परिणयनकनिष्ठापि सवर्णा ज्येष्ठैव, तस्या एव यज्ञादिकेषु व्यापाराधिकारात् पत्नीत्वम्।

तथा च मनुः–

भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यञ्च नैत्यिकम्।
स्वा स्वैव कुर्यात् सर्वेषां नान्यजातिः कथञ्चन।

यस्तु तत् कारयेन्मोहात् स्वजात्या स्थितयान्यय।
यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः॥

(मनु. 9-86-87)

सवर्णायाः पुनरभावे, अनन्तरवर्णा पत्नी।

यथा विष्णुः–

सवर्णाया अभावे त्वनन्तरयैवापदि, न त्वेव द्विजः शूद्रया। (विष्णु 26-3) धर्मकार्यं कुर्यादित्यनुवर्तते। (विष्णु 26-1) तेन ब्राह्मणस्य ब्राह्मणी पत्नी, तदभावे क्षत्रियाप्यापदि, न तु परिणीते अपि वैश्याशूद्रे, क्षत्रियस्य क्षत्रिया पत्नी, तदभावे वैश्यापि, अनन्तरवर्णत्वात् न शूद्रा, वैश्यस्य वैश्यैवैका, नत्वेव

द्विजः शूद्रयेति द्विजमात्रस्यैव शूद्रानिषेधात्॥47॥

पत्नी में प्रथम उत्तम वर्ण की पत्नी को अधिकार है। वर्णों के क्रम से ज्येष्ठ पत्नी की ही ज्येष्ठता है। मनु ने कहा है कि–

यदि द्विज सजातीय तथा विजातीय स्त्रियों के साथ विवाह कर ले तो उनके वर्णक्रम के अनुसार ज्येष्ठता, सत्कार तथा घर होते हैं। अर्थात् उच्च वर्ण वाली पत्नी के लिए श्रेष्ठ तथा हीन वर्ण वाली पत्नी के लिए उसकी उपेक्षा हीन होते हैं। अतः सवर्ण विवाह में कनिष्ठा भी ज्येष्ठा पत्नी मानी जाती है उसी का ही यज्ञादि कार्यों में अधिकार है।

मनु का कथन है कि–

पति की सेवा और नित्य धार्मिक कार्य उसकी सजातीया पत्नी ही करे, अन्य जाति वाली कदापि न करे। जो पति सजातीया पत्नी के सन्निहित रहने पर मोहवश विजातीया स्त्री के द्वारा सेवादि कार्य करवाता है वह ब्राह्मण चाण्डाल है ऐसा प्राचीन ऋषियों द्वारा माना जाता है। सवर्णा के अभाव में अनन्तरवर्णा पत्नी धन की अधिकारिणी है।

विष्णु का कथन है–

आपत्ति में सवर्ण स्त्री के अभाव में अनन्तरवर्णा पत्नी यज्ञादि धार्मिक कृत्य करे परन्तु द्विज शूद्रा के साथ कभी भी धार्मिक कृत्य न करे। इस प्रकार ब्राह्मण की ब्राह्मणी पत्नी और उसके अभाव में क्षत्रिया पत्नी होती है। ब्राह्मणकी विवाहिता वैश्या और शूद्रा पत्नियों का अधिकार नहीं है। क्षत्रिय की क्षत्रिया तथा उसके अभाव में वैश्या पत्नी होती है। अनन्तरवर्णा शूद्रा का अधिकार नहीं है। वैश्य की केवल वैश्या होती है, अनन्तरवर्णा शूद्रा नहीं होती क्योंकि द्विज की शूद्रा पत्नी नहीं हो सकती। द्विजमात्र से ही शूद्रा का निषेध है।

The wife must be a woman of the same tribe : Manu declares her precedence. In her default, a woman of the next tribe. Conformably with a passage of Viṣṇu. But not a woman of a lower class.

The rank of wife belongs in the first place to a woman of the highest tribe : for the text (of Śaṅkha), expresses, that "the eldest wife takes the wealth" (see 15 & 45); and seniority is reckoned in the order of the tribes. Thus Manu syas,

"When regenerate men take wives both of their own class and others, the precedence, honour and habitation of those wives must be settled according to the order of their classes." Therefore (since seniority is by tribe), a woman of equal class, though youngest in respect of the date of marriage, is deemed eldest. The rank of wife (patnī) belongs to her, for she alone is competent to assist in the performance of sacrifices and other sacred rites. Accordingly Manu says, "To all such married men, the wives of the same class only (not wives of a different class by any means) must perform the duty of personal attendance, and the daily business relating to acts of religion. For he, who foolishly causes those duties to be performed by any ohter than his wife of the same class, when she is near at hand, has been immorally considered as a mere Cāṇḍāla begotten on a Brāhmaṇi." But, on failure of a wife of the same tribe, one of the tribe immediately following (may be employed in such duties). Thus Viṣṇu ordains, "It there be no wife belonging to the same tribe, (he may execute the business relating to acts of religion) with one of the tribe immediately following, in case of distress. But a regenerate man must not do so with a woman of the Śūdra class." 'Execute business relating to acts of religion,' is understood from the preceding sentence. Therefore, a Brāhmaṇa is lawful wife (patnī) of a Brāhmaṇa. On failure of such, a Kṣatriya may be so, in case of distress; but not a Vaiśya, nor a Śūdra, though married to him. A Kṣatriya woman is wife of a Kṣatriya man. In her default, a Vaiśya woman may be so, as belonging to the next following tribe; but not a Śūdra woman. A Vaiśya is the only wife for a Vaiśya : since a Śūdra wife is denied in respect of the regenerate tribes simply.

अनेनैव पत्नीभावक्रमेण धनाधिकारिता बोद्धव्या। अतः परिणीत- स्त्रीणामप्यपत्नीत्वात् तदभिप्रायकमेव नारदवचनम्।

यथा–

भ्रातृणामप्रजाः प्रेयात् कश्चित् वै प्रव्रजेद् यदि।
विभजेरन् धनं तस्य शेषास्ते स्त्रीधनं विना।।

भरणञ्चास्य कुर्वीरन् स्त्रीणामाजीवितक्षयात्।
रक्षन्ति शय्यां भर्तुश्चेदाच्छिन्दुरितरासु च॥

(नारद 13-26-27)

तथा तस्यैव।

अन्यत्र ब्राह्मणात् किन्तु राजा धर्मपरायणः।
तत्स्त्रीणां जीवनं दद्यादेष दायविधिः स्मृतः॥

(नारद 13-25)

तदीयस्त्रीणामपत्नीनां वर्तनधनदानम्, पत्नीनां पुनः कृत्स्नधनेऽ- धिकारितेत्यविरोधः॥48॥

इस प्रकार पत्नीभावक्रम से धन का अधिकार बताया गया है। नारद के अनुसार भाइयों में से यदि कोई भाई सन्तानहीन मर जाता है या संन्यासी हो जाता है तो अन्य भाई स्त्रीधन को छोड़कर शेष सम्पत्ति बाँट ले किन्तु उसकी पतिव्रता विधवाओं का आजीवन पर्यन्त भरण पोषण करें; यदि वे व्यभिचारिणी हों तो उससे सारा धन ले लें।

और भी- ब्राह्मण के धन को छोड़कर अन्य वर्णों के धन को धर्मपरायण राजा प्राप्त करता है और उनकी स्त्रियों को निर्वाह मात्र धन देता है। यह दायविधि कही गई है।

अपत्नी (स्त्री) को जीवनोपयोगी धन देना चाहिए और पत्नी का सम्पूर्ण धन में अधिकार है-यह अविरोध है।

A maintenance, declared by Nārada, regards women espoused, but not reckoned as wives.

In this manner must be understood the succession to property in the order in which the rank of wife is acknowledged. Therefore, since women actually espoused may not have the rank of wives, the following passage of Nārada intends such a case. "Among brothers, if any one die without issue, or enter a religious order, let the rest of the brethren divide his wealth, except the wife's separate property. Let them allow a maintenance to his women for life, provided these preserve unsullied the bed of their lord. But, if they behave

otherwise, the brethren may resume that allowance." So (this other passage) of the same author; ("On failure of heirs, the property goes to the king)," except the wealth of a Brāhmaṇa But a king, who is attentive to the obligations of duty, should give a maintenance to the women of such persons. The law of inheritance has been thus declared." The allotment of a maintenance to the women of such persons, not being of the rank of wives, and the declared right of wives to succeed to the whole estate, constitute no discrepancy.

अतएव बृहस्पतिः–

येऽपुत्राः क्षत्र-विट्-शुद्राः पत्नीभ्रातृविवर्जिताः।
तेषां धनं हरेद्राजा सर्वस्याधिपतिर्हि सः॥

पत्न्यभावे राज्ञोधनसम्बन्धं दर्शयति। नारदस्तु–'तत् स्त्रीणां जीवनम् दद्यादि 'ति वर्तनधनं दत्वा राज्ञा सर्वधनं ग्रहीतव्यमिति यो विरोधः, स पत्नी–स्त्रियोर्भेदेन समाधेयः। अतएव पत्न्यधिकारवचनेषु पत्नीपदानुस्मृतिः, वर्तनवचनेषु च स्त्री-नार्यादि-शब्दप्रयोगः॥49॥

बृहस्पति का कथन है कि–

क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के पुत्रहीन तथा पत्नी, भाई से हीन होने पर उनके धन को राजा प्राप्त करे क्योंकि वह सबका अधिपति है।

पत्नी के अभाव में राजा का धन से संबन्ध दिखाया है। नारद का यह वचन है कि–'स्त्रियों को जीवनोपयोगी धन दे' इस वचन से ज्ञात होता है कि वर्तनोपयोगी धन देकर राजा को सम्पूर्ण धन ग्रहण कर लेना चाहिए–इसमें जो विरोध है उसका समाधान पत्नी और स्त्री के भेद से हो जाता है। पत्नी के अधिकार को सूचित करने के लिए पत्नी पद नियोजित किया गया है और वर्तन शब्द में स्त्री और नारी शब्दों का प्रयोग किया गया है।

Passage of Bṛhaspati and Nārada reconciled on the same principle.

Accordingly, Bṛhaspati propounds the king's right to an escheat in default of the wife : "If men of the military, com-

mercial and servile tribes die childless, leaving neither wife nor brother, let the king take the property; for he is indeed lord of all." But Nārada, directing, that "he should give a maintenance to the women of such persons," (see 48) authorises the king to take the whole estate, giving to them enough for their support. This contradiction must be reconciled by distinguishing between the wife and the espoused woman. Accordingly, in passages declaratory of the wife's right of succession, the term "wife" (patnī) is employed : and. in those which ordain a maintenance, the terms "woman" (strī or nārī) or "spouse" (bhāryā) or other similar word.

यदपि देवलवचनम्–

ततो दायमपुत्रस्य विभजेरन् सहोदराः।
तुल्या दुहितरो वापि ध्रियमाणः पितापि वा।।
सवर्णा भ्रातरो माता भार्या वेति यथाक्रमम्।
एषामभावे गृह्णीयुः कुल्यानां सहवासिनः।।

तुल्याः सवर्णा दुहितरः। सवर्णा भ्रातरः सापत्ना अभिमताः। सोदरभ्रातृणां स्वपदोपात्तत्वात् विशेषणानुपपत्तेः। तत्रापि सहोदरादि भार्यान्तस्य लिखनक्रमो नाधिकारक्रमार्थः, विष्ण्वादिविरोधात्, किन्तु विष्ण्वाद्युक्तक्रमेण गृह्णीयुरित्येतदर्थः। लिखनक्रमेऽनास्थाव्यञ्जनार्थमेव। दुहितरो वापि पितापि वेति अपिवाशब्दमुभयत्र प्रयुक्तवान्। तच्चान्यत्राप्यनुषज्यते। तेन सहोदरा वा दुहितरो वा पितावेत्यनास्था कीर्तनक्रमस्य देवलवचनेन दर्शिता।।50।।

देवल के वचनानुसार–

पुत्रहीन व्यक्ति की सम्पत्ति सहोदर भाइयों, सवर्ण कन्याओं अथवा पिता जीवित है तो सौतेले भाईयों, माता एवं पत्नी को क्रम से प्राप्त होती है। इनके अभाव में समीप के बन्धुओं को प्राप्त होती है।

तुल्याः का अर्थ सवर्ण कन्याएँ हैं। सवर्णा भ्रातरो का अर्थ सौतेले भाईयों से है। सोदर-भातृणां शब्द स्वपद से ही निर्दिष्ट है। यहाँ पर

सहोदर भाई से लेकर भार्या तक लिखने का जो क्रम है वह अधिकार के क्रम को नहीं बतलाता क्योंकि विष्णु के वचन के साथ विरोध हो जाता है किन्तु विष्णु के वचन में क्रम से उत्तराधिकारी अपने अधिकार को प्राप्त करते हैं। यहाँ देवल के वचन में लिखने के क्रम में अनास्था है क्योंकि दुहितरो वापि, पितापि वा, में वा और अपि दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अन्य उल्लेख भी प्राप्त होते हैं यथा सहोदरा वा, दुहितरो वा, पिता वा। इस प्रकार देवल के वचन में लिखने के क्रम में अनास्था दिखाई गई है।

Proper interpretation of the text of Devala (see 17).

In the text of Devala (see 17) which expresses, "Next let brothers of the whole blood divide the heritage of him, who leaves no male issue; or daughters equal (as appertaining to the same tribe); or let the father, if he survive, or brothers belonging to the same tribe, or the mother, or the wife, inherit in their order; but, on failure of all these, the nearest of the kinsmen succeed;" where "daughters equal" are such as appertain to the same class (with the deceased); and "brothers belonging the same tribe" intend those of the half blood; for whole brothers are specified under the appropriate term, and the distinction would be impertinent (as not excluding any one; or as superfluous, since whole brothers, of course, belong to the same tribe); in this text, we say, the order, in which heirs are enumerated, from the whole brother to the wife, is not intended for the order of their succession; since it contradicts Viṣṇu and the rest (as Bṛhaspati and Yājñavalkya) : but the meaning of the text is, that the heirs shall take the succession in the order declared by Viṣṇu and others. To mark uncertainly in the specified order, the author has twice used the word 'or'; once in the phrase "or daughters," and again in the sentence "or let the father, etc." and the word is also understood in other places. Thus Devala has himself shown vagueness in his own enumeration, intimating that 'either brothers, or daughters or parents etc., (take the succession)'.

बालकमतस्योपन्यास-निरासौ

यच्च बालकेनोक्तम्—असवर्णाविषयं वा युवत्यभिप्रायं वा अविभक्तसंसृष्टविषयं वा शङ्खादिवचनमिति। तेनाऽव्यवस्थितशास्त्रार्थकथनेनात्मनो बालरूपत्वमेव प्रकटीकृतम्, सन्देहादेकतरानुष्ठानानुपपत्तेः।।51।।

बालक ने कहा है कि– शंखादि के वचन असवर्णा स्त्री के विषय में हैं या विधवा युवती या अविभक्त संसृष्ट भाइयों से संबन्धित हैं। इस प्रकार बालक ने शास्त्र की अव्यवस्थित व्याख्या करके स्पष्ट रूप से अपनी बालरूपता प्रकट की है अर्थात् शंखादि के वचनों का एक अर्थ न करके कहीं इसको असवर्णा के लिए, कहीं युवती या अविभक्त संसृष्ट भाइयों से संबन्धित माना है। अतः इनका कोई भी नियम संशय से विमुक्त नहीं प्रतीत होता।

Bāloka's opinion refuted.

As for what has been said by Bāloka, concerning the text of Śaṅkha and the rest (see 15), that it either relates to wife inferior in class to her husband or supposes the widow to be young, or is relative to brethren unseparated or re-united; that author has manifested his own imbecility by thus proposing an indefinite interpretation of the law : for the doubt remains (which of the three is intended); and neither rule could be followed in practice.

यदप्यनूढ़ावरुद्धाभिप्रायं वर्तनवचनं वर्णितम्। तदपि धर्मपत्नीनामनुग्रहार्थमिति हेयमेव, वर्तनविधानविषयस्य स्त्रीणां पूर्वमेव दर्शितत्वात्।।52।।

यदि ये वचन अनूढ़ा या अवरुद्धा (रक्षिता) के लिए जीवन-निर्वाह का निर्देश करते हैं तो धर्मपत्नी के लिए यह अनुचित होगा। स्त्रियों के लिए वर्तन का विधान पूर्व ही दिखाया गया है।

The allotment of maintenance does not regard concubines.

As for the assertion, that the text, which ordains maintenance, is relative to an unmarried woman and concubine,

that must be rejected as intending a favour to the matrons; for the scope of the precepts, which allot a maintenance to women, has been already shown.

किञ्च सवर्णत्वासवर्णत्वाभ्यां पत्नीकृतविशेषेऽपि पित्रोर्भ्रातृणां चाधिकारे कथं विरोधः समाधेयः। संसर्गासंसर्गाभ्याञ्चेत्। स एव विशेषः सर्वव्यापी भवतु, किं पत्नीगोचरसवर्णादिविशेषपरिकल्पनेन। अयमपि विशेषो दूषितः अस्माभिः पूर्वप्रपञ्चेन॥53॥

यदि शंखादि के वचन सवर्णा या असवर्णा पत्नी विषयक माने जाएँ तो माता-पिता और भाइयों का अधिकार सवर्ण होने या असवर्ण होने पर होता है इसका किस प्रकार समाधान करेंगे। ऐसा संशय तो सर्वत्र ही बना रहेगा कि ये वचन सवर्ण या असवर्ण के लिए है।

53. Further argument against a different interpretation.

Moreover, under the distinction respecting the wife as belonging to the same or to a different tribe, how is the contradiction (of the text to passage of Viṣṇu and Yājñavalkya See 4 and 5) regarding the succession of parents and brothers, to be reconciled (without transposition or without connecting in costruction remote terms)? If it be by distinguishing the cases of re-union and continued separation, the same distinction may pervade the whole subject : and what occasion is there for assuming a different relative to the wife, as belonging to the same or to another tribe? But the proposed distinction, founded on re-union and separation, (see 19) has been already fully refuted by us (see 30).

सोदरासोदरकृतश्च विशेषो बृहस्पतिना पराहतः। तदाह-

सकुल्यैर्विद्यमानैस्तु पितृ-मातृ-सनाभिभिः।
असुतस्य प्रमीतस्य पत्नी तद्भागहारिणी॥

सनाभयः-सहोदराः। तेषु सत्स्वपि पत्न्या धनसम्बन्धं बोधयति। तद्भागशब्दात् कृत्स्न एव भर्तृ भागोऽवगम्यते, न पुनस्तदेकदेशः॥54॥

बृहस्पति ने सोदर और असोदर के भेद को दूर किया है–

सकुल्य के विद्यमान रहते हुए, सहोदर माता-पिता के जीवित रहते हुए पुत्रहीन मृत व्यक्ति की पत्नी को सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

सनामय का अर्थ– सहोदर है। इन सबके जीवित रहने पर भी पत्नी का धन में अधिकार बताया है। तद्भाग शब्द से सम्पूर्ण सम्पत्ति में ही भर्ता के भाग का ज्ञान होता है न कि एक भाग का।

A distinction of the whole and half blood does not reconcile the contradiction, being inconsistent with a passage of Bṛhaspati.

The distinction regarding the whole and the half blood is contradicted by Bṛhaspati, who says, "Let the wife of a deceased man, who left no male issue, take his share, notwithstanding kinsmen, a father, a mother, or uterine brethren, be present." Uterine brethern are brothers by the same mother (and of course, of the whole blood). The author declares the wife's right of succession, although such persons exist. By the term "his share", is understood the entire share appertaining to her husband; not a part of it only (sufficient for her support).

तस्मादस्मद्दर्शितैव व्यवस्था शस्त्रार्थः।।55।।

इस प्रकार शास्त्रार्थ व्यवस्था दिखाई गई है।

Conclusion in favour of the proposed construction.

Therefore the interpretation of the law is right as set forth by us.

पत्नी च भर्तृधनं भुञ्जीतैव परम्। न तु तस्य दानाधन-विक्रयान् कर्तुमर्हतिं। तदाह कात्यायनः–

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती गुरौ स्थिता।
भुञ्जीतामरणात् क्षान्ता दायादा अर्द्धमाप्नुयुः।।56।।

पत्नी भर्ता की मृत्यु के पश्चात् उसके धन का भोग कर सकती है। वह दान, आधान और विक्रय करने के लिए समर्थ नहीं है। कात्यायन के अनुसार–

पुत्रहीन विधवा, जो अपने पति की शय्या को पवित्र रखती है, गुरुजनों के साथ रहती है और स्वनियंत्रित है, वह जीवनपर्यन्त अपने पति की सम्पत्ति का उपभोग कर सकती है। पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उस धन को पति के दायाद प्राप्त करते हैं।

The widow is restricted from gift, mortgage and sale.

But he wife must only enjoy her husband's estate after his demise. She is not entitled to make a gift, mortgage, or sale of it. Thus Kātyāyana says, "Let the childless widow, preserving unsullied the bed of her lord and abiding with her venerable protector, enjoy with moderation the property until her death. After her let the heirs take it."

गुरौ-श्वशुरादौ भर्तृगृहे स्थिता यावज्जीवं भर्तृ धनं भुञ्जीत, न तु स्त्रीधनवत् स्वच्छन्दं दानाधानविक्रयानपि कुर्वीत, तस्यान्तु मृतायां पत्न्यभावे ये दुहित्रादयो दायाधिकारिणः, ते गृह्णीयु-, न पुनर्ज्ञातयः, तेषां दुहित्रादिभ्यः जघन्यत्वात् तद्बाधकत्वानुपपत्तेः। पत्नी हि तेषां बाधिका, तदधिकारस्य प्रागभावे, प्रध्वंसे च बाधकाभावस्याविशेषात् बाधानुपपत्तेः॥57॥

गुरु-ससुरादि के पति के घर में स्थित रहते हुए वह जीवन काल तक पति के धन का उपभोग करे। स्त्रीधन के समान स्वच्छन्द रूप से दान, आधान और विक्रय न करे। उसके (पत्नी के) मर जाने पर पत्नी के अभाव में जो दुहित्रादि दाय के अधिकारी है वे मृत व्यक्ति की सम्पत्ति को प्राप्त करें, न ज्ञाति आदि करें। क्योंकि दुहितादि से वे जघन्य हैं इसलिए उनको इसमें सम्मिलित नहीं करना चाहिए।

She shall enjoy the estate for life; and after her it goes to her husband's heirs.

Abiding with her venerable protector, that is, with her father-in-law or others of her husband's family, let her enjoy her husband's estate during her life; and not, as with her separate property, make a gift, mortgage, or sale of it at her pleasure. But, when she dies, the daughters or others, who would regularly be heirs in default of the wife, take the es-

tate; not the kinsmen (or sapiṇdas) : since these, being inferior to the daughter and the rest, ought not to exclude those heirs : for the widow debars them of the succession; and the obstacle being equally removed if her right cease or never take effect, it can be no bar to their claim.

नापि स्त्रीधनाधिकारिणो गृह्णीयुः, तेषां स्त्रीधनविषयत्वात् कात्यायनेनैव च स्त्रीधनाधिकारिणां वचनान्तरैरुक्तत्वात् पुनरुक्तत्वापत्तेश्च॥58॥

स्त्रीधन के अधिकारी भी स्त्रीधन ग्रहण न करें। कात्यायन ने स्त्रीधन के विषय में स्त्रीधन के अधिकारियों के वचन पूर्व में बता दिए हैं इसलिए पुनः कहने पर पुनरुक्ति दोष हो जाएगा।

Not to her own heirs.

Nor shall the heirs of the woman's separate property (as her brothers), take the succession (on failure of daughters and daughter's sons, to the exclusion of her husband's heirs); for the right of those (persons, whose succession is declared under that heads, C.4) is relative to the property of a woman (other than that which is inherited by her). Kātyāyana has propounded by separate texts the heirs of a woman's property; and (his text, declaratory of the succession to heritage), would be tautology : (consequently heritage is not ranked with woman's peculiar property).

अतः 'पत्नी दुहितरश्चैवे' त्यादिना ये पूर्वपूर्वस्याभावे परभूताधिकारिणो निर्दिष्टाः, ते यथा पत्न्यधिकारप्रागभावे गृह्णीयुः, तथा जाताधिकारायाः पत्न्या अधिकारप्रध्वंसेऽपि भोगावशिष्टं धनं गृहीयुः तदानीं दुहित्रादीनामेवान्यापेक्षया मृतोपकारकत्वात् युक्तो धनाधिकारः॥59॥

अतः "पत्नी दुहितरः" इत्यादि में पूर्व-पूर्व के अभाव में बाद-बाद वाले धनाधिकारी कहे गए हैं। वे जैसे पत्नी के अधिकार के अभाव में सम्पत्ति प्राप्त करते हैं उसी प्रकार पत्नी के अधिकार के नष्ट होने पर उपभोग से अवशिष्ट धन को उसके बाद के उत्तराधिकारी प्राप्त करते

हैं। यहाँ दुहितादि का अधिकार उचित है क्योंकि वह अन्य की अपेक्षा मृतक की बहुत उपकारक होती है।

The heirs of her husband take the residue, after her use and consumption.

Therefore those persons, who are exhibited in a passage above cited (see 4) as the next heirs on failure of prior claimants, shall, in like manner as they would have succeeded if the widow's right had never taken effect, equally succeed to the residue of the estate remaining after her use of it, upon the demise of the widow in whom the succession has vested. At such time (when the widow dies, or when her right ceases), the succession of daughters and the rest is proper, since they confer greater benefits on the deceased (by the oblations presented by them) than other claimants (such as the sapiṇḍas above-mentioned, See 37).

तथा दानधर्मे–

स्त्रीणां स्वपतिदायस्तु उपभोगफलः स्मृतः।
नापहारं स्त्रियः कुर्युः, पतिदायात् कथञ्चन॥60॥

महाभारत के दानधर्म में कहा गया है कि–

स्त्रियों का अपने पति के धन में उपभोग मात्र का अधिकार है। वह पति के दाय (धन) में से कभी भी नष्ट न करे।

A passage of the Mahābhārata confirms this.

Thus in the Mahābhārata, in the chapter entitled Dānadharma, it is said, "For women, the heritage of their husbands is pronounced applicable to use. Let not women on any account makes waste of their husband's wealth."

उपभोगोऽपि न सूक्ष्मवस्त्रपरिधानादिना, किन्तु स्वशरीरधारणेन पत्युरुपकारकत्वात् देहधारणोचितोपभोग-भ्यनुज्ञानम्। एवञ्च भर्तुरौर्द्ध्वदैहिकक्रियाद्यर्थ दानादिकमनुमतम्। अतएव 'नापहारं स्त्रियः कुर्युरि' त्यपहारवचनम्, अपहारश्च धनस्वाम्यनुपयोगे भवति॥61॥

उपभोग में सूक्ष्म वस्त्रादि का पहनना नहीं है, किन्तु पति को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से अपने शरीर को धारण करने के लिए किया जाने वाला उचित व्यय है। इस प्रकार पति की अन्त्येष्टि क्रिया आदि के लिए उसे दान की अनुमति है। अतएव 'नापहारं स्त्रियः कुर्युः' इस वचन में अपहार पद से अभिप्राय सम्पत्ति को नष्ट करना स्वामि के लिए उचित नहीं है।

Exposition of the passage. She may make a gift or sale for the obsequies of her husband.

Even use should not be by wearing delicate apparel and similar luxuries : but, since a widow benefits her husband by the preservation of her person, the use of property sufficient for that purpose is authorised. In like manner (since the benefit of the husband if to be consulted), even a gift or other alienation is permitted for the completion of her husband's funeral rites. Accordingly the author says, "Let not women make waste." Here "waste" intends expenditure not useful to the owner of the property.

अतएव वर्तनाशक्तौ आधानमप्यनुमतम्। तत्राप्यशक्तौ विक्रयणमपि, न्यायस्याविशेषात्॥62॥

निर्वाह न होने पर उसे आधान (गिरवी) करने की अनुमति है। फिर भी असमर्थ हो तो वह बेच भी सकती है।

For her maintenance, she may mortgage or sell, if necessary.

Hence, if she be unable to subsist otherwise, she is authorised to mortgage the property; or, it still unable, she may sell or otherwise alien it : for the same reason is equally applicable.

भर्तुरौर्ध्वदैहिकक्रियार्थमर्थारूपं भर्तृ पितृव्यादिभ्यो दद्यात्।

तदाह बृहस्पतिः–

पितृव्य-गुरु-दौहित्रान् भर्तुः स्वस्त्रीयमातुलान्।
पूजयेत् कव्य-पूर्ताभ्यां वृद्धानाथातिथीन् स्त्रियः॥

पितृव्यपदं भर्तुः सपिण्डपरम्। दौहित्रपदं भर्तुर्दुहितृ-सन्तापनपरम्। स्वस्त्रीयपदं भर्त्तुः स्वसृसन्तानपरम्। मातुलपदञ्च भर्तुर्मातृकुलपरम्। तदेवमादिभ्यो दद्यात्, न पुनरेतेषु सत्स्वेव स्वपितृकुलेभ्यः, पितृव्यादिवचननार्थक्यावत्॥63॥

(पत्नी) पति द्वारा किये जानी वाली अन्त्येष्टि क्रिया को जिसमें भर्ता के चाचादि हैं उनको मृत पति की पत्नी करे। इस प्रसंग में बृहस्पति ने कहा है कि–

पत्नी अन्त्येष्टि क्रिया एवं पूर्त द्वारा अपने पति के चाचा, गुरु, दौहित्र, भगिनी पुत्र, माता, बूढ़े लोगों, असहाय, अतिथियों एवं स्त्रियों का सम्मान करे। यहाँ पर पितृव्य पद से अभिप्राय पति के सपिण्ड से है, दौहित्र से पति की पुत्री की सन्तान, स्वस्रीय पद से पति की बहन की सन्तान, मातुल पद से पति की माता के कुल से अर्थ है। इन उपर्युक्त कहे गए व्यक्तियों को पिण्डदान करना चाहिए। अपने पति के कुल के संबन्धियों के विद्यमान रहने पर भी अपने कुल के व्यक्तियों का पिण्डदान न करे। नहीं तो पितृव्यादि शब्द अनर्थक हो जायेंगे।

She should give suitable presents to her husband's kindred at his obsequies. Not to her own kindred.

Let her give to the paternal uncles and other relatives of her husband, presents in proportion to the wealth, at her husband's funeral rites. Bṛhaspati directs it, saying "With presents offered to his manes, and by pious liberality, let her honour the paternal uncles of her husband, his spiritual parents and daughter's sons, the children of his sisters, his maternal uncles and also ancient and unprotected persons, guests, and females of the family." The term "paternal uncle" intends any sapiṇḍa of her husband; "daughter's sons," the descendants of her husband's daughter; "children of his sister," the progeny of her husband's sister's son; "maternal uncles," her husband's mother's family. To these and to the rest, let her give presents, and not to the family of her own father, while such persons are forthcoming : for the specific mention of paternal uncles and the rest would be superfluous.

तदनुमत्या तु स्वपितृमातृकुलेभ्योऽपि दद्यात्।

तदाह नारदः–

मृते भर्तर्यपुत्रायाः पतिपक्षः प्रभुः स्त्रियाः।
विनियोगेऽर्थरक्षासु भरणे च स ईश्वरः॥
परिक्षीणे पतिकुले निर्मनुष्ये निराश्रये।
तत्सपिण्डेषु चासत्सु पितृपक्षः प्रभुः स्त्रियाः॥

(ना. 13-28-29)

ी मृत्यु के पश्चात् पुत्रहीन विधवा स्त्री के पति के संबन्धी
ामी होते हैं। धन का विनियोग करने में, रक्षा एवं
ने में वे ही उसके ईश्वर हैं। पति के कुल के नष्ट होने
ोने पर, निराश्रय होने पर अथवा सपिण्डपर्य्यन्त अभाव
अपने पितृ कुल के संबन्धी उसके स्वामी होते हैं।

sancion of her husband's relations. Nārada
m to be her guardians. She is subject to their

consent, however, she may bestow gifts on
her own father and mother. Thus Nārada says,
usband is deceased, his kin are the guardians of
widow. In the disposal of the property and care
as well as in her maintenance, they have full power.
he husband's family be extinct or contain no male,
e helpless, the kin of her own father are the guardians of the widow, if there be no relations of her husband within the degree of a sapiṇḍa." In the disposal of property by gift or otherwise, she is subject to the control of her husband's family, after his disease, and in default of sons.

विनियोगे-दानादौ। पतिपुत्राभावे भर्तृकुलपरतन्त्रता तस्याः॥65॥

विनियोग से अभिप्राय दानादि से है। पति और पुत्र के अभाव में वह स्त्री पति के कुल द्वारा परतन्त्र है।

In like manner, the succession devolving on a daughter passes, after her, to her father's heirs.

In like manner, if the succession have devolved on a daughter, those persons, who would have been heirs of her father's property in her default, (as her son, her paternal grandfather), take the succession on her death; not the heirs of the daughter's property (as her daughter's son).

एवञ्च दुहितुरप्यधिकारे जाते, तस्यां मृतायां, तदभावोक्ताः पितृधनाधिकारिणो गृह्णीयुः, न तु दुहितृधनाधिकारिणः। पत्न्या च भर्तृ धनात् कन्यायै विवाहार्थ तुरीयांशो देयः, पुत्राणामेव तद्दानप्रतिपादनात् दण्डापूपायितम् पत्न्यादीनां दानम्।।66।।

इस प्रकार दुहिता के अधिकार होने पर, उसके मर जाने पर, उसके अभाव में पितृधन के अधिकारी (अपुत्र) मृत व्यक्ति की सम्पत्ति को ग्रहण करते हैं, न कि दुहिता धन के अधिकारी। पत्नी पति की सम्पत्ति में से कन्या के विवाह के लिए चतुर्थांश देती है जिस प्रकार पुत्र पिता के दाय में से कन्या को चतुर्थांश देता है।

An unmarried daughter should have a share alloted by the widow for the expenses of her marriage.

The widow should give to an unmarried daughter a fourth part out of her husband's estate, to defray the expenses of the damsel's marriage. Since sons are required to give that allotment, much more should the wife, or any other successor, give a like portion.

इति पत्न्यधिकारः।।67।।

इस प्रकार से पत्न्यधिकार की चर्चा समाप्त हुई।

Conclusion.

Thus has the widow's right of succession been explained.

इति पारिभद्रकुलोद्भवस्य महामहोपाध्याय-श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागेऽपुत्रधने पत्न्यधिकारो नाम एकादशेऽध्याये प्रथमः परिच्छेदस्समाप्तः।

द्वितीयपरिच्छेदः

पत्यभावे दुहितृदौहित्राधिकारः

पत्यभावे दुहितुरधिकारः, तत्र मनु-नारदौ–

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि जीवन्त्यां कथमन्यो हरेद्धनम्।

(म. 9-130 ना. 13-49)

दुहितरं विशिनष्टि नारदः–

पुत्राभावे च दुहिता तुल्यसन्तानदर्शनात्।
पुत्रश्च दुहिता चोभे पितुः सन्तानकारिके।।

दुहितुरधिकारे सन्तानदर्शनं हेतुतया निगदितम्, सन्तानश्च पिण्डदः अभिमतः, अपिण्डदस्याऽनुपकारकत्वेन अन्य-सन्तानादसन्तानाच्चाविशेषात्।।1।।

पत्नी के अभाव में पुत्री और दौहित्र का अधिकार–

पत्नी के अभाव में पुत्री का (अपुत्र व्यक्ति की) सम्पत्ति में अधिकार है। इस प्रसंग में मनु और नारद का वचन है कि–पुत्र पिता की आत्मा है और जैसा पुत्र है, वैसी ही पुत्री भी है। आत्मस्वरूप उस (पुत्री) के जीवित रहने पर दूसरा कोई सम्पत्ति को कैसे ले सकता है।

नारद ने दुहिता का क्रम से वर्णन किया है–

पुत्र के अभाव में पुत्री समान सन्तान कही गई है। ओर पुत्री–यह दोनों पिता की सन्तान मानी गई हैं। दुहिता के अधिकार में सन्तान (होना) कारण बताया गया है। सन्तान से अभिप्राय पिण्डदान करने से है। (पुत्री यद्यपि स्वयं पिण्डदान नहीं कर सकती तथापि वह अपने पुत्र (दौहित्र) के माध्यम से पिण्डदान करके मृत पिता का पारलौकिक कल्याण करती है।) पिण्ड न देने से अनुपकारक होने से अन्य की सन्तान और असन्तान (सन्तान का अभाव) में कोई अन्तर नहीं रहता है।

A daughter inheris if there be no widow, conformably with passage of Manu and Nārada : in right of oblations to be presented by her son.

The daughter's right ot succession on failure of the wife *(isdeclared)*. On that subject Manu and Nārada say, "The son of a man is even as himself; and the daughter is equal to the son : how then can any other inherit his property, notwithstanding the survival of her, who is as it were himself?" Nārada particularises the daughter (as inheriting in right of her continuing the line of succession) : "On failure of male issue, the daughter inherits, for she is equally a cause of perpetuating the race; since both the son and daughter are the means of prolonging the father's line." The author states the circumstance of her continuing the line as a reason of the daughter's succession : and the line of descendants here intends such descendants as present funeral oblations; for one, who is not an offerer of oblations, confers no benefits and consequently differs in no respect from the offspring of a stranger or no offspring at all.

दौहित्रश्च तत्पिण्डदाता। न च तत् पुत्रः, नापि दौहित्री, तत्पर्यन्तेन पिण्डविच्छेदात्॥2॥

दौहित्र ही उसको (नाना को) पिण्डदान करता है, दौहित्र का पुत्र और न ही दौहित्री पिण्डदान करते हैं। क्योंकि उनके देने से पिण्डदान का विच्छेद हो जाता है।

Her son only presents such oblations.

It is the daughter's son, who is the giver of a funeral oblation, not his son; nor the daughter's daughter : for the funeral oblation ceases with him.

अतः पुत्रवती, सम्भावितपुत्रा चाधिकारिणी। बन्ध्या विधवा दुहितृप्रसूत्यादिना विपर्यस्तपुत्रा पुनरनधिकारिण्येवेति दीक्षितमत- मादरणीयम्॥3॥

अतः पुत्रवती और सम्भावितपुत्रा का ही पिता के धन में अधिकार है। वन्ध्या (बाँध), विधवा, केवल पुत्रियों वाली और विपर्यस्तपुत्रा (पुत्र

सन्तान उत्पन्न करने की असामर्थ्य वाली) का अनधिकार है–ऐसा दीक्षित के मत का आदर करना चाहिए।

3. Dīkṣita rightly prefers the daughter, who has or is likely to have male issue.

Therefore the doctrine should be respected, which Dīkṣita maintains, namely, that a daughter, who is mother of male issue, or who is likely to become so, is competent to inherit; not one, who is a widow, or is barren, of fails in bringing male issue as bearing none but daughters, or from some other cause.

प्रथमं कन्यायाः पितृधनेऽधिकार इति निरूपणम्

तत्र प्रथमं कन्यैवैका पितृधनहारिणी।

यथा पराशरः–

अपुत्रस्य मृतस्य कुमारी रिक्थं गृह्णीयात्, तदभावे चोढ़ा। ऊढ़ापदम् पूर्वोक्ते विशेषपरम्।।4।।

पिता के धन में सबसे पहले कन्या के अधाकर का निरूपण–

प्रथम केवल कन्या ही पिता के धन को प्राप्त कर सकती है। पराशर के अनुसार–

पुत्रहीन व्यक्ति की मृत्यु के बाद कुमारी (कन्या) धन को प्राप्त करे उसके अभाव में विवाहिता कन्या। यहाँ पर ऊढ़ा पद से अभिप्राय अविपर्यस्तपुत्र से है अर्थात् सम्भावितपुत्रा अथवा पुत्र वाली विवाहिता कन्या के लिए विशेष कहा गया है।

The maiden daughter has the best claim, according to Parāśara.

Here again, the unmarried daughter is in the first place sole heiress of her father's property (to the exclusion of any daughter verbally betrothed). Accordingly Parāśara says, "Let a maiden daughter take the heritage of one who dies leaving no male issue; or, if there be no such daughter, a married one shall inherit." In the term "married" is here implied the restriction before mentioned (excluding one who fails in bringing male issue).

तथा देवलः–

कन्याभ्यश्च पितुर्द्रव्यात् देयं वैवाहिकं वसु।
अपुत्रिकस्य कन्या स्वा धर्मजा पुत्रवद्धरेत्।।

पुत्रिकापदं पुत्रोपलक्षणम्। स्वा सवर्णा। धर्मजा औरसी।।5।।

देवल के अनुसार–

कन्या को पिता के धन में से विवाहोचित द्रव्य मिलना चाहिए। परन्तु यदि पुत्र न हो तो सवर्णा औरसी कन्या पुत्र के समान ही धन प्राप्त करे। यहाँ पर पुत्रिका पद पुत्र की ओर निर्देश करता है। स्वा शब्द सवर्णा कन्या के लिए और धर्मजा शब्द औरसी के लिए प्रयुक्त हुआ है।

And Devala.

Thus Devala says, "To maidens should be given a nuptial portion out of the father's estate. But of him, who leaves no appointed daughter, (nor son) the unmarried daughter, belonging to his own tribe and legitimate, shall take the inheritance, like a son." The term "appointed daughter" implies also son. "His own", belonging to the same tribe with himself. "Legitimate"; his own lawful issue.

युक्तञ्चैतत् धनमन्तरेणापरिणीतायाः कन्याया ऋतुदर्शने पित्रादीनां नरकपातश्रुतेः। तदाह विष्णुः–

यावत्तु कन्यामृतवः स्पृशन्ति तुल्यैः सकामामपि याच्यमानाम्।

तावन्ति भूतानि हतानि ताभ्यां मातापितृभ्यामिति धर्मवादः (वसिष्ठ 17-65) तथा पैठीनसिः, "यावन्नोद्भिद्येते स्तनौ तावदेव देया। अथ ऋतुमती भवति, तदा दाता प्रतिग्रहीता च नरकमाप्नोति, पितृ-पितामह- प्रपितामहाश्च विष्ठायां जायन्ते, तस्मान्नग्निका दातव्या"।।6।।

यह युक्तिसंगत भी है कि धन का अभाव होने से रजस्वला कन्या के अविवाहित रहने से उसके पिता को नरक की प्राप्ति होती है। यथा

विष्णु के अनुसार– अनुरूप वर की इच्छा करने वाली कन्या की अन्य पुरुष यदि याचना करते हैं और पिता द्वारा कन्या का विवाह न किया जाए तो जितनी बार कन्या ऋतुमती हो उतनी बार माता-पिता को भ्रूणहत्या का पाप लगता है–यह धर्म कहा गया है। पैठीनसि का भी यही वचन है कि–कन्या का विवाह स्तनों के उदभेदन अर्थात् प्रगट होने से पूर्व करना चाहिए। यदि विवाह के पूर्व ऋतुमती हो जाती है तो देने वाला और ग्रहण करने वाला दोनों ही नरक में जाते हैं और पिता पितामह एवं प्रपितामह विष्ठा में उत्पन्न होते हैं इसलिए नग्निका कन्या का ही विवाह करना चाहिए।

Her marriage is requisite to the welfare of the manes of her ancestor; as shown by Vasiṣṭha and Paiṭhīnasi.

This is proper : for, should the maiden arrive at puberty unmarried, through poverty, her father and the rest would fall to a region of punishment, as declared by holy write. Thus Vasiṣṭha says "So many seasons of menstruation as overtake a maiden feeling the passion of love and sought in marriage by persons of suitable rank, even so many are the beings destroyed by both her father and her mother; this is maxim of the law." So Paiṭhīnasi: "A damsel should be given in marriage, before her breasts swell. But, if she have menstruated (before marriage), both the giver and the taker fall to the abyss of hell; and her father grandfather and great grandfather, are born (insects) in ordure. Therefore she should be given in marriage while she is yet a girl."

तस्मात् विवाहोपयुक्तत्वेन पित्रादीनां नरकनिस्तारकत्वात्, परिणीतायाश्च पुत्रद्धारेणाप्युपकारकत्वात्, तदर्थं धनं स्वाम्यर्थमेव भवतीति, पत्यभावे न्याय्यं कन्यास्वत्वम्।।7।।

इस कारण विवाह के लिए उपयुक्त द्रव्य होने पर विवाहिता कन्या पितादि की नरक से रक्षा करती है और अपने पुत्र के द्वारा पिता का कल्याण करती है (अर्थात् पिण्डदान करती है) इस कारण पिता के धन पर उसका स्वामित्व होता है। अतः पत्नी के अभाव में कन्या का स्वत्व न्यायोचित है।

And the appropriation of the wealth to that purpose is for her father's benefit.

Since then the father and the rest are saved from hell by sufficient property becoming applicable to the charges of her marraige; and being accordingly married, she confers benefits on her father by means of her son; the wealth devolving on her is for the benefit of the (former) owner, and it is reasonable, therefore, that the property should descend to the unmarried daughter, on failure of the wife.

पितृधने कन्याया अभावे संभावितपुत्राया अधिकारनिरूपणम्।

कन्यायास्त्वभावे सम्भावितपुत्रायाः, पुत्रवत्याश्चाधिकारः।

तदाह बृहस्पतिः–

सदृशी सदृशेनोढ़ा भर्तृशुश्रूषणे रता।
कृताकृता वाऽपुत्रस्य पितुर्धनहरी तु सा॥8॥

पिता के धन में कन्या के अभाव में संभावितपुत्रा के अधिकार का निरूपणम्–

कन्या के अभाव में संभावित पुत्रा का और पुत्रवती का अधिकार।

बृहस्पति का कथन है कि– वह कन्या जो पिता के वर्ण की है और उसी वर्ण के पति से विवाहिता है, पति-परायणा है वह चाहे पुत्रिका की गई हो अथवा नहीं की गई हो वह पिता (पुत्रहीन) के धन को प्राप्त करती है।

Next a daughter who has or is likely to have male issue, succeeds : as intimated by Bṛhaspati.

But, if there be no maiden daughter, the succession devolves on her who has, and no her who is likely to have, male issue. That is declared by Bṛhaspati : "Being of equal class and married to a man of like tribe, and being virtuous and devoted to obedience, she (namely, the daughter), whether appointed or not appointed to continue the male line, shall take the property of her father who leaves no son (nor wife)."

सदृशी-पितृसवर्णा। सदृशेनोढ़ेति, उत्तमाधमवर्ण-परिणीतानिरासार्थम्, उत्तमाधमपरिणीतादुहितृजातस्य अधमोत्तमवर्णमातामहादिश्राद्धनिषेधात्। सवर्णेनोढ़ायास्तु पुत्रद्वारेण पित्रुपकारकत्वात्।।9।।

सदृशी से तात्पर्य– पिता की जाति की कन्या। सदृशेनोढ़ेति– उसी जाति के पति से विवाहित। यहाँ पर उत्तम और अधम अर्थात् उच्च और निम्न वर्ण के पति से विवाहित पुत्री का निराकरण किया गया है क्योंकि उत्तम और अधम वर्ण में विवाहित पुत्री से उत्पन्न पुत्र को मातामह अर्थात् नाना के श्राद्ध करने का निषेध है। अतएव सवर्ण पति से ाहित पुत्री ही अपने पुत्र के माध्यम से पिता का उपकार करती है।

pretation of the text.

equal class. Belonging to the same tribe with her fa- arried to a man of like tribe). This is intended to ex- ne married to a man of a superior or inferior tribe. offspring of a daughter married to a man of a higher class is forbidden to perform the obsequies of his al grandfather and other ancestors who are of infe- of superior rank, But one, married to a man belong- the same class, confers benefits on her father by means er son.

पुत्रिकापुत्रस्य तु पुत्रवदेवोपकारकत्वातिशयेन पुत्रिकायाः पुत्रतुल्यत्वात्, पुत्रिकौरसयोः समधनाधिकारः अपुत्रिकाया-स्तूढ़ायाः पुत्रादिन्यूनोपकारकस्वपुत्रद्वारेणोपकारकत्वमिति कन्यापर्यन्तानामभाव एव धनाधिकारिता युक्ता।।10।।

पुत्रिका पुत्र पुत्र के समान पितरों का उपकार करती है अतः पुत्रिका पुत्र तुल्य होने से पुत्रिका और औरस पुत्र का पिता के धन में समान अधिकार है। विवाहित पुत्री जो पुत्रिका नहीं की गई (अर्थात् सामान्य पुत्री) का पुत्रादि की अपेक्षा कम उपकार करती है। वह पुत्र के द्वारा ही पिण्डदान करती है इसलिए कन्या पर्यन्त अभाव होने पर ही पुत्रिका का धन में अधिकार है।

A daughter appointed to continue the male line has a preferable title.

The son of a daughter appointed to continue the male line is, like a son, highly beneficial to his ancestor; and through him, the appointed daughter is equal to a son : wherefore the appointed daughter and legitimate son have an equal right of succession. But a married daughter, who was not so appointed, confers less benefit on her father than the son and the rest (viz., the son's son and grandson's son, and the widow); and is of benefit by means only of her son : it is proper, therefore, that she should succeed only on failure of other heirs down to the unmarried daughter.

न च वाच्यम् एवं तर्हि पुत्रवत्या एव प्रथमाधिकारोऽस्तु, तदभावे तु सम्भावितपुत्राया इति, यतः तस्याः पश्चादुत्पन्नस्य दौहित्रस्यानधिकारापत्तेः। न च तद्युक्तं दौहित्रतया द्वयोरप्युपकाराविशेषात्॥11॥

ऐसा भी नहीं कहना चाहिए कि पुत्रवती का ही प्रथम अधिकार है और उसके अभाव में सम्भावितपुत्रा का; क्योंकि ऐसा करने पर बाद में उत्पन्न हुए दौहित्र के अधिकार की आपत्ति हो जाएगी यद्यपि दौहित्र होने से दोनों ही समान रूप से मातामह का कल्याण करते हैं।

An argument for preferring one who has male issue to the maiden daughter, refuted.

It must not be alleged, that, admitting this doctrine (of benefit conferred being the cause of a right of succession), the daughter, who has male issue, should alone inherit in the first instance; but, on failure of such, then a daughter who may have issue, For her son, born subsequently, might in this manner be excluded from the succession. Nor is this proper; for both equally confer benefits on their grandfather, as daughter'

भर्त्तृशुश्रूषापरत्वेनावैधव्य प्रदर्शयन् सम्भावितपुत्रतां प्रदर्शयति॥12॥

भर्तृशुश्रूषा अर्थात् पतिपरायणा शब्द अवैधव्यता को प्रकट करते हुए

सम्भावित पुत्रा का अधिकार प्रदर्शित करता है।

A widow is excluded by implication (see 8).

By specifying "obedience" to her husband (see 8), the author indicates, that she is not in the state of widowhood, and that consequently she may have issue.

सेति च पूर्ववचनोपात्ता दुहिता परामृश्यते। तदेवं सदृशी सदृशेनोढ़ा इत्यादि विशेषणात् न दुहितृमात्रतया पितृधनाधिकारितेति दर्शयति।।13।।

'सा च' यह पूर्ववचन में उद्धृत हुआ दुहिता की ओर निर्देश करता है और "सदृशी सदृशेनोढ़ा" इत्यादि विशेषण वाली पुत्री ही धन की अधिकारिणी होती है, केवल दुहितामात्र से ही पिता के धन की अधिकारिणी नहीं होती।

Further exposition of the text. (see 8). A daughter does not inherit of coruse, in right of her relation as such.

I the text before cited (see 8), the pronoun refers to the word "daughter" contained in a preceding passage (which will be forthwith quoted, See 14). Thus, by the conditions specified, that she be "of equal class" and "married to a man of like trib[illegible]" (see 8), the author shows, that she does not [illegible] wealth merely in right of her relation [illegible] daughter's right of succession is [illegible]age, the mention of it by the [illegible]xt would be a vain repetition. [illegible]at was suggested generally, is

अन्यथा–

अङ्गादङ्गात् सम्भवति पुत्रवद्दुहिता नृणाम्।
तस्याः पितृधनं त्वन्यः कथं गृह्णीत मानवः।।

इत्यनेन दुहित्रधिकारे कथिते सदृशी सदृशेनोढ़ेत्यादिना तस्यैवाभिधानम् पुनरुक्तं स्यात्। सामान्यप्राप्तेस्तु विशेषकथनमपुनरुक्तमेव।।14।।

अन्यथा– कन्या पुत्र के समान पिता के शरीर से उत्पन्न होती है अतः उसके रहते उसके पिता की सम्पत्ति अन्य व्यक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है? इस बृहस्पति के वचन में दुहिता का अधिकार बताया गया है और सदृशी सदृशेनोढ़ा वचन भी इसी भाव को बताता है। अतएव यहाँ पुनरुक्ति दोष है। जीमूतवाहन ने कहा है कि सामान्य नियम की प्राप्ति होने पर विशेष नियम के विधान में पुनरुक्ति नहीं होती।

(अर्थात् सामान्य नियम से केवल दुहिता का बोध होता है और विशेष नियम यह है कि पुत्री जो पिता के वर्ण की हो, उसी वर्ण के पति से विवाहिता है, पतिपरायणा है)

A passage of Bṛhaspati compares the daughter to the son.

"As a son, so does the daughter of a man proceed from his several limbs. How then should any other person take her father's wealth?"

यत एव स्वपुत्रद्वारेण पिण्डदातृतया दुहितुः पितृधनाधिकारः। अतएव पुत्रिकाया अपि पित्रुपरमजातधनसम्बन्धायाः पश्चाद्बन्ध्यात्वेन, तद्भर्तुर्वा प्रसवासामर्थ्येन, विपर्यस्तपुत्राया मरणे, तद्धनं न भर्तुः।

शङ्खलिखितौ यथा–

प्रेतायाः पुत्रिकायास्तु न भर्ता द्रव्यमर्हति, अपुत्रायाः।

तथा पैठीनसिः–

प्रेतायां पुत्रिकायान्तु न भर्ता द्रव्यमर्हति।
अपुत्रायां कुमार्या वा स्वस्त्रा ग्राह्यं तदन्यया॥

ततः कुमार्या स्वस्त्रा, अन्यथा वा पुत्रवत्या सम्भावितपुत्रया स्वस्त्रा तद्धनं ग्राह्यम्। अतः स्त्र्यधिकारे व्यावृत्तिरन्याधिकारस्य॥15॥

पुत्री का पिता के धन में अधिकार अपने पुत्र के माध्यम से पिण्डदान करने से है। अतएव पुत्रिका का पिता की मृत्यु के पश्चात् धन

सम्भावित पुत्रा का अधिकार प्रदर्शित करता है।

A widow is excluded by implication (see 8).

By specifying "obedience" to her husband (see 8), the author indicates, that she is not in the state of widowhood, and that consequently she may have issue.

सेति च पूर्ववचनोपात्ता दुहिता परामृश्यते। तदेवं सदृशी सदृशेनोढ़ा इत्यादि विशेषणात् न दुहितृमात्रतया पितृधनाधिकारितेति दर्शयति॥13॥

'सा च' यह पूर्ववचन में उद्धृत हुआ दुहिता की ओर निर्देश करता है और "सदृशी सदृशेनोढ़ा" इत्यादि विशेषण वाली पुत्री ही धन की अधिकारिणी होती है, केवल दुहितामात्र से ही पिता के धन की अधिकारिणी नहीं होती।

Further exposition of the text. (see 8). A daughter does not inherit of coruse, in right of her relation as such.

I the text before cited (see 8), the pronoun refers to the word "daughter" contained in a preceding passage (which will be forthwith quoted, See 14). Thus, by the conditions specified, that she be "of equal class" and "married to a man of like tribe, etc." (see 8), the author shows, that she does not inherit her father's wealth merely in right of her relation as daughter. Else, since the daughter's right of succession is declared by the following passage, the mention of it by the same author in the foregoing text would be a vain repetition. But a special rule, regarding what was suggested generally, is not tautology.

अन्यथा–

अङ्गादङ्गात् सम्भवति पुत्रवद्दुहिता नृणाम्।
तस्याः पितृधनं त्वन्यः कथं गृह्णीत मानवः॥

इत्यनेन दुहित्रधिकारे कथिते सदृशी सदृशेनोढ़ेत्यादिना तस्यैवाभिधानम् पुनरुक्तं स्यात्। सामान्यप्राप्तेस्तु विशेषकथनमपुनरुक्तमेव॥14॥

अन्यथा– कन्या पुत्र के समान पिता के शरीर से उत्पन्न होती है अतः उसके रहते उसके पिता की सम्पत्ति अन्य व्यक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है? इस बृहस्पति के वचन में दुहिता का अधिकार बताया गया है और सदृशी सदृशेनोढ़ा वचन भी इसी भाव को बताता है। अतएव यहाँ पुनरुक्ति दोष है। जीमूतवाहन ने कहा है कि सामान्य नियम की प्राप्ति होने पर विशेष नियम के विधान में पुनरुक्ति नहीं होती।

(अर्थात् सामान्य नियम से केवल दुहिता का बोध होता है और विशेष नियम यह है कि पुत्री जो पिता के वर्ण की हो, उसी वर्ण के पति से विवाहिता है, पतिपरायणा है)

A passage of Bṛhaspati compares the daughter to the son.

"As a son, so does the daughter of a man proceed from his several limbs. How then should any other person take her father's wealth?"

यत एव स्वपुत्रद्वारेण पिण्डदातृतया दुहितुः पितृधनाधिकारः। अतएव पुत्रिकाया अपि पित्रुपरमजातधनसम्बन्धायाः पश्चाद्बन्ध्यात्वेन, तद्भर्तुर्वा प्रसवासामर्थ्येन, विपर्यस्तपुत्राया मरणे, तद्धनं न भर्तुः।

शङ्खलिखितौ यथा–

प्रेतायाः पुत्रिकायास्तु न भर्ता द्रव्यमर्हति, अपुत्रायाः।

तथा पैठीनसिः–

प्रेतायां पुत्रिकायान्तु न भर्ता द्रव्यमर्हति।
अपुत्रायां कुमार्या वा स्वस्रा ग्राह्यं तदन्यया।।

ततः कुमार्या स्वस्रा, अन्यथा वा पुत्रवत्या सम्भावितपुत्रया स्वस्रा तद्धनं ग्राह्यम्। अतः स्त्र्यधिकारे व्यावृत्तिरन्याधिकारस्य।।15।।

पुत्री का पिता के धन में अधिकार अपने पुत्र के माध्यम से पिण्डदान करने से है। अतएव पुत्रिका का पिता की मृत्यु के पश्चात् धन

में स्वामित्व होता है परन्तु बाद में यदि वह वन्ध्या हो जाती है या उसका पति सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ होता है या उसके केवल पुत्री सन्तान ही होती है तो उस धन को उसके मरने के पश्चात् उसका पति नहीं प्राप्त करता। शंखलिखित ने कहा है कि–पुत्रहीन पुत्रिका की मृत्यु के बाद उस धन का अधिकारी पति नहीं होता। पैठीनसि का भी यही है कि–पुत्रहीन पुत्रिका का पति धन का अधिकारी नहीं है। कुमारी या अन्य उस धन को ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार कुमारी या अन्य पुत्रवती होने वाली बहन उस धन को ग्रहण करे। अत: अधिकार में अन्य किसी का अर्थात् पति का अधिकार बाधक है।

appointed daughter bear no issue, the property does ot go to her husband : according to Śaṅkha and Likhita; and Paiṭhīnasi.

Since a daughter's right of succession to the property her father is founded on her offering funeral oblations by means of her son; therefore, even in the case of an appointed daughter, on whom the estate has devolved by the demise of her father, should she bear no male issue in consequence of her proving barren, or because her husband is incapable of procreation, the property does not go upon her death to her husband. Thus Śaṅkha and Likhita say, "The husband is not entitled to the wealth of his wife, being an appointed daughter, if she die leaving no issue." So Paiṭhiīnasi : "On the death of an appointed daughter, her husband does not inherit her property : if she leave no issue, it shall be taken by her unmarried sister or by another." Hence her property is to be taken by her maiden sister, or by another sister likely to have issue. Therefore, when the succession has devolved on a female (her husband's) claim (as her heir) is precluded.

यत्तु मनुवचनम्,

अपुत्रायां मृतायान्तु पुत्रिकायां कथञ्चन।
धनं तत् पुत्रिकाभर्ता हरेतैवाविचारयन्।।

(मनु. 9–135)

तदविपर्यस्तपुत्रायाः, उत्पन्नमृतपुत्रायाः पुत्रिकाया मरणे वेदितव्यम्॥16॥

मनु का वचन है कि–किसी प्रकार बिना पुत्र उत्पन्न किए ही पुत्रिका यदि मर जाए तो उसके (पिता के) धन को पुत्रिका का पति निःसन्देह होकर ग्रहण करे। यहाँ पर जीमूतवाहन ने कहा है कि उसी अपुत्रा पुत्रिका की मृत्यु के पश्चात् उसके पति का अधिकार है जिसकेपहले पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु बाद में मर गया।

A contradictory passage of Manu supposes her to have borne issue.

But the following passage of Manu must be understood to be applicable, on the demise of an appointed daughter, who has not been destitute of male issue, having borne a son who has died. "Should a daughter, appointed to continue the male line, die by any accident without a son, the husband of that daughter may without hesitation possess himself of her property."

पिण्डदानमेव च द्वयोरेकं निमित्तमनुवदति।

बृहस्पतिः–

यथा पितृधने स्वाम्यं तस्याः सत्स्वपि बन्धुषु।
तथैव तत्सुतोऽपीष्टे मातृमातामहे धने॥

यथा येन दौहित्रदेयपिण्डेन दुहिता पितृधनाधिकारिणी, तथैव तेनैव पिण्डदानेन दुहितृसुतोऽपि मातामहधने स्वामी सत्स्वपि पित्रादिषु॥17॥

बृहस्पति ने कहा है कि–पिण्डदान करना ही दोनों (दुहिता एवं दौहित्र) का धन ग्रहण में निमित्त है।

जिस प्रकार अन्य बन्धुओं के विद्यमान रहते हुए पुत्री उत्तराधिकारिणी के रूप में पिता के धन का स्वामित्व प्राप्त करती है उसी प्रकार पुत्र (दौहित्र) मातामह की सम्पत्ति का स्वामी होता है। इसी की व्याख्या करते हुए जीमूतवाहन ने कहा है कि–पितादि बन्धुओं के रहते हुए जिस

प्रकार पुत्री पुत्र (दौहित्र) द्वारा दिए जाने वाले पिण्डदान से पितृधन की अधिकारिणी होती है उसी प्रकार दौहित्र भी मातामह का पिण्डदान करने से मातामह के धन का अधिकारी होता है।

A daughter's son is the next heir; as declared by Bṛhaspati.

Bṛhaspati. recites the gift of unreal oblation as the sole cause (or right) in the instance of both (the daughter and the grandson). "As the ownership of her father's wealth devolves on her, although kindred exist; so her son likewise is acknowledged to be heir to his maternal grandfather's estate." As the daughter is heiress of her father's wealth in right of the funeral oblation which is to be presented by the daughter's son; so is the daughter's son owner of his maternal grandfather's estate in right of offering that oblation, notwithstanding the existence of kindered, such as the father and others.

न च पुत्रिकापुत्राभिप्रायेणेदं वचनं 'कृताकृता वाऽपुत्रस्य पितुर्धनहरी तु सा' एतद्वचनोपात्तकृताकृतदुहित्रोरेव तस्या इति, तत्सुत इति तत्पदेन परामर्शात् प्रत्त्यासत्त्यतिरेकाद्वा अकृता-परामर्श एव युक्तः, न तु तत् परित्यागः॥18॥

पुत्रिकापुत्र के अभिप्राय से यह वचन नहीं कहे गए हैं। (पुत्रिका-पुत्र-सामान्य पुत्री से उत्पन्न पुत्र अर्थात् दौहित्र) अपितु पुत्रिका न बनाई गई पुत्री के पुत्र के अधिकार की ओर संकेत है क्योंकि "कृताऽकृता वाऽपुत्रस्य पितुर्धनहरी तु सा" इस वचन से पुत्रिका की गई अथवा नहीं की गई दोनों पुत्रियों का निर्देश होता है। 'तत्' शब्द अकृता से अधिक सन्निकट होने के कारण पुत्रिका न की गई पुत्री के पुत्र का निर्देश करता है अतः तत् का त्याग उचित नहीं है।

The text does not concern the offspring of an appointed daughter.

Nor does this text (see 17) relate to the son of an appointed daughter : for the pronoun "her", in both the phrases ("devolves on her', and "her son is acknowledged",) bears reference to the "daughter whether appointed or not appointed."

who has mentioned in the preceding passage (see 8). Or, upon the principle of selecting the nearest term, the reference may properly be to the "daughter not appointed." But this term cannot be rejected to select the other.

अतएव मनुः–

'दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्।
स एव दद्यात् द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च।।
पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नास्ति धर्मतः।
तयोर्हि मातापितरौ सम्भूतौ तस्य देहतः।।19।।

(मनु. 9-132-133)

अतएव मनु ने कहा है कि–पुत्रहीन पिता के सम्पूर्ण धन का स्वामी दौहित्र होता है। वह एक पिण्ड (अपने) पिता को और दूसरा पिण्ड मातामह को देता है। संसार में धार्मिक कार्यों के लिए पौत्र एवं दौहित्र में कोई अन्तर नहीं है क्योंकि उनके पिता एवं माता की उत्पत्ति उस गृहस्वामी (मातामह) के शरीर से होती है।

Manu states relation as the reason of the daughter's son inheriting.

Accordingly Manu propounds the daughter's origin from the person of the maternal grandfather as the reason of the daughter's son having a right to the succession; not her appointment to raise a son : else he would have specified this cause. "Let the daughter's son take the whole estate of his own father who leaves no (other) son; and let him offer two funeral oblations; one to his own father, the other to his maternal grandfather. Between a son's son and the son of a daughter, there is no difference in law; since their father and mother both sprung from the body of the same man."

मातामहदेहात् दुहितुः सम्भवं दौहित्रस्य धनाधिकारे हेतुत्वेन निर्दिशति, न तु पुत्रिकाकरणम्। इतरथा तदेव निर्दिशेत्।

तथा व्यक्तमाह स एव–

अकृता वा कृता वापि यं विन्देत् सदृशात् सुतम्।

पौत्री मातामहस्तेन दद्यात् पिण्डं हरेत् धनम्।।

अकृताजातस्यापि दौहित्रस्याधिकारमभिदधाति।।20।।

मातामह के शरीर से पुत्री की उत्पत्ति होने पर दौहित्र का धन में अधिकार बताया गया है। पुत्रिका पुत्र के अधिकार का निर्देश नहीं है। स्पष्ट रूप से मनु ने कहा है कि–पुत्रिका की गई अथवा नहीं की गई पुत्री से सवर्ण पति के द्वारा उत्पन्न पुत्र से ही मातामह पुत्रवान् हो जाता है। वह ही मातामह का पिण्डदान करता है तथा उसका धन प्राप्त करता है। इस प्रकार दौहित्र जो पुत्रिका न बनाई गई पुत्री से उत्पन्न होता है वह धन का अधिकारी होता है।

He expressly declares his right of succession.

Thus this very author expressly declares, that the daughter's son, born of one not appointed to continue the male line, has the right of succession. "But the male child, whom a daughter, whether formally appointed or no, shall produce from a husband of an equal class; the maternal grandfather becomes in law the father of a son : let that son give the funeral oblation and possess the inheritance."

किञ्च स्मृतिषु दौहित्रपदं पुत्रिकाजातपरं नियतम्।

अभ्युपगम्य दुहितरि जातं पुत्रिकापुत्रम्।

अन्यं दौहित्रम् (विद्यादित्यनुवर्त्तते)।।21।।

(बौ.ध.सू. 2-315)

स्मृतियों में दौहित्र पद अकृता पुत्री की सन्तान के लिए प्रयुक्त होता है। यथा– बौधायन के अनुसार–अभिसन्धि की हुई दुहिता में उत्पन्न पुत्र पुत्रिकापुत्र कहलाता है और दूसरा (अकृता का पुत्र) दौहित्र कहलाता है।

Daughter's son intends son of an appointed daughter : as is intimated by Baudhāyana.

Besides the term 'daughter's son is in law restricted to signify the male offspring of an appointed daughter. Baudhāyana initimates that, when he says, "(Consider as)

another (son) the daughter's son termed son of an appointed daughter, being born of the female issue after an express stipulation." Here 'consider' is understood.

अतएव भोजदेवेनापि कृताकृतदुहित्रधिकारे बृहस्पति-रित्यभिधाय यथा पितृधने स्वाम्यमिति वचनं लिखितम्।।22।।

अतएव भोजदेव ने भी बृहस्पति के मत से पुत्रिका की गई अथवा न की गई पुत्री के पुत्र का अधिकार बताया है।

Bhojadeva cites the text (see 17) as of general import.

Hence also (since such is the scope and purport of the text; see 17) Bhojadeva has cited that passage of Bṛhaspati under the head of succession of a daughter appointed or unappointed.

तथा गोविन्दराजेनापि मनुटीकायाम्।

अपुत्रपौत्रे संसारे दौहित्रा धनमाप्नुयुः।
पूर्वेषान्तु स्वधाकारे पौत्रदौहित्रकाः समाः।।

एतद्विष्णुवचनबलेन ऊढ़ातः प्रागेव दौहित्रस्याधिकारो दर्शितः।।23।।

तथा गोविन्दराज ने भी मनु टीका में लिखा है कि–पुत्र-पौत्र रहित संसार में दौहित्र धन प्राप्त करें। पितरों के पिण्डदान में दौहित्र पौत्र के समान माने जाते हैं। इस विष्णु के वचन से विवाहिता पुत्री से पहले दौहित्र का अधिकार दिखाया गया है।

Govinda-Rāja prefers the daughter's son to the married daughter : conformably with a passage of Viṣṇu.

But Govinda-Rāja, in his commentary on Manu, states the claim of the daughter's son as preferable to that of the married daughter, on the grounds of the following passage of Viṣṇu. "If one die leaving neither son nor grandson, the daughter's son shall inherit the estate; for, by consent of all, the son's son and the daughter's son are a like in respect of the celebration of obsequies."

स चास्मभ्यं न रोचते, सदृशी सदृशेनोढ़ेत्यादि-विरोधात्॥24॥

'सदृशी सदृशेनोढ़ा' इस वचन से विरोध होने से जीमूतवाहन को यह मत मान्य नहीं है।

This is unsatisfactory.

This does not appear to us satisfactory : for it contradicts the text above cited (see 8).

किन्तु ऊढ़ायाः प्रागुक्तरूपाया अभाव एव सत्स्वपि पित्रादिषु दौहित्रस्याधिकारः, तथैवेति दुहितृवद्भावविधानात्। तत्सुतोऽपीत्यप्यर्थ- तया च निर्देशात्, दौहित्रस्य जघन्यतावगतेः। अतो दुहित्रनन्तरं दौहित्रस्याधिकार इति सिद्धम्॥25॥

किन्तु पूर्व में कहे हुए रूप वाली (सदृशी सदृशेनोढ़ा) विवाहिता पुत्री के अभाव में पितादि बन्धुओं के विद्यमान रहते हुए दौहित्र का अधिकार है। 'तथैव' पद दुहिता के समान ही दौहित्र के अधिकार को बतलाता है। इसी प्रकार तत्सुतोऽपि में अपि शब्द दौहित्र को दुहिता से जघन्य स्वीकार करता है। अतएव दुहिता के अभाव में दौहित्र का अधिकार सिद्ध होता है।

A daughter's son inherits after the married daughter.

But, in default of a married daughter such as above described, the succession assuredly devolves on the daughter's son, notwithstanding the existence of the father and other kinsmen. For it appears from the comparison of his condition to her's, (see 17) and more expressly from the purport of the term "likewise" in the phrase "her son likewise is acknowledged to be heir," (see 17), that his pretensions are inferior to her's. Therefore it is a right deduction, that the succession of the daughter's son is next after the daughter.

सत्स्वपि बन्धुष्वित्यनेन पित्रोरधिकारः पत्न्यभावे, न्याय्योऽपि दुहितृदौहित्राभ्यां बाधित इति, बाधकाभावे पित्रोरधिकारः सूचितः।

अतएवानन्तरं बृहस्पतिः-

तदभावे भ्रातरस्तु भ्रातृपुत्राः सनाभयः।
सकुल्या बान्धवाः शिष्याः श्रोत्रिया धनहारकाः।।

तच्छब्देन दौहित्रस्य पित्रोश्च सूचितयोः परामर्शः, तेनामीषामभावे भ्रात्रादीनामधिकारः।।26।।

इस प्रकार बन्धुओं के रहते हुए माता-पिता का अधिकार पत्नी के अभाव में न्याययुक्त है। दुहिता दौहित्र के द्वारा बाधित हो जाती है। अतः बाधक के अभाव में माता-पिता का अधिकार सूचित होता है। बृहस्पति के अनुसार - इसके अभाव में भाई, भाई पुत्र, सहोदर भाई, सकुल्य, बान्धव, शिष्य और श्रोत्रिय धन प्राप्त करते हैं। 'तत्' शब्द दौहित्र और माता-पिता को सूचित करता है। इस प्रकार इन सबके अभाव में भाइयों का अधिकार है।

And before the father and mother.

By the words "although kindred exist," (see 17) the succession of both parents, which reasonably should take effect on failure of the wife, but which is barred by the daughter and daughter's son, is hinted as taking place when no such impediment exists. Accordingly Bṛhaspati, immediately after (the passage above cited, see 17) says "On failure of those persons, the brothers and nephews of the whole blood are entitled to the estate, or kinsmen or cognates, or pupils, or venerable priests." Here the word "those" bears reference to the daughter's son (named in the text), and to the parents indicated (by the term kindred). Therefore, it is on failure of these persons, that the succession of brothers and the rest takes place."

यत्तु बालकवचनम्-

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा।

इत्यादिनियतक्रमादधस्तन एव दौहित्रस्याधिकार इति। तत् बृहस्पतिवचनेन विरोधात् बालवचनमेव। बहुवचनान्त-

दुहितृपदेनैव कन्योढ़ादौहित्राणां निर्दिष्टत्वात्। क्रमविरोधा-भावात्। यथा स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्येति पुत्रपदं प्रपौत्रपर्यन्तपरम्, पिण्डदत्त्वाविशेषात्। तथा दौहित्रस्यापि पिण्डदत्त्वात् तत्पर्यन्तपरं दुहितृपदम्।

यथा वा–

पुत्राभावे तु दुहिता तुल्यसन्तानदर्शनात्।

इत्यत्र पुत्रपदं पत्नीपर्यन्तपरम्। अन्यथा दुहितर इति बहुवचनमनर्थकं स्यात्। पत्नी तत्सुत इत्यादिवदेकवचनमेव कुर्यात्। भ्रातर इत्यस्यापि बहुवचनस्यार्थवत्तां वक्ष्यामः।।27।।

यह जो बालक का वचन है कि–"पत्नी दुहिता, माता-पिता तथा भाई इत्यादि क्रम निश्चित करने के बाद ही सबके अन्त में दौहित्र का अधिकार निर्दिष्ट किया है "–यह बृहस्पति के वचन के विरुद्ध है क्योंकि बहुवचनान्त 'दुहितरः' पद अविवाहिता पुत्री, विवाहिता पुत्री एवं दौहित्र के अधिकार को बताता है। अतः उत्तराधिकारियों के क्रम में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। जिस प्रकार पुत्रहीन व्यक्ति के मर जाने पर पुत्र पद से प्रपौत्र पर्यन्त तीनों ही व्यक्ति पिण्डदान करने के समान अधिकारी हैं उसी प्रकार दुहिता पद भी पिण्डदान करने से दौहित्र पर्यन्त का निर्देश करता है।

पुत्र के अभाव में पुत्री समान सन्तान कही गई है। यहाँ पर 'पुत्र' पद पत्नी पर्यन्त को सूचित करता है अन्यथा दुहितरः पद अनर्थक हो जाएगा। पत्नी और तत्सुत शब्द को भी एकवचन में प्रयोग करें और भ्रातरः इसके बहुवचन की सार्थकता आगे कहेंगे।"

Bāloka postpones the claim of the daughter's son; erroneously.

As for the assertion of Bāloka, that the dauthter's son inherits after the whole series of heirs specified in the passage of (Yājñavalkya) above cited, "The wife, daughters also etc.," (sect. 1 see 4) that is mere childish prattle; for it contradicts the text of Bṛhaspati (see 17). Nor is there anything

inconsistent with that enumeration of heirs; for the maiden daughter, married daughter, and daughter's son, are all signified by the term "daughters" in the plural number (sect. 1 see 4). As the word "son", in the phrase "who departed for heaven leaving no son," intends male issue down to the great grandson, since he is equally a giver of funeral oblations; so does the term "daughter" comprehend the daughter's son, for he also is the giver of a funeral offering : or as the term "male issue" in the sentence "on failure of male issue, the daughter inherits" (see 1), intends the widow also. Else the plural number, in the word "daughters,' would be unmeaning : and the author would have used the singular number, as in the words "the wife", "the son of a brother." We shall hereafter (in the course of expounding passages concerning the re-union of parceners) explain the intention of the plural number in the word "brothers," (sect. 1 see 4).

किञ्च पित्रादीनां राजपर्यन्तानां क्रमनियामात् राज्ञोऽभावे दौहित्रस्याधिकारो वाच्यः, न च कदाचिद्राज्ञोऽभावोऽस्ती-त्यनधिकार एवाभिहितो भवेत्॥28॥

यदि पिता से लेकर राज पर्यन्त क्रम निश्चित किया जाए तो राजा के अभाव में दौहित्र का अधिकार होगा किन्तु राजा का तो कभी अभाव नहीं होता (अर्थात् एक राजा की मृत्यु के बाद दूसरा राजा बन जाता है) इस प्रकार दौहित्र का कभी अधिकार ही नहीं होगा।

He would not inherit in any case.

Moreover, since a series of heirs is specified from both parents to the king, it would follow, that the succession of the daughter's son takes effect on failure of the king. But there never is a vacancy of the throne; and consequently the succession could never take place.

तस्मात् विश्वरूपजितेन्द्रिय–भोजदेवगोविन्दराजैर्दहित्रभावे दौहित्र स्याधिकारो निरूपित आदरणीयः॥29॥

इस कारण विश्वरूप, जितेन्द्रिय, भोजदेव और गोविन्दराज के मत से दुहिता के अभाव में दौहित्र का अधिकार मानना चाहिए।

The other doctrine should be admitted.

Therefore the succession of the daughter's son on failure of daughters, as affirmed by Viśvarūpa, Jitendriya, Bhojadeva and Govinda-Rāja, should be respected.

यदा च कन्या जाताधिकारा, पश्चात् परिणीता सती म्रियते, तदा तद्धनम् कन्याया अनुत्पन्नाधिकाराया अभावे येषामूढ़ादीनां प्रतिपादितम्। उत्पन्नाधिकाराया अप्याभावे तेषामेव तद्धनम्, न तु तद्भर्त्रादीनां भवति, तस्य स्त्रीधनविषयत्वात्। 'भुञ्जीतामरणात् क्षान्ते'ति वचनेन जाताधिकारायाः पत्न्याः अभावे अनुत्पन्नाधिकारपत्न्यभावोक्तानां पूर्वधनस्वामिदाय-ग्राहिणां दुहित्रादीनां धनाधिकारस्य दर्शितत्वात्। पत्नीतो जघन्यदुहितृदौहित्रयोरधिकारे दण्डापूपन्यायसिद्धोऽयमर्थः॥30॥

यदि अविवाहित पुत्री विवाह के बाद निःसन्तान मर जाती है तो उस धन को विवाहित पुत्रियाँ प्राप्त करती हैं। अधिकार उत्पन्न होने वाले व्यक्तियों के अभाव मे उस धन को उसका पति प्राप्त नहीं करता उसके (उस धन को) स्त्रीधन का विषय होने से। 'भुञ्जीतामरणात् क्षान्तेति' वचन से पत्नी के अभाव में अधिकार के उत्पन्न होने पर उत्तराधिकारियों के विद्यमान न रहने पर उस पूर्व धन के स्वामी ही उस सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं। पत्नी से जघन्य दुहिता और दौहित्र का अधिकार है। इस प्रकार दण्डापूपन्याय से उनका अधिकार भी सिद्ध हो जाता है।

If the daughter die without issue, her father's next heirs succeed.

But, if a maiden daughter, in whom the succession has vested, and who has been afterwards married, die (without bearing issue). the estate, which was her's. becomes the property of those persons, a married daughter or others, who would regularly succeed if there were no such (unmarried daughter) in whom the inheritance vested, and in like manner succeed on her demise after it has so vested in her. It does not become the property of her husband or other heirs : for that (text, which is declaratory of the right of the hus-

band and the rest), is relative to a woman's peculiar property. Since it has been shown by a text before cited (sect. 1 see 56), that, on the decease of the widow in whom the succession had vested, the legal heirs of the former owner, who would regularly inherit his property if there were no widow in whom the succession vested, namely, the daughters and the rest, succeed to the wealth; therefore the same rule (concerning the succession of the former possessor's next heirs) is inferred ā fortiori, in the case of the daughter and grandson whose pretensions are inferior to the wife's.

यद्वा पत्नीत्युपलक्षणम् स्त्रीमात्राधिकारे अयमर्थो बोद्धव्य इति तात्पर्यम्॥31॥

पत्नी शब्द केवल उपलक्षण मात्र अर्थात् उदाहरण स्वरूप है। पत्नी पर जो प्रतिबन्ध लगाए गए हैं वे सभी उत्तराधिकार वाली स्त्रियों पर प्रयुक्त होते हैं।

The rule is general in the case of a woman's succession.

Or the word "wife" (in the text above quoted, sect.1 see 56) is employed with a general import : and it implies, that the rule must be understood as applicable generally to the case of a woman's succession by inheritance.

इति दुहितृदौहित्रयोरधिकारः॥32॥

इस प्रकार दुहिता और दौहित्र का अधिकार समाप्त हुआ।

Conclusion.

Thus has the succession of the daughter and daughter's son been explained.

इति पारिभद्रीयस्य महामहोपाध्यायजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे एकादशाध्यायस्य दुहितृदौहित्र-योरधिकारनिरूपणपरः द्वितीयः परिच्छेदसमाप्तः।

तृतीयपरिच्छेदः

दौहित्रस्याभावे पितुरधिकारप्रतिपादनम्

दौहित्रस्याभावे पितुरधिकारः, न मातुः नापि युगपन्मातापित्रोः। 'तदभावे मातृगामी'ति विष्णुवचनविरोधात्॥1॥

दौहित्र के अभाव में पिता का अधिकार है माता का नहीं और न ही माता-पिता दोनों का साथ-साथ अधिकार है क्योंकि विष्णु के वचन 'तदभावे मातृगामि' के साथ विरोध हो जाता है।

The father is next heir after the daughter's son.

If there be no daughter's son, the succession devolves on the father; and not on the mother (before the father); not at once on both parents. For that is contrary to Viṣṇu's text, "If there be none, it belongs to the father; if he be dead, it appertains to the mother."

यत्तु मनुवचनम्–

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात्।
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम्॥

(मनु. 9-2, 17)

यच्च बृहस्पतिवचनम्–

भार्या-सुतविहीनस्य तनयस्य मृतस्य च।
माता रिक्थहरी ज्ञेया भ्राता वा तदनुज्ञया॥

तत् पितृपर्यन्ताभावे बोद्धव्यम्॥2॥

मनु के वचनानुसार–

निःसन्तान पुत्र के धन को माता प्राप्त करती है तथा माता की मृत्यु के पश्चात् पिता की माता (पितामही) धन प्राप्त करती है। इसी प्रकार बृहस्पति का भी वचन है कि– भार्या और पुत्र से हीन व्यक्ति (पुत्र) के मर जाने पर उसके धन को उसकी माता प्राप्त करती है या माता की अनुमति से भाई को मिलता है। ये दोनों वचन पिता पर्य्यन्त अभाव होने

पर माता का अधिकार सूचित करते हैं।

Passages of Manu and Bṛhaspati, which declare the mother's succession, suppose the demise of the father.

But the following passage of Manu, as well as that of Bṛhaspati, must be understood as relating to a case of failure of heirs down to the father inclusively. "Of a son dying childless (and leaving no widow) the mother shall take the estate; and the mother also being dead, the father's mother shall thake the heritage." "Of a deceased son, who leaves neither wife nor male issue, the mother must be considered as heiress : or, by her consent, the brother may inherit."

न्यायागतञ्चैतत् दौहित्रात् परतो मातृतश्च पूर्व पितुरधिकार इति, मृतपिण्डमृतभोग्यान्यपिण्डद्वयदातुदौहित्रात् मृतभोग्यान्य-पिण्डद्वयमात्रदातृतया पितुर्जघन्यत्वात्। मात्रादिभ्यस्तु मृतभोग्यान्यपिण्डद्वयदातृतया।

'बीजस्य चैवं योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते'।

(मनु.9-35)

इति मनुवचनावगतोत्कर्षेण च बलवत्त्वात्॥3॥

और यह युक्तिसंगत भी है कि पिता का अधिकार दौहित्र के बाद और माता से पूर्व है। अतः दौहित्र से पिता जघन्य (निकृष्ट) है यथा–दौहित्र एक पिण्ड मृतक को देता है तथा मृत द्वारा भोगे जाने वाले दो अन्य पिण्ड उन पितरों (प्रमातामह एवं प्र-प्रमातामह) को देता है जबकि पिता केवल उन पितरों (पितामह एवं प्रपितामह) को दो अन्य पिण्ड देता है जिनके साथ मृतक भोग करता है। पिता माता से उत्कृष्ट है क्योंकि वह मृत द्वारा भोगे जाने वाले दो अन्य पिण्ड देता है। वैसे भी पिता की उत्कृष्टता मनु के वचन (9/35) से प्रकट होती है यथा–बीज एवं क्षेत्र में बीज ही श्रेष्ठ कहा जाता है।

The preferable right of the father is a result of reasoning.

This is a result too of reasoning. The father's right of succession should be after the daughter's son and before

the mother : for the father offering who oblations of food to other manes, in which the deceased participates, is inferior to the daughter's son who presents one oblation to the deceased, and two to other manes in which the deceased participates : he is preferable to the mother and the reset because he presents (personally) to others two oblations in which the deceased participates: and his superiority is indicated in a passage of Manu : "In a comparison of the male with the female sex, the male is pronounced superior."

पितरावित्यत्र च पितृक्रम एवावगम्यते, तथाहि पितृपदात् प्रातिपदिकात् प्रथमं पितुरवगतेः, पश्चात्तु द्विवचन-बलेनैकशेषकल्पनया मातुरवगमात्।।4।।

'पितरौ' शब्द से क्रम में पिता की पूर्वता प्रतीत होती है क्योंकि पितृ प्रातिपदिक से पहले पिता तत्पश्चात् द्विवचन के बल से एकशेषकर माता की प्रतीति होती है।

And is indicated by the text which express "parents".

In the term pitarau "both parents" (sect. 1. see 4), the priority of the father is indicated : for the father is first suggested by the radical term pitṛ, and afterwards the mother is inferred from the dual number, by assuming, that one term (of two which composed the phrase) is retained.

अतः क्रमज्ञानम् क्रमाभिधानव्याप्तम्, तत् निवर्तमानं क्रमज्ञनं निवर्त्तयतीत्यनुमाम्, तदप्रमाणं, व्यापकनिवृत्तेर-सिद्धत्वात्, विष्णुवचन- विरोधाच्च।।5।।

यहाँ क्रमज्ञान व्यापक है और क्रमाभिधान व्याप्य है। जैसे व्याप्य से व्यापक का अनुमान होता है वैसे व्यापकाभाव से व्याप्याभाव का अनुमान होता है। क्रमाभिधान की निवृत्ति होने से क्रमज्ञान भी नहीं होता। अतः विष्णु वचन के विरुद्ध होने से अप्रमाणिक है।

An objection obviated.

Hence (since the members of the series are presented to the understanding in the order here stated) the argument, that the mental apprehension of a series being co-extensive

with the oral recital of its component members, recital, being wanting, necessarily precludes apprehension,' must be rejected as inconclusive; for it is not true, that an adequate indication is wanting (being deducible in the manner above stated; see 4) and (the joint succession of father and mother) would contradict the text of Viṣṇu.

इति पितुरधिकार:॥6॥

अत: पिता का अधिकार माता से पहले होता है।

Conclusion.

Thus the father's right of succession has been explained.

इति पारिभद्रीयस्य महामहोपाध्यायजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे एकादशाध्यायस्य दौहित्रस्याभावे पितुरधिकारप्रतिपादनम् तृतीय: परिच्छेदसमाप्त:।

चतुर्थपरिच्छेद:

पितुरभावे मातुरधिकार इति निरूपणम्

पितुरभावे मातुरधिकार:, पितुरधिकारानन्तरं तदभावे मातृगामीति (विष्णुस्मृते: 17-71)॥1॥

पिता के अभाव में माता का अधिकार है। विष्णु का वचन है कि पिता के अधिकार के अनन्तर अर्थात् उसके अभाव में माता को धन प्राप्त होता है।

The mother inherits after the father.

If the father be not living, the succession devolves on the mother : for, immediately after propounding the father's right to the estate. Viṣṇu's text declares, "If he be dead, it appertains to the mother."

युक्तञ्चैतत् गर्भधारणपोषणात् कृतोपकारतया तन्निष्क्रय-स्यावश्य- कर्तव्यत्वात् पुत्रभोग्यान्यपिण्डदजननेनाप्युप-कारकत्वाच्च, भ्रात्रादिभ्य: पूर्वमधिकारस्य न्याय्यत्वात्॥2॥

यह युक्तिसंगत भी है कि माता गर्भ धारण करके सन्तान का भरण-पोषण करती है। अतः सन्तान का कर्त्तव्य है कि वह माता का प्रत्युपकार करे। साथ ही माता अन्य पुत्रों (मृतस्वामी के भाइयों) की जननी है जो कि उन पितृपूर्वजों को पिण्डदान देते हैं जिन्हें मृतस्वामी पिण्ड देने के लिए बाध्य रहता है। अतः भाइयों से पूर्व माता का अधिकार है।

Her right is founded on reason.

This too is reasonable: for her claim properly precedes that of the brothers and the rest; since it is necessary to make a grateful return to her, for benefits which she has presonally conferred by bearing the child in her womb and nurturing him during his infancy; and also because she confers benefits on him by the birth of other sons who may offer funeral oblations in which he will participate.

अतः पितृतो गौरवातिरेकश्रुतेः मातुरधिकारः पितृतः पूर्वमिति हेयम्। गौरवातिरेकस्य धनसम्बन्धहेतुत्वे 'उत्पादक-ब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिते '(मनुः 2-146)ति पितृतः पूर्वमाचार्यस्याधिकारापत्ते, कनिष्ठे च भ्रातरि भ्रातृसुते वा सत्यपि पितृव्यादीनामधिकारापत्तेश्च॥3॥

अतः माता का अधिकार पिता से पूर्व है क्योंकि पिता की अपेक्षा माता का गौरव लोक में अधिक है। अथवा सर्वविख्यात है लेकिन यह मत हेय है क्योंकि यदि धनाधिकार गौरव पर आघृत हो तो पिता से पूर्व आचार्य के अधिकार की आपत्ति होगी। जैसा मनु (2/146) ने कहा है कि उत्पन्न करने वाले पिता और ब्रह्मज्ञानोपदेश (आचार्य) इन दोनों में से ब्रह्मज्ञान देने वाला पिता अर्थात् आचार्य श्रेष्ठ है। इसी प्रकार मृतस्वामी के कनिष्ठ भ्राता या ज्येष्ठ भ्राता की अपेक्षा पितृव्यादि का अधिकार होना चाहिए क्योंकि उनका अधिक गौरव है।

The doctrine of her preferable right is erroneous.

The notion, therefore, that the mother's right should precede the father's because she is pronounced to surpass him in the degree of veneration due to her, must be rejected.

For, if a superior title to veneration were the reason of a right of inheritance, the succession would devolve on the spiritual preceptor before the father; since it is said "Of him who is the natural parent, and him who gives holy knowledge, the giver of the sacred science is the more venerable father" : and paternal uncles and the rest would inherit in preference to a younger brother or a nephew. Therefore the mother's right of succession is after the father (and before the brothers).

अतः पितृतः परत एव मातुरधिकार इति। एवञ्च मृतस्य पितृसन्तानात् पूर्वं पितुश्च परतो मातुरधिकार इति वदता पितामहसन्तानात्पूर्वं पितामहाच्च परतः पितामह्या धनाधिकारः सूचितः। अन्यथा पितरौ भ्रातरस्तथेति क्रमविरोधः स्यात्।

अत एव मनुः–

'मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम्'।

ससन्तानायां वृत्तायामित्यर्थः।।4।।

इस प्रकार माता का अधिकार मृतस्वामी के पिता की सन्तान (अर्थात् भाइयों) से पूर्व और पिता के पश्चात् होता है। अतः पितामही का धन में अधिकार पितामह की सन्तान से पूर्व और पितामह के पश्चात् होता है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो "पितरौ भ्रातरस्तथा" (याज्ञवल्क्य 2/135) के साथ क्रम विरोध हो जाएगा। इस संबन्ध में मनु का वचन है कि– माता के सन्तान सहित मरने के पश्चात् पितामही का अधिकार होता है।

By the same analogy, the grandmother inherits after the grandfather.

By thus declaring, that the mother's succession takes place after the father of the deceased and before the father's offspring. the author intimates, that the paternal grandmother's succession likewise takes place after the grandfather and before the grandfather's offspring ; For orherwise (if a defferent order of succession be assumed or if that order be not established; or that indication be not acknowl-

edged); there is a contradiction between the specified order of succession, "both parents, brothers likewise," (and this case which is perfectly analogous). Accordingly (since the grandmother's right of succession is in this manner indicated by Yājñavalkya); Manu says, "And the mother also being dead, the father's mother shall take the heritage." The meaning is 'being dead, that is, deceased, together with her offspring.'

अपिशब्दचकारयोश्चोभयत्रान्वयः कार्यः, तेन मातरि च वृत्तायां पितामह्यपि गृह्णीयात्, किं पुनर्भ्रात्रादयः पितामहपर्यन्ता इति अपिशब्दसूचिताः भ्रात्रादयः॥5॥

मनु के श्लोक में आए हुए 'अपि' एवं 'च' पदों को 'माता' एवं 'पितामही' दोनों के साथ अन्वित करना चाहिए। इस प्रकार अर्थ होगा कि माता के मरने पर पितामही धन ग्रहण करे। किं पुनः भाई आदि से पितामह पर्यन्त जो अधिकारी कहे गये हैं उनका क्या होगा? अपि शब्द भाई आदि का अधिकार भी सूचित करता है।

And after brothers and nephews.

Here the particle "and", as well as "also", must be joined in construction with both parts of the sentence. Therefore the sense is 'and the mother being dead, the paternal grand-mother also may take the heritage.' What then becomes of the brothers and the rest? These persons, including the paeternal grandfather are indicated by the paricle "also".

तदयं वचनार्थः-दौहित्रान्तात् मृतसन्तानात् परतः स्वसन्तानाच्च पूर्वमुक्तक्रमेण पित्रोरधिकारः, अतः स्वसन्तानात् पूर्व पितामहपितामह्योरधिकारोऽनेनैव दर्शितः, अत एव याज्ञवल्क्येन मातुरधिकारप्रदर्शनेनैव पितृव्यादिभ्यः पूर्व पितामहपितामह्योरधिकारस्याप्युक्तत्वात् न पृथगुक्तः॥6॥

इस प्रकार सारांश यह है कि पिता का अधिकार उक्त क्रमानुसार स्वसन्तान से पूर्व एवं मृतस्वामी की दौहित्र पर्यन्त सन्तान के पश्चात् आता है। इसी प्रकार पितामह एवं पितामही का अधिकार स्वसन्तान से

पूर्व कहा गया है। इसलिए याज्ञवल्क्य ने माता के अधिकार में ही पितृव्यादि से पूर्व पितामह एवं पितामही का अधिकार बतलाया है, उनका पृथक् उल्लेख नहीं किया।

A the mother inherits after the father and before the offspring, so the grandmother inherits after the grandfather and before their progeny.

The meaning then of the text (of Yājñavalkya) is this : the succession of both parents takes effect, in the order which has been explained, after the descendants of the deceased down to his daughter's son and before (the father's) own offspring. Hence the succession of the paternal grandfather and grandmother is thus shown to take place before their own offspring. Accordingly it is not separately propounded in the text of Yājñavalkya; since the right of the paternal grandfather and grandmother is virtually declared by showing the mother's right of succcession.

इति मातुरधिकारः॥7॥

इस प्रकार माता का अधिकार समाप्त हुआ।

Conclusion.

Thus the mother's right of inheritance has been explained.

इति पारिभद्रीयस्य महामहोपाध्यायश्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे एकादशाध्यायस्य पितुरभावे मातुरधिकार इति चतुर्थः परिच्छेदस्समाप्तः।

पञ्चमपरिच्छेदः

मातुरभावे भ्रातृगामीति प्रतिपादनम्

मातुरभावे भ्रातुर्धनं मातृगामीत्यभिधाय, तदभावे भ्रातृगामी (17-9) ति विष्णुवचनात्। तदिति मातुः परामर्शः, 'पितरौ भ्रातरस्तथेत्यत्रापि' पित्रोरभावे भ्रातुरधिकारावगतेः॥1॥

माता के अभाव में भाई को धन प्राप्त होता है। 'मातृगामी' कहकर

उसके अभाव में भाई धन प्राप्त करता है—इस विष्णु के वचनानुसार तत् पद माता की ओर संकेत करता है। ''पितरौ भ्रातरस्तथा'' याज्ञवल्क्य के इस वचन से भी पिता एवं माता के अभाव में भाई का अधिकार समर्थित होता है।

After the mother, the brothers inherit.

If the mother be dead, the property devolves on the brother : for Viṣṇu, having declared, that, "If the father be dead, it appertains to the mother," proceeds to say, "On failure of her, it goes to the brothers"; and here the pronoun refers to the mother. It appears also from the passage (of Yājñavalkya) "both parents, brothers likewise," that the brother's succession takes place in the case of the death of both parents.

न च भ्रातरस्तथा तत्सुता इति यथा भ्रातरोऽधिकृताः, तथा भ्रातृपुत्रोऽपि मातुरनन्तरमधिकारी स्यादिति वाच्यम्। भ्रातृगामीत्यभिधाय तदभावे भ्रातृपुत्रगामी (17–10) ति विष्णुविरोधात्। तदिति भ्रातुः परामर्शः।।2।।

माता के अनन्तर भाई और भ्रातृपुत्र दोनों का सम्मिलित अधिकार हो—ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि इससे विष्णु के वचन के साथ विरोध हो जाएगा यथा—विष्णु का वचन है—"तदभावे भ्रातृगामी तदभावे भ्रातृपुत्रगामी।"

Not the brother's son jointly with them.

It must be alleged, that, under the passage above cited, which expresses "brothers likewise and their sons," the brother's son, being declared heir in like manner as the brothers are, shall inherit also next to the mother. For the text of Viṣṇu, declaring that "it goes to the brothers," adds "After them, it descends to the brother's sons" : and in this place the pronoun refers to the brothers.

न्याय्यञ्चैतत्, मृतधनिभोग्यपित्रादित्रयपिण्डदानेन भ्रातुरुपकारकत्वात्। तथा तद्देयमातामहादिपिण्डत्रयदानेन

तत्स्थानपाताच्च। अनेवंरूपात् भ्रातृपुत्रात् बलवत्त्वात् मातृमूलत्वाच्च भ्रातुरेवंरूपस्य मातृतो जघन्यतेति, मातृतः परत एवाधिकारो युक्तः॥3॥

यह न्यायसंगत है कि भ्राता मृत धनी द्वारा भोगे जाने वाले पितादि तीन (पिता, पितामह एवं प्रपितामह) पितरों का पिण्डदान करके पारलौकिक कल्याण करता है और मातामहादि तीन पितरों (मातामह प्रमातामह एवं प्र-प्रमातामह) का पिण्डदान करके उस मृत भ्राता का स्थान प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार से भ्राता भ्रातृपुत्र से बलवान् है परन्तु माता से जघन्य है क्योंकि माता से उसकी उत्पत्ति होती है। अतः माता के अभाव में भ्राता का अधिकार है।

It is reasonable; for the brother confers more benefits on the deceased.

That too is reasonable : for the brother confers benefits on the deceased owner by offering three funeral oblations to his father and other ancestors, in which the deceased participates; and he occupies his place, as presenting three oblations to the maternal grandfather and the rest, which the deceased was bound to offer; and he is therefore superior to the brother's son, who has not the same qualifications. But deriving his origin from the mother, the brother, though he do possess these qualifications, is inferior to the mother; and his succession, therefore, very porperly takes effect after her.

किञ्च तथा पदं भ्रात्रैव कुतो न सम्बध्यते, तेन यथा पितरौ भ्रातरोऽपि तथेति पित्रोर्भ्रातृणाञ्च तुल्याधिकारः स्यात्॥4॥

यदि ऐसा कहा जाए कि तथा पद भाइयों से संबन्धित होने के कारण माता-पिता के साथ भाइयों का समान अधिकार है तो यह उचित नहीं है।

As well might parents and brothers inherit together.

Besides why may not the word "likewise" be connected

with the term "brother?" and thus the parents and brothers may have an equal right of succession; the text being interpreted 'as parents, so do brothers inherit.'

तस्मात् विष्णुवचनविरोधेनैवायं पर्यनुयोगः परिहर्तव्यः। स चान्यत्रापि समानः।

तथा च मनुः–

'पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव वा'। (मनु. 9–185)

भ्रातर एव हरेयुः, न तु भ्रातृपुत्रोऽधिकारीत्याह।।5।।

क्योंकि विष्णु के वचन के साथ विरोध हो जाएगा यथा उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है–'तदभावे भ्रातृगामि तदभावे भ्रातृपुत्रगामि'। इसी प्रकार मनु ने भी भाइयों के अधिकार को स्वीकार किया है यथा–पुत्र से हीन पुरुष के धन का भागी पिता या भाई होते हैं, भ्रातापुत्र को अधिकारी नहीं माना है।

It is contradicted by Viṣṇu and by Manu.

The question, then, must be negatived, as at variance with the text of Viṣṇu : and the same is to be done in the other instance likewise (of the claims of brother and brother's son). So Manu declares. that brothers take the inheritance, not the nephew. "Of him, who leaves no son, the father shall take the inheritance; or the brothers."

किञ्च जीवत्पितृकस्यापि भ्रातृपुत्रस्य किमधिकारो नेष्यते, न चात्रान्यो हेतुः जीवत्पितृकस्य पिण्डदत्वाभावे नानुपकारकत्वादित्यतः। एवञ्चेन्मृतपितृकस्यापि भ्रातृतुल्योपकारकत्वाभावात् कथं तुल्यवदधिकारिता।

अतएव देवलेन–

ततो दायमपुत्रस्य विभजेरन् सहोदराः।
तुल्या दुहितरो वापि ध्रियमाणः पितापि वा।।

सवर्णा भ्रातरो माता भार्या चेति यथाक्रमम्।

इत्यनेन भार्या-सवर्णादुहितृ-पितृ-मातृ-सहोदर-भ्रातृसापत्न- भ्रातृपर्यन्ताधिकारि शृङ्खलायां भ्रातृपुत्रस्याकीर्तनात् सापत्नभ्रातृपर्यन्ताभाव एव भ्रातृपुत्राणामधिकारः कथितः।।6।।

इसके विपरीत प्रश्न यह है कि पिता (भाई) के जीवित रहते हुए भाई के पुत्र का अधिकार क्यों नहीं है। इसका अन्य हेतु नहीं है अपितु पिता के जीवित रहते हुए पुत्र के पिण्डदान करने के अभाव होने से वह पिता का पारलौकिक कल्याण नहीं कर सकता ऐसी स्थिति में मृत पिता का भी भ्रातृ तुल्य उपकारक के अभाव से समान अधिकार कैसे हो सकता है अर्थात् भाई और भाई पुत्र का समान अधिकार कैसे स्वीकार किया जा सकता है। अतएव देवल ने कहा है–

पुत्रहीन व्यक्ति की सम्पत्ति सहोदर भाई या समान वर्ण की कन्यायें या जीवित पिता या सहोदर भाई, माता एवं पत्नी क्रम से प्राप्त करते हैं। इस देवल के वचन में भार्या, सवर्ण दुहिता, पिता, माता, सहोदर भ्राता एवं भिन्नोदर भ्राता पर्यन्त उत्तराधिकारियों की श्रृंखला में भ्रातृ पुत्र के उत्तराधिकार का निर्देश नहीं किया गया है किन्तु भिन्नोदर भ्राता के अभाव में भ्रातृ पुत्र का अधिकार स्वीकार किया गया है।

The nephew whose father is living, is excluded : how should one, whose father is dead, be admitted?

Moreover, why has not the nephew, whose father is living, a right of succession? There is no other reason but this : that one, whose father is living, does not confer benefits, since he is incompetent of offer oblations. If then it be thus settled, (that the order of succession is regulated by the degree in which benefits are conferred) how should a nephew, whose father is deceased, inherit equally with the brother, since he does not confer equal benefits? Accordingly Devala, in a passage before cited (Sect. 1. See 17), not specifying the brother's son in the series of heirs down to the half brother, comprehending the widow, daughter equal by class, father, mother, brother of the whole blood and brother of the half blood, intimates that the succession of nephews and the

rest takes place on failure of heirs down to the half brother.

यच्च 'सर्वे ते तेन पुत्रेणे' (मनु. 9.182) ति पुत्रत्वस्मरणम्, तत् पिण्डदानार्थम्, भ्रात्रभावे च धनाधिकारार्थम्। पूर्वोक्तवचनेन विरोधात्। अन्यथा भ्रातृतः पूर्वमेव कुतो न स्यात्॥7॥

मनु (9/182) के मतानुसार "एक भाई के पुत्र उत्पन्न होने से सभी भाई पुत्रवान् हो जाते हैं।" यहाँ पुत्र का स्मरण पिण्ड देने के लिए कहा है। भ्रातृ पुत्र को पुत्र के सम माना है क्योंकि वह भाई का पिण्डदान कर सकता है। अतः भाई के अभाव में ही भ्रातृपुत्र का अधिकार होता है।

A nephew is pronounced to be as a son, with a different view.

The passage, which pronounces a nephew to be as a son, ("They are all fathers by means of the son"); is intended to authorise his presenting a funeral oblation and to establish his right of succession on failure of brothers. (they do not inherit together); for that contradicts the text (of Viṣṇu) above cited. Else why should not (his right of succession) be before the brothers.

तस्मात् भ्रातुरेव प्रथममधिकारः॥8॥

इस प्रकार भ्राता का पहले अधिकार है।

The brother therefore is sole heir.

Therefore the brother alone is heir in the first instance.

तत्रापि प्रथमं सोदरस्यैव। तदुक्तं 'सोदरस्य तु सोदरः, भ्रातरस्तथे' त्युक्त भ्रातुरधिाकरावसरे प्रथमं सोदरो गृह्णीयादित्यर्थः। तस्य त्वभावे सापत्नो भ्राता, एकप्रभवत्वेन तस्यापि भ्रातृशब्दार्थत्वात्॥9॥

वहाँ पर भी पहले सोदर का ही अधिकार है क्योंकि याज्ञवल्क्य का वचन है कि सोदर भाई का धन उसके मरने पर सोदर भाई को ही मिलता है। उसके अभाव में भिन्नोदन भ्राता का अधिकार होता है

क्योंकि एक ही पिता की सन्तान होने से भ्रातृ शब्द से दोनों को सूचित किया गया है।

First the brother of the whole blood inherits.

Here again, a brother of the whole blood has the first title; under the following text (see 10) : and, even under the general rule for the brother's succession ("brothers also" Sect. 1. See 4). The meaning is, that the whole brother shall inherit in the first place : but, if there be none, then the half brother; for he also is signified by the word brother, being issue of the same father.

तथा च–

'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः।
दद्याच्चापहरेदंशं जातस्य च मृतस्य च'॥

(याज्ञ. 2-139)

इदमपि याज्ञवल्क्यवचनं सोदरासोदरयोर्भ्रातृशब्दार्थत्वं दर्शयति। अन्यथा सोदरमात्रस्य तदर्थत्वे सोदरस्य तु सोदर इति न पुनर्विशेषणीयमिति भ्रातृशब्दादेव सोदरावगतेः॥10॥

याज्ञ. (2/39) का वचन है कि– विभाजन के बाद पुनः एक साथ धन मिलाकर रहने वाले संसृष्टी कहलाते हैं संसृष्टी का धन संसृष्टी लेता है, सोदर भाई का धन उसके मरने पर सोदर भाई को ही मिलता है। सोदर संसृष्टी की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र जन्म ले तो उसे उसका अंश दे, यदि कोई पुत्र न हो तो उस धन को ले लेवे। याज्ञवल्क्य के इस वचन में 'भ्रातृ' शब्द सोदर और भिन्नोदर दोनों का निर्देश करता है अन्यथा सोदरमात्र कहने से 'सोदरस्य तु सोदर' इस विशेषण की आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि भ्रातृ शब्द से सोदर भाई का अर्थ प्रतीत होता है।

Conformably with a passage of Yajñavalkya.

The passage alluded to (see 9) is as follows : "A re-united (brother) shall keep the share of his re-united (co-heir), who is deceased; or shall deliver it to (a son subsequently) born.

But an uterine brother (shall thus retain or deliver the allotment) of his uterine relation." This text of Yājñavalkya also shows, that the term brother is applicable both to the whole and to the half blood. Else, if it intended only the uterine (and of course, whole) brother should retain or deliver the allotment of his uterine relation": for the whole blood would be signified by the single term "brother".

तस्मात् 'पितरौ भ्रातर' इत्यनेन सोदरासोदरयोरेवाधिकारो दर्शितः। सोदरवचनेन तु सोदरस्य प्रथममधिकारः॥11॥

इस प्रकार "पितरौ भ्रातरः" इस वचन में भ्रातरः शब्द से सोदर और भिन्नोदर दोनों का अधिकार बताया है और सोदर वचन 'सोदरस्य सोदर' से सहोदर भ्राता का प्रथम अधिकार सिद्ध होता है।

oof of the inference.

Therefore the succession of brothers, whether of the le or of the half blood, is declared by the passage before d ("Both parents, brothers likewise." Sect. 1. See 4). But, here specifying the uterine relation, the prior right of the erine (or whole) brother is intimated.

सापत्नस्य च सोदरात् मृतदेयषाट्पौरुषिकपिण्डदातुर्मृत-भोग्यमातृपित्रादिपिण्डत्रयदातृतया जघन्यत्वात् भ्रातृपुत्राश्च मृतभोग्यपिण्डद्वयदातुः मृतभोग्यपिण्डत्रयदातृतया उपकार-कत्वातिरेकेण बलवत्त्वात्, मध्य एवाधिकारः श्रीकरविश्व-रूपोक्त एवादरणीयः॥12॥

भिन्नोदर भ्राता सहोदर भ्राता से जघन्य है और भ्रातृ-पुत्र से बलवान् है क्योंकि सहोदर भ्राता उन तीन पितृ पूर्वजों (पिता, पितामह एवं प्रपितामह) और उन तीन मातृ-पूर्वजों (मातामह, प्रभातामह, प्र-प्रमातामह) का पिण्डदान करता है जिन्हें मृतस्वामी पिण्डदान करने के लिए बाध्य रहता है परन्तु भिन्नोदर भ्राता मृतस्वामी के केवल तीन पितृपूर्वजों का पिण्डदान करता है। इसी प्रकार भिन्नोदर भ्राता सहोदर भ्रातृ पुत्र की अपेक्षा बलवान् है क्योंकि भ्रातृपुत्र मृत स्वामी द्वारा भोगे जाने वाले दो पितृ-पूर्वजों को पिण्ड देता है जबकि भिन्नोदर भ्राता मृत भोग्य तीन पितृ

पूर्वजों का पिण्डदान करता है। इस प्रकार भिन्नोदर भ्राता का अधिकार श्रीकर और विश्वरूप ने सहोदर भ्राता एवं सहोदर भ्रातृपुत्र के मध्य में माना है।

The half brother is rightly placed between the whole brother and nephew by Śrīkara and Viśvarūpa.

The succession of the half brother, between (the whole brother and the brother's son), as affirmed by Śrīkara and Viśvarūpa, should be acknowledged; for he is inferior to the whole brother, who presents oblations to six ancestors which the deceased was bound to offer and also presents three oblations to the father and others, in which the deceased participates; while the half brother only presents three oblations in which the deceased participates : and he is superior to the nephew, because he surpasses him in the conferring of benefits, since he offfers three oblations of which the deceased participates.

तत्र किं संसृष्टिनोऽप्यसोदरस्य सोदराज्जघन्यत्वं न वेत्यपेक्षायामाह याज्ञवल्क्यः–

'अन्योदर्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्यो धनं हरेत्।
असंसृष्टयपि चाददयात् संसृष्टो नान्यमातृजः'॥13॥

(याज्ञ. 2-140)

क्या असहोदर (भिन्नोदर) संसृष्टी सोदर भाई से जघन्य है या नहीं–इस प्रसंग में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि–यदि सौतेला भाई संसृष्टी हो तो धन ले यदि सौतेला भाई संसृष्टी न हो तो वह धन न ले। किन्तु एक ही माता से उत्पन्न सगा भाई असंसृष्ट भी हो तो धन पाता है। यदि सौतेला भाई संसृष्ट रहता हो तो वह अकेले सब धन न ले, (मृत व्यक्ति के) सगे भाइयों में भी उसका विभाग करे।

A further passage of Yājñavalkya.

In answer to the inquiry whether the half brother, though re-united in co-parcenery, be inferior or not to the whole brother, Yājñavalkya says, "A half brother, being again associated, may take the succession; not a half brother,

though not re-united : but one united (by blood, though not by co-parcenery) may obtain the property; and not (exclusively) the son of a different mother."

अस्यार्थः–संसृष्टी पुनरन्योदर्यः प्रथमं हरेत्; न पुनरन्योदर्यमात्रः। प्रथमञ्च हरन् सोदरं बाधित्वैव वा, तेन सह वेत्यपेक्षायाम्, उत्तरार्द्धम्, असंसृष्ट्यपि सोदरो गृह्णीयात्, सोदरपदमनुवर्तते, नान्यमातृज एव संसृष्टी गृह्णीयात्, संसृष्टपदमेव वा सोदरमभिधत्ते। अतएव बृहद्याज्ञवल्क्यवचनं सोदरो नान्यमातृज इति जितेन्द्रियेण लिखितम्। तथाच पूर्वार्द्धस्य संसृष्टीत्यनुवर्तते॥14॥

इसका यह अर्थ है कि भिन्नोदर यदि पुनः संसृष्ट हो तो प्रथम अधिकार उसका है न केवल भिन्नोदर मात्र का। उत्तरार्ध से प्रतीत होता है कि असंसृष्ट भी सोदर हो तो सम्पत्ति ग्रहण करता है केवल भिन्नोदर संसृष्ट नहीं ग्रहण करता है। संसृष्ट शब्द को सहोदर तथा धन के मिश्रीकरण–इन दो अर्थों में समझा गया है।

Exposition of it.

The meaning of the text is this : 'A brother by a different mother, but associated again in co-parcenery, shall first take the inheritance; not generally any half brother (whether associated or separated). The latter part of the text is in answer to the question, whether, inheriting first, he excludes the whole brother or takes the succession jointly with him? The whole brother, though not re-united in parcenery, shall take the heritage;' (here the word whole brother is understood from the preceding sentence): 'not exclusively the son of a different mother, thouth re-united.' Or the term "united" may signify whole brother (or united by blood). Accordingly the text is so read in the citation of it by Jitendriya as a passage of Vṛddha Yājñavalkya : and, in that case, the term "associated" is understood from the preceding sentence.

तेन न केवलमन्योदर्य एव संसृष्टी गृह्णीयात्, किन्त्वसंसृष्ट्यपि सोदरो गृह्णीयादित्यर्थः तेनासृष्टिना सोदरेण

संसृष्टिना चासोदरेण विभज्य ग्रहीतव्यम्।।15।।

इस प्रकार संसृष्ट भाई के धन को केवल भिन्नोदर संसृष्ट ग्रहण नहीं करता अपितु असंसृष्ट सोदर भाई भी प्राप्त करता है। इस प्रकार सहोदर असंसृष्ट और भिन्नोदर संसृष्ट–दोनों को आधा-आधा भाग मिलता है इसलिए अपि च शब्द का प्रयोग किया है।

An associated half brother inherits with the unasociated whole brother.

Therefore the half brother, who is again associated in co-parcenery, shall not take the succession exclusively; but the whole brother (shares it) though not associated. Such is the meaning : and consequently the whole brother, who is not re-united in parcenery, and the half brother, who is associated, should divide the succession. Accordingly the author has employed the particle "but" (with the connective sense).

अत्र विषये श्रीकरमतस्यानुवादः

यच्च श्रीकरमिश्रैरुक्तं 'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी' त्यस्य असोदरसंसृष्टिमात्रविषयत्वे अन्यानपेक्षत्वात्। 'सोदरस्य तु सोदर' इत्यस्यापि असंसृष्टसोदरमात्रविषयत्वे नैरपेक्ष्यात् असोदरे संसृष्टिनि, सोदरे चासंसृष्टिनि उभयो प्राप्तौ यदि द्वयमेव प्रवर्तते, तदा अन्योन्यसापेक्षमुभयोर्विधायकत्वं भवेत्। न चैकस्य सापेक्षम्, निरपेक्षञ्च विधायकत्वमुचितम्, विधिवैषम्यप्रसङ्गात्। यथा दर्शितम् द्वयोः प्रणयन्ती (मी. द. 7-3-8) त्यधिकरणे पर्वचतुष्टयविहिताया उत्तरवेदेर्न पर्वद्वये प्रतिषेध उपपद्यते। तत्र पर्वद्वये विकल्पसापेक्षं विधानम्, पर्वद्वये च निरपेक्षमिति उतरवेदिविधिवैषम्यापत्तेः। तथा चात्र यत्रैव निरपेक्ष-विधायकत्वम्, तत्रैव संसृष्टिनस्तु संसृष्टीत्यस्य, सोदरस्य तु सोदर इत्यस्य च प्रवृत्तिः स्यात्। तत्रासोदरे संसृष्टिनि, सोदरे चासंसृष्टिनि सत्युभयोरप्रवृत्तेः तद्धनं न कश्चिदपि गृह्णीयादित्यापद्यते। तस्मात् 'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी'ति संसृष्टधने

संसृष्टिनः सामान्यतो भागप्राप्तौ, तदपवादार्थं सोदरस्य तु सोदरः इति वचनम्। एवञ्च संसृष्टिनोऽप्यसोदरस्य, सोदरे सति न प्राप्तिः, किं तर्हि विभागसंसृष्टस्यासंसृष्टस्य च सोदरस्यैवेत्यन्तम्॥16॥

श्रीकरमिश्र ने कहा है कि–संसृष्टिनस्तु संसृष्टी यह वचन असोदर संसृष्ट मात्र विषयक होने से निरपेक्ष्य है अर्थात् बिना किसी की अपेक्षा से स्वतन्त्र रूप से कहा गया है। इसी प्रकार सोदरस्य तु सोदरः–यह वचन असंसृष्ट सोदर मात्र विषयक होने से बिना किसी की अपेक्षा से स्वतन्त्र रूप से कहा गया है। असोदर संसृष्टी और सोदर असंसृष्टी दोनों प्रकार के भाइयों की प्राप्ति होने पर यह दोनों वचन प्रवृत्त हों तब दोनों (चरण) सापेक्ष हो जायेंगे। यदि एक स्थान पर एक वचन सापेक्ष और दूसरा निरपेक्ष मानेंगे तो विधि वैषम्य दोष हो जाएगा जैसे 'द्वयो प्रणयन्ती' अधिकरण में पर्वचतुष्टय की प्राप्ति होती है। उत्तरवेदी में दो पर्वों की स्थापना का निषेध है। इस प्रकार उत्तरवेदी में दो वर्णों की स्थापना का विकल्प सापेक्ष और दो का निरपेक्ष मानेंगे तो विधिवैषम्य की आपत्ति होगी। इसी प्रकार "संसृष्टिनस्तु संसृष्टि", "सोदरस्य तु सोदरः" वचनों की प्रवृत्ति वहीं पर होगी जहाँ पर यह स्वतन्त्र रूप से (निरपेक्ष) प्रयुक्त होते हैं परन्तु भिन्नोदर संसृष्टी और सोदर असंसृष्टि के प्रसंग में यह नियम प्रवृत्त ही होगा और न ही किसी को धन की प्राप्ति होगी। इस प्रकार 'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी' नियम से संसृष्टी के धन को संसृष्ट भाई ही प्राप्त करता है। इसके अपवाद रूप में 'सोदरस्य तु सोदर' वचन है अतः यदि भिन्नोदर संसृष्ट हो और सोदर असंसृष्ट हो तो सोदर के रहने पर भिन्नोदर की प्राप्ति नहीं है तो विभाजन किस प्रकार होगा तो इसके लिए कहते हैं कि सोदर चाहे संसृष्ट हो अथवा असंसृष्ट–सोदर ही धन प्राप्त करता है।

An objection proposed by Śrikara Miśra founded on reasoning of the Mīmāṁsa.

An objection is stated by Śrīkara Miśra. The maxim, that "the re-united brother shall keep the share of his re-united co-heir," (See 11) is independent (of other precepts), as it

applies to the case of re-united half brothers exclusively; and, in like manner, the maxim that the uterine (meaning the whole) brother retains the allotment of his uterine relation," (see 10) bears no reference (to any other rule) when it is applicable to the case of unassociated whole brothers only : but, when there is a half brother associated and a whole brother unassociated, if the two maxims be applied to this case in consequence of finding both descriptions of brethren, then both maxims take effect with reference to each other. Now it is not right to make the same rule operative with and without reference to another maxim; for this argues variableness in the precept. Thus it is shown (by Jaiminī), in the disquisition on the passage dvayoḥ praṇayanti, that the prohibition, relatively to two sacrifices, of the use of the uttaravedi or northern altar directed generally for the four sacrifices (in which those two are comprehenced), is not a prohibition (but an exception); for, if the precept concerning the northern altar be taken with reference to the (denial, implying consequently) an option, in the instance of two sacrifices, and be taken absolutely and without reference to any other maxim in the instance of the two other sacrifices, there would be variableness in the precept. So, in regard to the subject under consideration, the maxims, that "the re-united brother shall keep the shares of his re-united co-heir," and that "the uterine (or whole) brother shall retain the allotment of his uterine relation," (see 10) are applicable in those cases in which the rules are operative independently of any other : but, if there be a half brother associated and a whole brother unassociated, the two rules are not applicable in this instance; and it would follow, that no one could take the estate (since there is no special provision in the law for this case). Therefore (the true interpretation is, that, in the case stated), where the associated half brother might be supposed to be heir of his associated parcener, under the rule, that "a re-united brother shall keep the share of his re-united co-heir", the maxim that "the uterine (or whole) brother shall retain the allotment of his uterine relation," serves as an exception to that rule. Thus the half brother, though associ-

ated, cannot be supposed to be heir, if there be a brother of the whole blood. Then how does the succession go? The whole brother, whether re-united or not re-united in co-parcenery, inherits the property.

स्वमतेन विधिवैषम्यनिरूपणेन पर्युदासाभ्युपगमेन विधिवैषम्यपरिहारवर्णनम्।

तदसङ्गतम्। न हि द्वयोरुभयत्रैकैकशः प्रवृत्तयोर्युगपदेकत्र प्रवृत्तिमात्रेण विधिवैरूप्यम्।।17।।

यह कहना ठीक नहीं है कि दोनों विधियों के दोनों जगह पर उदाहरणों के अलग-अलग निरपेक्ष रुप से प्रवृत्ति होने से विधिरुपता होती है (विधिदोष ग्रस्त होता है)।

Refutation of his objection.

That is not congruent : for it is not true, that there is variableness in a precept, merely because two (rules), which are severally applicable to two (cases), become applicable in a single instance at the same time.

केवलोद्गातृप्रतिहर्त्रपच्छेदेन निरपेक्षप्रवृत्तयोः सर्वस्वदाक्षिण्यादाक्षिण्यशास्त्रयोर्युगपदुभयापच्छेदे सति नैकमपि शास्त्रं प्रवर्तेत, विधिवैरूप्यात्।।18।।

यदि ऐसा हो तो ज्योतिष्टोम याग में उद्गाता ऋत्विक् तथा प्रतिहर्ता ऋत्विक् हविधानी मण्डप से हविष्यवमानी मण्डप तक जाते समय यदि कुछ स्खलन कर देता है अथवा स्वयं गिर जाता है तो सर्वस्वदक्षिणा तथा असर्वस्व दक्षिणा देने का विधान है। यदि दोनों स्खलित दोषग्रस्त होते है तो किसी के लिए कोई नियम विधान प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि यह नियमविधि के विपरीत है।

An example of the incongruity of his reasoning.

Thus, in respect of the precepts enjoining the votary to bestow his whole wealth as a gratuity in one instance and no gratuity in the other, which are respectively applicable independently of each other, if either the priest doing the functions of Udgatṛ, or the one performing the office of pratistotṛ,

singly stumble (in passing from the one apartment to the other, at the celebration of the sacrifice called Jyotiṣṭoma) : but, if both those priests should stumble at the same time, neither injunction would be applicable; for that would be a variableness in the precept.

तथा 'चतुर्होत्रा पौर्णमासीमभिमृशेत् पञ्चहोत्राऽमावास्याम्' (तै. आ. 3-1-23) इति शास्त्रयोरुपांशुयाजाग्नीषोमीययोः, ऐन्द्रदध्यैन्द्रपयसोरेकैकशः प्रवृत्तयोर्द्वयोराग्नेये प्रवृत्तौ विधिवैषम्यापत्तेर्नैकमपि प्रवर्तेत॥19॥

इसी प्रकार पौर्णमास याग में 'पृथिवीहात्रा' मंत्र से पौर्णमासयाग के प्रधान हवि ऐन्द्र, दधि ऐन्धपयः को स्पर्श करे तथा अमावस्या को दर्शयाग के प्रधान हवि पयो रुप द्रव्य का स्पर्श करे। दर्शपौर्णमास याग के दधिपयोरुपी दोनों हवियों को स्पर्श करने के लिए विधि की एक साथ प्रवृति होने से विधि वैषम्य से किसी भाग में भी विधि की प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

A further example.

In like manner, under the precepts, which direct the priest to touch an oblation with the prayer denominatied Cāturhotra at the full moon and with the prayer termed pañcahotra at the new moon; an oblation of curds consecrated to Indra is understood in the sacrifice named Upāśuyāga and an offering of milk consecrated to Indra is similarly understood at the Agnīṣomīya sacrifice; and, both precepts being thus severally applicable in those instances, neither of them would take effect at the Āgneya sacrifice, since there would be variableness in the precept if both were applied to this case.

तस्मात् बाधनिरपेक्षं नित्यविधानं क्वचित्, क्वचित् विध्यन्तरबाधसापेक्षमिति वैरूप्यलक्षणम्, तथाहि 'उपात्र वपन्तीति वेदिविधिसापेक्षः निषेधः तद्बाधं विना विधिरेव न स्यादिति, वेदिविधिबाधसापेक्षं विधानम्। न च नित्यवदेव तस्य बाधः, तथा सति निषेधो विफलः। निषेधं विनापि

वेद्यकरणस्य प्राप्तेः। ततश्च वेदिविधिरपि निषेधविधिवाध-सापेक्षो विधिभावः पर्वद्वये, पर्वद्वये तु निरपेक्ष इति भवति विधिवैषम्यम्, विकल्पश्च स्यात्। रागप्राप्ते तु नित्यवद्बाधः कादाचित्कस्याकरणस्य निषेधान्तरेणापि प्राप्तेः॥20॥

इसलिए बाधनिरपेक्ष (निषेधशून्य) नित्यविधानशास्त्र कहीं-कहीं दूसरी विधि से बाधित हो जाने से वैरुप्यलक्षण कहा जाता है यथा 'उपात्र वपन्ति' वेदिविधिसापेक्ष निषेध उसके निराकरण के बिना विधि ही सम्भव नहीं हो सकती इसलिए वेदिविधि बाध सापेक्ष विधान है। नित्य की तरह उसका बाध हो जाए ऐसा भी नहीं है क्योंकि यदि ऐसा होगा तो निषेध विधान विफल हो जाएगा। निषेध के बिना भी वेदिकरण की प्राप्ति है। एक ही वेदिविधि दो पर्वों मे निषेध विधिवादसापेक्ष और निरपेक्ष होने से विधिवैषम्य होने से विकल्प उपस्थित होता है। रागतः प्रवृत होने पर नित्य विधान से बाध को स्वीकार करने से निषेध की प्राप्ति होती है। अर्थात दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि चातुर्मास्य याग में चार पर्व होते हैं उनमें से वैश्वदेव और शुनाशीरी पर्व में उत्तरवेदि निर्माण करने का विधान प्राप्त नहीं है अन्य दोनों पर्वों में अर्थात वरुणप्रघास एवं साकमेध पर्व में उत्तरवेदि बनाने का विधान है। इससे यह स्पष्ट होता है कि चातुमस्यि के ही चारों पर्वों मे दो पर्व में बाध और दो पर्व में विधि का होना विधिवैषम्य परिलक्षित होता है।

The instance referred to does not authorise the conclusion.

Therefore, the definition of variableness in a precept is its being a positive injunction without reference to any opposition in one instance and (an eventual one) with reference to the opposition of a different precept in another instance. Thus, in the example stated (see 16), the prohibition bears reference to the injunction concerning the altar, expressed in these words "At this sacrifice prepare the uttara-vedi". Without opposition to that (injunction), it would be no precept. Therefore it is a command which bears reference to the injunction respecting the altar. Nor is it in constant opposition to it : for, were it so, the prohibition (as well as the injunction), would be useless : Since without the pro-

hibition (and injunction), the omission of the altar might be deduced (from the silence of the law). Therefore, even the injuntion concerning the altar is a command which bears relation to the contrary prohibition; but, in regard to two of the periods of sacrifice, it is independent of any other rule. Consequently there is variableness in the precept; and an alternative must be inferred. But, in the case of any thing supposed as a matter of spontaneous option, a prohibition is an absolute forbiddance : for the occasional omission of the act was inferrible without the aid of an express prohibition.

अतएव षोड़शिग्रहणाग्रहणशास्त्रयोर्विकल्प इति॥21॥

इसी तरह ''अतिरात्रे षोऽशिनं गृह्णातीति नातिरात्रे षोऽशिनं गृह्णातीति'' इस श्रुति वाक्य द्वारा आतिरात्र याग में षोऽशी पात्र ग्रहण के लिए दोनां विकल्प प्राप्त होते हैं।

A further illustration by an example.

Accordingly (since there is variableness in the precept, when a general and a particular rule, or injuntion and prohibition, are sometimes applicable in the same instance, but not when two particular rules are so; or since a prohibition, which is constant,is inferrible without the aid of either injunction or prohibition); the passages, which direct, that the Ṣoḍasin shall be taken, and that it shall not be taken, (at an Atirātra sacrifice) constitute on alternative. Ṣoḍasin in a name for a Vassel of a particular description (Śrikṛsṇa).

It is a wooden bowl employed at sacrifices in which the juice of acid asclepies is drunk.

ये तु ब्रुवते। प्राप्तिपूर्वकत्वात् निषेधस्य 'न निमित्तम् विधिरपवाधत' इति न्यायेन विकल्प इति, तेषां मते 'न तौ पशौ करोती' त्यादौ रागप्राप्तनिषेधे च विकल्पः स्यात्॥22॥

जो यह कहते हैं कि द्रव्यप्राप्ति पूर्वक होने के कारण निषेध का कोई निमित्त नहीं होता वे विधि को ही बाधित करते है। इस न्याय से उनका विकल्प ग्रहण का मत स्पष्ट होता है यथा- ''न तौ पशौ करोती''

इस श्रुति वाक्य में रागप्राप्त निषेध और विकल्प दोनां कहे गए हैं।

An objection obviated.

But according to the doctrine of those, who affirm, that an alternative is inferred by this reasoning, namely, that, since a prohibition implies a previous supposition (to the contrary), the (negative) precepts does not obviate the cause; an alternative would be inferrible even in the instance of a prohibition concerning that which was suggested only as a matter of spontaneous choice : for example, the passage which expresses. "The priest makes not two (portions of an oblation of liquid butter) when a victim is offered; (nor at the sacrifice with acid asclepias") : and other similar passages.

किञ्च एवं निमित्तिनः स्वनिमित्तिबाधाक्षमत्वात् कथं पक्षेऽपि बाधः, अतुल्यबलत्वात्। अथ निषेधस्यैवायं स्वभावः–यत् स्वनिमित्तमुन्मूलयतीति, तदा सर्वदैवोन्मूलयेत् प्राप्तेरेव दुर्बलत्वात्॥23॥

किन्तु ऐसा निमित्त ग्रहण करने वाले स्वनिमित्त बाध में असमर्थ होने के कारण निमित्त के पक्ष में भी वाध का अतुल्य बल से किस प्रकार निमित्त का ग्रहण कर सकेंगे? यह निषेध का ही स्वभाव है कि वह स्वनिमित्त का भी उन्मूलन कर देता है। प्राप्त निमित्त के दुर्बल होने के कारण उसका सर्वदा ही उन्मूलन करे।

A further reason.

Moreover, since an effect cannot preclude its own cause, how can there be in one case oppsition (which is necessary to constitute an alternative?) for the precepts are not equipollent. But, admitting that such is the nature of prohibition, that it eradicates its own cause; it should eradicate it altogether, for (the precept, which suggested) the previous supposition, is of inferior cogency.

ये तु ब्रुवते यादृच्छिकग्रहणप्राप्तिनिषेधोऽयम्, न तु विधितः प्राप्तस्येति। तदतीवाज्ञवचनम्। वैधग्रहणस्य अवैधग्रहणनिषेधस्य च युगपदुपसंहारासम्भवात् विकल्पाभावप्रसक्तेः। क्रत्वर्थतया

च यादृच्छिकग्रहणप्रसक्त्यभावात् निषेधो न क्रत्वर्थस्स्यात्।।24।।

जो ऐसा कहते हैं कि "इच्छानुसार ग्रहण और प्राप्ति निषेध" यह विधि प्राप्त नहीं है वे अतीव मन्द बुद्धि वाले हैं क्योंकि वैध ग्रहण का और अवैध ग्रहण निषेध का एक साथ प्रयोग करना असंभव है इसलिए विकल्प के अभाव से यज्ञ के निमित्त इच्छानुसार द्रव्य ग्रहण की विधि का अभाव होने के कारण स्वेच्छा से उसका निषेध किया जाना क्रत्वर्थ नहीं होगा।

Another argument refuted.

But they affirm, that this prohibition concerns the supposition of something which spontaneous choice may suggest and is not a forbiddance of any thing deduced from a precept. That is an assertion which argues extreme ignorance : for it would follow, that an alternative does not exist; since the practice of what is commanded by precept and the prohibition of a practice not commanded by precept, cannot be in opposition at the same time. The prohibition too would not be essential to the act of religion, since the practice of something suggested by spontaneous choice is not supposable as an essential part of a religious act.

तस्मादस्मदुक्तन्यायादेव विकल्पः, तदस्तु किं विस्तरेण।।25।।

इस प्रकार उक्त न्याय के अनुसार विकल्प ही ठीक है। विस्तार की क्या आवश्यकता है।

Conclusion against Śrīkara reasoning.

Therefore, (since the opposite opinion is erroneous), an alternative is inferred (not in the manner there proposed, but) according to the reasoning set forth by us (viz., that, if the prohibition be constant, both injunction and prohibition would be unnecessary; and, if the injunction were invariably cogent, the prohibition would be vain). But let that be; for why expatiate?

यच्च स्वयमेव वर्णितम्–असोदरे संसृष्टिनि, सोदरे

चासंसृष्टिनि 'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी' त्यनेन असोदरस्य धनसम्बन्धप्राप्तौ तदपवादार्थं 'सोदरस्य तु सोदर' इति वचनम्।

तदप्युक्तम्। अस्मिन्नेव विषये 'सोदरस्य तु सोदर' इति सोदरस्य धन प्रसक्तो, तदपवादार्थ संसृष्टिवचनस्यापि सम्भवात् विनिगमनाकारणाभावात्॥26॥

यह जो स्वयं ही वर्णित किया गया है कि–असोदर संसृष्ट और सोदर असंसृष्ट, संसृष्टिनः तु संसृष्टी– इस वचन से असोदर अर्थात भिन्नोदर को धन की प्राप्ति कही है और उसके अपवादार्थ "सोदरस्य तु सोदरः" वचनानुसार सोदर को धन का अधिकारी माना गया है। उसके अपवादार्थ संसृष्टि वचन को सिद्ध करने के लिए कोई विनिगमन कारण का अभाव है।

His inference is wrong.

As for the remark of the same author, who says (see 16) that, 'if there be a half brother associated and a whole brother unassociated, in which case the half brother might be supposed to be the heir under the rule, that "a re-united brother shall keep the share of his re-united co-heir," (see 10) then the maxim, that "the uterine (or whole) brother shall retain the allotment of his uterine relation," (see 10) serves as an exception to that rule;' that is unsuitable, for, in this very case, the rule concerning the re-united co-heir might on the contrary serve as an exception to the maxim, that "the uterine (or whole) brother shall retain the allotment of his uterine relation,' under which the whole brother might be supposed to be the heir : since there is not in this instance any ground of preference."

यच्च 'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी' त्येतद्विवरणार्थत्वेन अन्योदर्य इति वचनम् व्याख्यातम्, तदप्यतीवायुक्तम्। अन्योदर्यवचनादेव विहितार्थलाभात्, संसृष्टिनस्त्वित्यस्यानर्थक्यापत्तेः॥27॥

'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी' विवरण के लिए 'अन्योदर्य' वचन की व्याख्या भी अनुचित है।

And the purport of the text, as stated by him.

But this author's interpretation of the text, "A half brother being again associated etc.," (see 13), as explanatory of the passage "a re-united brother shall keep the share of his re-united co-heir," is quite wrong : for, the intended purport being conveyed by that text, the passage in question would become superfluous.

किञ्चाऽन्योदर्यस्तु संसृष्टीत्यस्यायमर्थः–अन्योदर्यस्तु संसृष्टी यः, स नान्योदर्यधनं हरेत्, किन्त्वसंसृष्ट्यपि सोदरपदानुषङ्गात् सोदर एव गृह्णीयात्, संसृष्टोऽपि नान्यमातृजो गृह्णीयादिति व्याख्यातम्। तदपि न। पूर्वार्द्धे एकस्य अन्योदर्यपदस्य पुनरुक्तत्वात्। तथोत्तरार्द्धेऽपि नान्यमातृज इत्यस्यानर्थक्यापत्तेः अपिशब्दस्य चैवकारार्थेऽवर्णनात्।।28।।

और क्या कहा जाए भिन्नोदर संसृष्ट से अभिप्राय है कि–भिन्नोदर संसृष्ट को भिन्नोदरत्व के कारण धन प्राप्त नहीं होता किन्तु असंसृष्ट सोदर से सोदर ही धन प्राप्त करे, संसृष्ट भी भिन्नोदर धन की प्राप्ति न करे। यह भी ठीक नहीं है। पूर्वार्द्ध में अन्योदर्य शब्द की एक बार पुनरुक्ति होने के कारण तथा उत्तरार्ध में 'अपि नान्यमातृजः' इस पद का अनर्थक्य होने के कारण 'अपि' शब्द को 'एव' के अर्थ में ग्रहण किया गया है। 'एव' ग्रहण करने से 'न्यायमातृजः एव' ऐसा अर्थ बोध होता है।

As well as the interpretation of it, is erroneous.

Moreover the exposition of the text (by Śrīkara), as signifying 'Let not the half brother, who is an associated half brother, take the estate; but the whole brother, (this term is understood), who is not re-united, shall positively take it; a son of a different mother, though united, shall not inherit;' is also erroneous, for the same term 'half brother' in the first part of the text, is needlessly repeated; and the phrase 'son of a different mother,' in the latter part of it, becomes superfluous; and the particle api is taken in the sense of positively.

किञ्च सोदरे चासंसृष्टिनि असोदरस्य संसृष्टिनोऽपवादार्थं सोदरवचनस्य वर्णितत्वात् सोदरासोदरयोरोसंसृष्टिनोरप्रवृत्तत्वात् तुल्यवदेवाधिकारः स्यात्। न वा कस्याचिदपि स्यात्।।29।।

असंसृष्ट सोदर और संसृष्ट भिन्नोदर–इन दोनों के समान अधिकार के लिए अपवाद स्वरूप जो वचन–सोदस्य तु सोदरः' वर्णित हुआ है–उसके द्वारा सोदर और भिन्नोदर में असंसृष्टि की प्रवृत्ति नहीं होने से दोनों का समान अधिकार हो अथवा किसी का भी न हो।

His exposition leaves a case unprovided for.

Besides, under the interpretation of the passage concerning the uterine (or whole) brother as an exception to the claim of the associated half brother if a whole brother unassociated exist; and its consequent inapplicableness to the case of a whole brother and half brother both unassociated; these would have an equal right of succession (under the general maxim, that brothers shall inherit; Sect. 1. See 4. Since no distinction is specified) : or else the property would belong to neither of them (if the general rule be explained by the particular one).

अथात्रापि सोदरवचनमेव प्रवर्तते। तदैकत्र संसृष्टिवचनं बाधसापेक्षम्। अन्यत्र तु बाधानपेक्षामिति भवतामेव विधिवैरूप्यम्। यथा सोमे विधियमाना वेदिः दीक्षणीयादिष्वतिदेशप्राप्तवेदिविधिबाधेन अन्यत्र बाधं विनैवेति वैरूप्यात् अवेदिमतां तद्द्रष्टव्यमित्युक्तम्।।30।।

इसके बाद यहाँ भी सोदर वचन की ही प्रवृत्ति होती है। एक स्थान पर संसृष्ट वचन के बाध सापेक्ष होने से और दूसरे स्थल पर बाधानपेक्ष (निरबाध) होने से विधिवैरूप्य परिलक्षित होता है। यथा–सोमयाग में विहित अतिदेश से प्राप्त वेदि में दीक्षणीयेष्टि आदि यागों के अवसर पर इष्टियों का प्रकृतिभूत दर्शपौर्णमासेष्टि की वेदि के अतिदेश का बाध किया गया है किन्तु अन्यत्र बाध के बिना भी यह वैरूप्य बिना वेदि वाले यज्ञों में देखा जाता है।

Or else the objection alleged by him may be retorted.

But, if the passage concerning the uterine (or whole) brother be applicable to this case also (taking the term "uterine" as intending such a brother generally, whether associated or unassociated), then the objection of variableness in the precept may be retorted on you; for the passage, concerning the re-united brother, bears reference to opposition in one case, (in that of the associated half brother and unassociated whole brother); and bears no reference to opposition in one case, (in that of the associated half brother and associated whole brother); and bears no reference to opposition in another case, (in that of a whole brother and half brother both unassociated) : in like manner as it is declared, that the general rule for preparing the vedi or altar at a sacrifice with the Soma plant, must be understood as applicable to sacrifices in which the use of the altar has not been otherwise directed; since there would be variableness in the precept, if it operate in the case of the Dīkṣiṇīya and other similar sacrifices, in bar of a command forbidding the altar suggested by the extension of a rule (concerning sacrifices celebrated at the full moon), but in other instances operate without bar to anything else.

स्वमते विधिवैरूप्यनिरासः

अस्मन्मते तु श्रीकरसम्मतमपि विधिवैरूप्यं नास्ति। संसृष्टिसोदरवचनयोरेकैकविषयत्वात्, अन्योदर्यवचनस्य च सोदरस्यासंसृष्टिनः संसृष्टिनश्चासोदरस्य तुल्यवदधिकार-ज्ञापनार्थत्वात्। अन्योदर्यस्तु संसृष्टी सन्, सत्यपि सोदरेऽ-संसृष्टिनि धनं हरेत्। नान्योदयोऽसंसृष्ट्यपि गृह्णीयादिति पूर्वार्द्धस्यार्थः। तत्र किं सोदरस्तदानीं न गृह्णीयादित्यपेक्षायाम्, उत्तरार्द्धेनोत्तरम्, असंसृष्ट्यपि चाददीत सोदर इत्यनुषज्यते, संसृष्टोऽन्यमातृज एव न केवलः, किन्तूभाभ्यां विभज्य ग्रहीतव्यमित्यर्थः। अतो विधिवैषम्यमपि परिहृतम्।।31।।

जीमूतवाहन के मतानुसार विधिवैरूप्य का निराकरण।

जीमूतवाहन के मतानुसार श्रीकर के मत में विधिवैरूप्य नहीं है, क्योंकि संसृष्टि सोदर वचनों में एक-एक विषय होने से भिन्नोदर वचन का और असंसृष्ट सोदर तथा संसृष्ट भिन्नोदर के तुल्यवत् अधिकार बताने के लिए भिन्नोदर संसृष्ट और सोदर असंसृष्ट आपस में धन बांट लें। पूर्वार्द्ध में केवलमात्र असंसृष्ट भिन्नोदर के लिए धन ग्रहण का निषेध किया गया है। अब प्रश्न उठता है कि क्या सोदर को धन की प्राप्ति नहीं होती है? ऐसा कहने पर उत्तरार्ध से उसका उत्तर प्राप्त होता है कि असंसृष्ट सोदर भी धन ग्रहण कर सकता है, केवल संसृष्ट भिन्नोदर ही नहीं अर्थात् दोनों धन का विभाजन कर अंश ग्रहण करें जिसे विधि वैषम्य दोष का भी परिहार हो जाता है।

It is not a valid objection to the proposed construction.

But, according to our interpretation, there is no variableness in the precept, even as that is understood by Śrīkara : for the passages concerning the re-united brother and the uterine (or whole) brother (see 10) are relative severally to different cases; and that regarding "a half brother again associated" (see 13) declares the equal participation of a whole brother associated and a half brother associated. Thus the meaning of the first part of that text is, 'a half brother, being re-united, in co-parcenery, shall take the succession although a whole brother not re-united exist, but a half brother un who is not re-united shall not inherit it.' The latter part of the text is in answer to the question, does not the whole brother inherit in that case? 'Though not re-united, the whole brother (this term is understood) shall take the heritage, and not exclusively the son of a different mother who is again associated. But it shall be taken and shared by both.' Thus the alleged variableness in the precept is obviated.

तथा मनुरप्येतदेव दर्शयति–

सोदर्या विभजेयुस्तं समेत्य सहिताः समम्।
भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः।।32।।

मनु ने भी यही दर्शाया है कि सब सहोदर भाई ओर बहनें तथा सपत्नी पुत्रों (सौतेले भाइयों) में से जो सम्मिलित रहते हों, सभी मिलकर उसके भाग में से समान-समान भाग परस्पर बांट लें।

A passage of Manu confirms the interpretation.

So Manu likewise shows the same rule of succession. "His uterine brothers and sisters, and such brothers as were re-united after a separation, shall assemble together and divide his share equally."

सोदर्यमात्राणां सोदर्या इति, असोदराणाञ्च संसृष्टानां, संसृष्टा इति बहुवचनान्तस्वपदादेवेतरेतरयोगावगते:, समेत्य सहिता इतिपदमुभयसाहित्यार्थमेव युक्तम्, अन्यथानर्थकत्वात्। अत उभयोरितरेतरयोगस्याश्रवणादिति अहृदयव्याहृतम्।

किञ्च ये चेति चकारश्रुतेः चार्थे द्वन्द्वसमासस्यापि श्रवणात् इतरेतरयोगस्याश्रयणाभिधानं द्वन्द्वस्याप्यतदर्थतामापादयति।।33।।

सोदर पद से केवल सहोदर की ही प्राप्ति होती है। 'असोदर संसृष्टानां' में संसृष्ट बहुवचन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि उसमें स्व पद से अतिरिक्त इतर व्यक्ति का भी बोध होता है। 'समेत्य सहिता' इस पद से दोनों साथ-साथ ग्रहण करें ऐसा ही युक्तियुक्त लगता है अन्यथा अनर्थ की संभावना हो जाएगी। इसलिए इन दोनों के इतरेतर योग का श्रवण न होने से वचन की अनर्थकता होगी। और क्या कहा जाए चकार श्रुति से द्वन्द्व समास का श्रवण होने से दोनों का श्रवणाभिधान सिद्ध होता है।

Exposition of his text and refutation of a contrary inference from it.

Reciprocation being indicated by the plural number, in the term "uterine brothers," as respecting these exclusively; and in the words "brothers re-united", as relating to the half brothers; the words "assemble together" are properly employed to mark association of both (descriptions of brethren); for they would otherwise be unmeaning terms. Therefore it is from mere ignorance that it has been asserted, that

both (do not inherit together), because reciprocation is not expressed by the text. Moreover, since the text exhibits the conjunctive particle "and", in the phrase "and such brothers as were re-united, etc." and the rule (of grammar) expresses, that a conjunctive compound is used when the sense of the conjunctive particle is denoted; the assertion, that reciprocation is not expressed by the text, would imply, that even the conjunction does not bear that sense (viz., the sense of reciprocation).

तस्मात् सोदरासोदरमात्रसद्भावे सोदराणामेव।

अतएव वृहन्मनुः—

एकोदरे जीवति तु सापत्नो न लभेद्धनम्।
स्थावरोऽप्येवमेव स्यात् तद्‌भावे लभेत वै।।34।।

इस प्रकार सोदर और भिन्नोदर में सोदर को ही धनप्राप्ति होती है। इस प्रयोग में बृहत्मनु का कथन है— एकोदर अर्थात् सहोदर के रहते ही भिन्नोदर धन की प्राप्ति न करे। स्थावर सम्पत्ति के प्रसंग में भी यही नियम मान्य है। यदि स्थावर न हो तो अन्य धन प्राप्त करे।

The whole brother inherits in preference to a half brother, if neither be re-united. A passage of Vṛhat Manu confirms this.

Therefore, if whole brothers and half brothers only (not re-united brothers of either description) be the claimants, the succession devolves exclusively on the whole brothers. Accordingly Vṛhat Manu says, "If a son of the same mother survive, the son of her rival shall not take the wealth. This rule shall hold good in regard to the immovable estate. But, on failure of him, (the half brother) may take the heritage."

स्थावरेऽप्येवमेवेति-विभक्तस्थावराभिप्रायेण।

यस्मादनन्तरमेवाह यमः—

अविभक्तं स्थावरं यत् सर्वेषामेव तद्भवेत्।
विभक्तं स्थावरं ग्राह्यं नान्योदर्यैः कथञ्चन।।35।।

स्थावर से अभिप्राय विभक्तस्थावर से है। इसके बाद यम का कथन है कि—अविभक्त स्थावर में भी सभी का अधिकार होता है। विभक्त स्थावर में भिन्नोदर का अंश नहीं होता है।

It relates to divides immovables. A corresponding passage of Yama.

This rule shall hold good in regard to the immovable estate. This rule is relative to divided immovables. For, immediately after treating of such (property), Yama says, "The whole of the undivided immovable estate appertains to all the brethren; but divided immovables must on no account be taken by the half brother."

सर्वेषाम्—सोदरासोदराणामित्यर्थः। सोदराणामेव मध्ये एकस्य संसृष्टत्वे तस्यैव, असंसृष्टिसोदरासोदरसंसृष्टिसद्भावे च द्वयोरेव, सापत्नमात्रसद्भावेऽपि प्रथमं संसृष्टिनः, तदभावे चासंसृष्टिनोऽसोदरस्य मृतधनं प्रत्येतव्यम्।।36।।

'सर्वेषाम्' पद से सोदर और भिन्नोदर दोनों का बोध होता है। सोदर के मध्य में एकमात्र संसृष्ट का ही धन में अधिकार है। सोदर असंसृष्ट तथा भिन्नोदर संसृष्ट इन दोनों में सापत्न अर्थात् भिन्नोदर के रहते हुए भी पहले संसृष्टियों का अधिकार है। उसके अभाव में असंसृष्ट भिन्नोदर का मृत धन पर अधिकार है।

The succession devolves on the re-united whole brother in preference to one not re-united.

All the brethren. Whether of the whole blood or the half blood. But, among whole brothers, if one be re-united after separation, the estate belongs to him. If an unassociated whole brother and re-united half brother exist, it devolves on both of them. If there be only half brothers, the property of the deceased must be assigned in the first instance to a re-united one; but, if there be none such, then to the half brother who is not re-united.

अतएव उक्तक्रमेण बहूनामधिकारप्रतिपत्त्यर्थं भ्रातर इति बहुवचनमुक्तम्। अन्यथानर्थकं भवेत्।।37।।

इसलिए उपर्युक्त क्रम से भ्रातर में बहुवचन का प्रयोग किया गया है, जिससे अनर्थ न हो।

Reason of the use of the plural number in a passage before cited. (Sect. 1. See 4)

Accordingly the plural number is employed in the term "brothers," (Sect. 1. See 4) for the purpose of indicating the succession of all descriptions of them, in the order here stated. Else it would be unmeaning.

'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी' त्येतच्च तुल्यरूपसम्बन्धिसमवाये संसर्गकृतविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्॥38॥

'संसृष्टिनस्तु संसृष्टी' यह वचन केवल भाइयों के लिए ही नहीं, अपितु समस्त संसर्गियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

The passage under consideration (see 10) provides a special rule.

The text, "a re-united (brother) shall keep the share of his re-united co-heir," (see 10) is intended to provide a special rule governed by the circumstance of re-union after separation, and applicable to the case where a number of claimants in an equal degree of affinity occurs.

तेन सोदराणां, सापत्नानां वा तथा भ्रातृपुत्राणाम्, पितृव्यादीनां वा तुल्यानां सद्भावे संसर्गी गृह्णीयात्, वाक्यादविशेषः श्रुतेः। पूर्ववचनेन सर्वेषामेव प्रकृतत्वात् सर्वेष्वेव चापेक्षासद्भावात्। अतो भ्रातृमात्रविषयं वचनमित्यनादरणीयम्॥39॥

इससे यह स्पष्ट होता है कि सोदर के अथवा भिन्नोदर के तथा भाई के पुत्रों अथवा चाचा आदि के समान अन्य सम्बन्धियों का उक्त धन में अधिकार होता है। इस वाक्य से श्रुतिवचन भी सामान्य है। अतः केवल भाइयों के प्रसंग के वचनों को महत्त्व नहीं देना चाहिए।

It is applicable to nephews and uncles, as well as to brothers.

Hence, if there be competition between claimants of equal degree, whether brothers of the whole blood, or brothers

of the half blood, or sons of such brothers, or uncles or the like, the re-united parcener shall take the heritage : for the text does not specify the particular relation; and all (these relations) were premised in the preceding text (Sect. 1. See 4); and a question arises in regard to all of them. Therefore, the text must be considered as not relating exclusively to brothers.

इति भ्रात्राधिकारः।।40।।

यहाँ पर भात्राधिकार की चर्चा समाप्त हुई।

पञ्चमपरिच्छेद समाप्त

Conclusion.

Thus the brother's right of succession has been explained.

इति पारिभद्रीयस्य महामहोपाध्यायश्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे एकादशाध्यायस्य भ्रात्रधिकारनिरूपणपरः पञ्चमपरिच्छेदस्समाप्तः।

षष्ठपरिच्छेदः

भ्रातृपुत्रस्याधिकारप्रतिपादनम्

तदभावे भ्रातृपुत्रस्य, भ्रातृगामीत्यभिधाय 'तदभावे भ्रातृपुत्रगामी'ति विष्णुवचनात्।।1।।

उसके अभाव में (अर्थात् भाइयों के अभावमें) भाइयों के पुत्रों को सम्पत्ति प्राप्त होती है यथा–भातृगामी विष्णु का वचन है कि तदभावे भ्रातृपुत्रगामी ।

After brothers, nephews inherit.

On failure of brothers, the brother's son is heir : for the text of Viṣṇu, having declard "it goes to the brothers," proceeds "After them it descends to the brother's sons."

तत्रापि प्रथमं सोदरभ्रातृपुत्रस्य, तस्य चाभावेऽसोदरभ्रातृ-पुत्रस्याधिकारः, 'सोदरस्य तु सोदर' इति वचनात्। असोदरभ्रातृ

पुत्रो हि धनिनो मृतस्य मातरं विहाय स्वपितामहीविशिष्टस्य धनिपितुः पिण्डदातेति सोदरभ्रातृपुत्राज्जघन्यस्तदनन्तरं धनमधिकरोति॥2॥

यहाँ पर प्रथम सोदर भ्रातृपुत्रका अधिकार है उसके अभाव में असहोदर (भिन्नोदर)भाई के पुत्र का अधिकार है। यथा वचन है–"सोदरस्य तु सोदर" भिन्नोदर भाई का पुत्र मृतस्वामी की माता का पिण्डदान नहीं करता परन्तु मृतक के पिता (स्वपितामह का) तथा स्वपितामही का श्राद्ध करता है। दूसरी ओर सोदर भ्रातृपुत्र मृतस्वामी की माता पितामह एवं प्रपितामही का पिण्डदान करता है। इसी कारण से उसका भिन्नोदर भ्रातृ पुत्र की अपेक्षा मृतस्वामी के धन में प्रथम अधिकार होता है।

The whole blood first and then the half blood.

Among these, the succession devolves first on the son of a uterine (or whole) brother; but, if there be none, it passes to the son of the half brother. For the text expresses, "An uterine (brother) shall retain or deliver the allotment of his uterine relation" (Sect. 5. See 10). Indeed the son of the half brother, being a giver of oblations to the father of the late proprietor, together with his own grandmother, to the exclusion of the mother of the deceased owner, is inferior to a son of a whole brother (who is a giver of oblations to the grandfather in conjunction with the mother of the deceased).

न च सपत्नीकत्वेन सपत्नीमातुः सपत्नीपितामह्याः, सपत्नीप्रपितामह्याश्च श्राद्धेऽनुप्रवेशः, मात्रादिशब्दानां स्वजननी-पितृजननी-पितामहजननीष्वेव मुख्यत्वात्, तैरेव च पदैः श्राद्धे अनुप्रवेशात्।

यथा–

स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुङ्क्ते स्वधामयम्।
पितामही च स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही॥

सपत्नीमात्रादीनाञ्च पार्वणश्राद्धानुप्रवेशो निषिद्ध एव।

यथा पठन्ति–

अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये।
तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्॥3॥

मातादि शब्द सपत्नीमाता, सपत्नी पितामही एवं सपत्नी प्रपितामही के श्राद्ध का निषेध करता है और स्वमाता, स्वपितामही एवं स्वप्रपितामही के श्राद्ध का बोध करता है अर्थात् मृतस्वामी का जब श्राद्ध किया जाता है तब वह पत्नी सहित किया जाता है। उसमें श्राद्ध कर्ता की स्वमातादि का (उनकी मृत्यु के बाद) ही श्राद्ध में प्रवेश होता है यथा कहा गया है कि–माता, पितामही एवं प्रपितामही अपने-अपने पति के साथ पिण्डदान करने के कारण श्राद्ध का भोग करती है। अन्यत्र भी वचन मिलता है कि पुत्रहीन स्त्री या पुरुष के लिए एकोदिष्ट श्राद्ध किया जाता है, पार्वणश्राद्ध नहीं।

Step-mothers do not participate, like the natural mother, in the funeral oblations.

Nor can it be pretended that the step-mother, grandmother and great grandmother take their places at the funeral repast, in consequence of (ancestors being deified) with their wives : for the terms "mother" (grandmother and great grandmother) etc. (in such text as the following) bear their original sense of 'his own natural mother;' "father's" natural mother; and grandfathers natural mother and it is by those terms that they are described as taking their places at the funeral repast. Thus it is said, "A mother tastes with her husband the funeral repast. Consisting of oblations to the manes; and the paternal grandmother with her husband; and the paternal great grandmother with her's." But the introduction of step-mothers and the rest to a place at the periodical obsequies, is expressly forbidden. Thus the sage declares, "Whosoever die, whether man or woman, without male issue, for such person shall be performed funeral rites peculiar to the individual, but no periodical obsequies."

किञ्च सपत्नीकश्राद्धविधानस्य नित्यत्वम्, सर्वजन-

सिद्धत्वात्। सपत्नीमात्रादीनाञ्चानित्यत्वात् नित्यानित्य-संयोगविरोधेन मात्राद्यपेक्षमेव सपत्नीकश्राद्धविधानं युक्तम्।।4।।

यह सर्वजनसिद्ध है कि पितरों का श्राद्ध पत्नी सहित होता है। (यदि उनकी पत्नियाँ मृत हों) अतः यदि ऐसा कहा जाए कि 'सपत्नीक' शब्द स्वमाता एवं सपत्नीमाता दोनों का निदेश करता है तो यह उचित नहीं क्योंकि जहाँ विमाता नहीं होगी वहाँ इसका अनुष्ठान अनित्य रहेगा। इस प्रकार इस प्रकार नित्य और अनित्य के संयोग में विरोध हो जाएगा। अतः सपत्नीक से अभिप्राय स्वमाता से ही है।

It would be a contradiction.

Besides, the command for the celebration of the funeral repast in honour of ancestors with their wives, is of invariable exigency; as it is universally acknowledged : but, since there are not step-mothers in every instance, the precept must relate to the natural mother; for the association of the variable and invariable exigency of the same command would be a contradiction.

ननु सोदरभ्रातृपुत्रवत् सोदरपितृव्यस्यापि धनिदेयसपत्नी-कपूर्वपुरुषद्वयस्य पिण्डदातृत्वात् धनिपितृव्य-भ्रातृपुत्रयोः समानोऽधिकारः स्यात्।

उच्यते, पितृव्यो हि धनिनः पितामह-प्रपितामहयोः पिण्डदः, भ्रातुः पुत्रस्तु धनिनः प्रधानं पितरमेवादाय पुरुषद्वयस्य पिण्डदातेति स एव बलवानिति, पितृव्यात् पूर्वमधिक्रियते।।5।।

यहाँ पर ऐसी शंका उपस्थित हो सकती है कि सहोदर भातृपुत्र के समान सहोदर पितृव्य भी पत्नी सहित दो पितरों का पिण्डदान करता है जिनको मृत व्यक्ति पिण्डदान करने के लिए बाध्य रहता है। अतएव मृतस्वामी के सहोदर पितृव्य तथा सहोदर भ्रातृपुत्र का तुल्य अधिकार होता है। परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि पितृव्य मृतस्वामी के पितामह एवं प्रपितामह का पिण्डदान करता है जबकि भ्रातृपुत्र मृतस्वामी के प्रधान पिता सहित दो पिण्डदान करता है। अतएव सहोदर भ्रातृपुत्र पितृव्य से बलवान् होने के कारण उससे प्रथम अधिकारी है।

The paternal uncle has not equal pretensions with the nephew.

Since the paternal uncle, like the nephew of the whole blood, offers two oblations, which the owner was bound to present, to two ancestors with their wives, should not the succession devolve equally on the uncle and nephew of the late proprietor? The answer is, the paternal uncle is indeed a giver of oblations to the grandfather and great grandfather of the proprietor; but the nephew is giver of two oblations to two ancestors including the owner's father who is principally considered. He is therefore a preferable claimant and inherits before the uncle.

अतएव भ्रातृनप्तापि पितृव्यस्य बाधकः, मृतधनिकस्य पितुः प्रधानस्यैव पिण्डदातृत्वात्॥6॥

इसी प्रकार पितृव्य से पूर्व भ्रातृपौत्र का अधिकार है क्योंकि वह भी मृतस्वामी के प्रधान पिता को पिण्डदान करता है।

Even the brother's grandson inherits before him.

Accordingly (since superior benefits are conferred by such a successor), the brother's grandson excludes the paternal uncle; for he is giver of oblations to the deceased owner's father who is the person principally considered.

भ्रातुः प्रति नप्ता न धनिनः पितृसन्ततिरपि पितृव्येण बाध्यते, पञ्चमत्वेन पिण्डदातृत्वाभावात्।

तथा च मनुः–

'त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते।
चतुर्थः सम्प्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते'॥

(मनु. 1-186)

इत्यनेन पञ्चमो निषिद्धः॥7॥

भ्रातृप्रपौत्र का पितृक से पूर्व अधिकार नहीं है क्योंकि वह पाँचवीं पीढ़ी का है उसका पिण्डदान में अधिकार नहीं है। यथा मनु का कथन

है कि तीन (पिता, पितामह एवं प्रपितामह) का जलतर्पण और तीन का ही पिण्डदान होता है। चौथा इनको देने वाला है और पाँचवे का इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता।

But the brother's great grandson is excluded, as too remote.

But the brother's great grandson, though a lineal descendant of the owner's father, is excluded by the paternal uncle : for he is not a giver of oblations, since he is distant in the fifth degree. Thus Manu says, "To three must libations of water be made, to three must oblations of food be presented; the fourth in descent is the giver of those offerings : but the fifth has no concern with them." By this passage the fifth in descent is debarred.

किन्तु पितुरपि प्रपौत्रपर्यन्ताभावे पितृ दौहित्रस्याधिकारो बोद्धव्यः, धनिदौहित्रस्येव॥8॥

मृतस्वामीके प्रपौत्र पर्यान्त अभाव होने पर जिस प्रकार दौहित्र का अधिकार होता है उसी प्रकार पिता के प्रपौत्र पर्यन्त अभाव होने पर पिता के दौहित्त्र का अधिकार होता है।

The sister's son also inherits before the uncle.

But, on failure of heirs of the father down to the great grandson, it must be understood, that the succession devolves on the father's daughter's son (in preference to the uncle); in like manner as it descends to the owner's daughter's son (on failure of the male issue, in preference to the brother).

एवं पितामहप्रपितामहसन्ततेरपि दौहित्रान्तायाः पिण्डप्रत्यासत्तिक्रमेणाधिकारो बोद्धव्यः।

दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवत्।

(मनु. 9-139)

इतिहेतोरविशेषात्। स्वदौहित्रवत् पित्रादिदौहित्रस्यापि तद्भोग्यपिण्डदानेन सन्तारकत्वात॥9॥

इसी प्रकार पितामह एवं प्रपितामह के दौहित्र का अधिकार

पिण्डदानकी प्रत्यासत्ति से है यथा मनु का कथन है कि दौहित्र भी पिताकी पौत्र के समान नरक से रक्षा करता है। अतएव स्वदौहित्र के समान पितादिके दौहित्र भी मृत द्वारा दिए जाने वाले पिण्डदान करके उसकी नरक से रक्षा करते हैं।

So the daughter's son of the grandfather and great grandfather are the last heirs in those several lines.

The succession of the grandfather's and great grandfather's lineal descendants including the daughter's son, must be understood in a similar manner, according to the proximity of the funeral offering : since the reason stated in the text "for even the son of a daughter delivers him in the next world, like the son of a son," is equally applicable; and his father's or grandfather's daughter's son, like his own daughter's son, transports his manes over the abyss, by offering oblations of which he may partake.

अतएव मनुना पृथगमीषामधिकारी न दर्शितः 'त्रयाणामि'ति अनन्तर इति मनुवचनद्वयेनैव संगृहीतत्वात्। याज्ञवल्क्येन च पित्रादिदौहित्रस्यापि तद्गोत्रजातस्य पिण्डदानानन्तर्यक्रमेणाधिकारप्रतिपत्त्यर्थं गोत्रजपदं कृतम्। सपिण्डस्त्रीणाञ्च व्युदासार्थम्। तासामतद्गोत्रजातत्वात्॥10॥

अतएव मनु ने पितादिके दौहित्र के अधिकार का पृथक् उल्लेख नहीं किया परन्तु मनुके "त्रयाण्यमदुक" तथा "अनन्तर सपिण्डादि" इन दोनों वचनों से इनके अधिकार का बोध होताहै। याज्ञवल्क्य ने भी पितादि के दौहित्र का अधिकार बतलाने केलिए "तत्सुतो गोत्रजो" में गोत्रज पद को एकवचन में रखा है क्योंकि पिण्डदान की प्रत्यासत्ति (सन्निकटता) से इनके अधिकार को स्वीकार किया है। सपिण्ड स्त्रियों के अधिकार का निषेध किया है क्योंकि वे मृतस्वामी के गोत्र में उत्पन्न नहीं होती; उनका गोत्र पृथक होता है।

Manu and Yājñavalkya have not specified, but only indicated, their succession.

Accordingly Manu has not separately propounded their

right of inheritance : for they are comprehended under the two passages, "To three must libations of water be made," etc. and "To the nearest kinsman (sapiṇḍa) the inheritance next belongs." Yājñavalkya likewise uses the term "gentiles" or kinsmen (gotraja) for the purpose of indicating the right of inheritance of the father's and grandfather's daughter's son, as sprung from the same line, in the relative order of the funeral oblation; and for the further purpose of excluding females related as sapiṇḍas since these also sprung from the same line.

अतएवाऽर्हति स्त्रीत्यनुवृत्तौ बौधायनः, 'न वायं निरिन्द्रियाः अदायादाश्च स्त्रियो मता' इति श्रुतिः। न दायमर्हति स्त्रीत्यन्वयः, पत्न्यादीनान्त्वधिकारो विशेषवचनादविरुद्धः॥11॥

बौधायन ने कहा है कि स्त्रियों में बल नहीं होता और वे सम्पत्ति के भाग की अधिकारिणी नहीं होतीं। जीमूतवाहन ने यद्यपि स्त्रियों का पिण्डदान में अधिकार न होने के कारण उनका अधिकार स्वीकार नहीं किया तथापि पत्नी, दुहिता, माता, पितामही एवं प्रपितामही–इन पाँच स्त्रियों को दायाद के रूप में स्वीकार किया है क्योंकि इनका कथन है कि शास्त्र में विशेष वचनों के द्वारा इन्हें अधिकार प्राप्त है।

In general, a female is incapable of inheriting.

According (since they are excluded), Baudhāyana, after premising "A woman is entitled," proceeds "not to the heritage' for females and persons deficient in an organ of sense or member, are deemed incompetent to inherit." The construction of this passage is 'a woman is not entitled to the heritage.' But the succession of the widow and certain others (viz., the daughter, the mother and the paternal grandmother), takes effefct under express texts, without contradiction to his maxim.

प्रपितामहसन्तानस्य दौहित्रान्तस्य मृतभोग्यपिण्डदातुरभावे मृतदेयमातामहादिपिण्डदानेन पिण्डानन्तर्यात् मातुलादिग्रहणार्थं बन्धुपदं प्रयुक्तवान् याज्ञवल्क्यः। मनुना तु पिण्डदानानन्तर्य-

वचनेनैव दर्शितम्॥12॥

प्रपितामह की दौहित्र पर्यन्त सन्तान काअभाव होने पर मातुल का धन में अधिकार होता है। वह मृतदेय मातामहादि के पिण्ड कादान करता है। याज्ञवल्क्य के श्लोक में प्रयुक्त बन्धु शब्द मामादि के अधि कार का निर्देश करता है। मनु ने पिण्डदान की सन्निकटता से मामादि का अधिकार स्वीकार किया है।

On failure of the paternal line, the property devolves on the maternal kindred.

On failure of any lineal descendant of the paternal great grandfather, down to the daughter's son, who might present oblations in which the deceased would participate; to intimate, that, in such case, the maternal uncle shall inherit in consequence of the proximity of oblations, as presenting offerings to the maternal grandfather and the rest, which the deceased was bound to offer, Yājñavalkya employs the term "cognates" (bandhu). But Manu has indicated it only by a passage declaratory of succession according to the nearness of the oblation.

मृतदेयमातामहादिपिण्डत्रयस्य मातुलादिभिर्दीयमानत्वात् मातुलाद्यर्थत्वं धनस्य धनद्वारेण तस्यापि तत्पिण्डदातृत्वात्। धनार्जनस्य हि प्रयोजनद्वयं भोगार्थत्वं दानाद्यदृष्टार्थत्वञ्च, तत्रार्जकस्य तु मृतत्वात्। धने भोग्यत्वाभावेनादृष्टार्थत्वमेव शिष्टम्।

अतएव बृहस्पतिः–

'समुत्पन्नाद्धनादर्द्धं तदर्थे स्थापयेत् पृथक्।
मासषाण्मासिके श्राद्धे वार्षिके च प्रयत्नतः'॥

तथा आपस्तम्बः, "अन्तेवासी हृत्वा तदर्थेषु धर्मकृत्येषु वोपयोजयेत् दुहिता वा" (आप. ध. सू. 2-6-14-34)। **मासिकादीनां तद्भोगार्थं धर्मकृत्येष्विति अदृष्टार्थत्वे हेतुः।**

अतएव 'दत्तभुक्तफलं धनमि'ति स्मरन्ति। तस्मात् तद्भोग्यपिण्डदातुरभावे तद्देयपिण्डदातुर्मातुलादेरधिकारो न्याय्य एव॥13॥

मामादि का धन में अधिकार होने पर वे मृतस्वामी द्वारा दिए जाने वाले मातामहादि तीन पितरों को पिण्डदान करते हैं। धन प्राप्ति के मुख्य दो प्रयोजन हैं– एक लौकिक सुख की प्राप्ति और दूसरा दानादि द्वारा अदृष्ट बल की प्राप्ति। जब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसके शेष बचे हुए धन से उसका श्राद्धादि किया जाता है जिससे उसे परलौकिक कल्याण की प्राप्ति हो। इस सन्दर्भ में बृहस्पति का मत है कि जो व्यक्ति मृत स्वामी का दाय प्राप्त करता है उसे आधी सम्पत्ति मृतस्वामी के मासिक, षाणमासिक एवं वार्षिक श्राद्ध के लिए पृथक् कर देनी चाहिए। आपस्तम्ब का मत है कि अन्तेवासी अर्थात् छात्र धन को धर्मकार्यों में लगा दे अथवा पुत्री उस दाय को ले। स्मृतिकारों ने कहा है कि धन दान और उपभोग करने के लिए होता है। मृत व्यक्ति द्वारा भोगे जाने वाले पिण्डों के अभाव में मृतदेय मातुलादि का अधिकार होता है क्योंकि वे पिण्डदान द्वारा मातामहादि का पारलौकिक कल्याण करते हैं।

d be so applied to the spiritual ben-
onformably with texts of Bṛhaspati

ed the rest present three ob-
ather and other ancestors,
o offer, therefore the prop-
rnal uncle and the rest : for
person becomes a giver of
ed declared for the acquisi-
oyment, the other the spiri-
. Now, since the acquirer is
enjoyment, it is right that
to his spiritual benefit. Ac-
“Of property which descends by
carefully be set apart for the benefit
owner to defray the charges of his monthly,

six-monthly and annual obsequies." So Āpastamba ordains. "Let the pupil or the daughter apply the goods to religious purposes for the benefit of the deceased." By saying to defray the charges of his monthly, etc. obsequies," his participation, and by directing "religious purposes" his spiritual benefit, are stated as reasons. Accordingly the sage says, "Wealth is useful for alms and for enjoyment." It is reasonable, therefore, that, on failure of kindred who might present oblations in which he would participate, the succession should devolve on the maternal uncle and the rest, who present oblations which he was bound to offer.

अतएव त्रयाणामिति अनन्तर इति वचनद्वयेनैवायमर्थो दर्शित इति मत्वा तदनन्तरं मनुनोक्तम्।

'अत ऊर्द्धं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा' (9-189)।।14।।

अतएव 'त्रयाणमिति' इन दोनों श्लोकों को कहकर मनु ने आगे बताया है कि सकुल्य मृत व्यक्ति की सम्पत्ति प्राप्त करता है उसके अभाव में आचार्य अथवा शिष्य सम्पत्ति प्राप्त करता है।

After the kindred on the mother's side, the distant kinsman is heir : according to passage of Manu.

Accordingly (since the succession devolves on heirs down to the maternal uncle and the rest, in the order of oblaitons in which the deceased may participate, or which ha was bound to offer); Manu, considering that purport as sufficiently indicated by the two passages above cited, "To three must oblations be made etc." "To the nearest kinsman the inheritance next belongs;" (vide See 7 and 17) proceeds thus, "Then, on failure of such kindred, the distant kinsman shall be the heir, or the spiritual preceptor, or the pupil."

सकुल्यः वृद्धप्रपितामहादिसन्ततिः समानोदकाश्च भण्यन्ते, तेषामुपन्यासक्रमेणाधिकारक्रमः; तदभावे आचार्यशिष्यादीनाम्।।15।।

सकुल्य से अभिप्राय वृद्ध प्रपितामह की सन्तान एवं समानोदक कहे जाते हैं। उनके क्रम से उत्तराधिकार क्रम बताया गया है। उनके अभाव में आचार्य और शिष्य को सम्पत्ति प्राप्त होती है।

He is descendant of the grandfather's grandfather or remoter ancestor. After these, the preceptor or the pupil.

The distant kinsman (sakulya) is the descendant of the paternal grandfather's grandfather or other remote ancestor. Such relatives are denominated Samānodakas. Their order of succession is in the series as exhibited. On failure of such heirs (down to the Samānodaka) the succession devolves on the spiritual preceptor, the pupil.

अन्यथा कथं मातुलादीनाम् मनुविरुद्धोऽन्तर्भावः शक्यते। तस्मात् मनुना पूर्ववचनद्वयप्रतिपादितोऽयमर्थः इत्यविरोधः॥16॥

इस प्रकार मनु द्वारा पूर्व प्रतिपादित दोनों वचनों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

Such must be Manu's intention.

Otherwise (if the text of Manu do not intend the maternal uncle and the rest), how is the admission of maternal uncles and others affirmed without contradiction to Manu? Therefore this meaning is intended by him in the passage above cited and there is no contradiction.

अतएव दायभागप्रकरणे–

'त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते।
चतुर्थः सम्प्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते'॥

(मनु. 9-186) इत्युक्त्वा

"अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेद्" (मनु. 9-187) लिखितं पञ्चमस्यैकपिण्डसम्बन्धाहीनस्य पितृमातृकुलजातैकपिण्डसम्बन्धिसद्भावे अनधिकारर्थम्, अन्यथा 'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते' (मनु. 5-60)

इति सपिण्डत्वस्योक्तत्वात् 'अनन्तरः सपिण्डाद् य' इत्यनेन चानन्तर्यस्य धनग्रहणकारणत्वेनाभिहितत्वात् त्रयाणामित्यनर्थकं स्यात्। न च त्रैपुरुषिकश्राद्धविधानार्थमिदमिति वाच्यम्, दायभाग-सन्दंशमध्यपाठात्, श्राद्धस्य च वचनान्तरविहितत्वात्।

तथाच मनुः–

'स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् होमर्देवान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धेन नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मण'॥17॥

(मनु. 3-81)

अतः दायभाग प्रकरण में कहा गया है कि "तीन का जलतर्पण और तीन का ही पिण्डदान होता है। चौथा इनको देने वाला होता है और पाँचवें का इनके साथ कोई संबंध नहीं होता" ऐसा मनु द्वारा कहा गया है और बताया गया है कि "सपिण्डादि में जो निकटवर्ती है वही धन प्राप्त करता है" कहकर पांचवीं पीढ़ी के व्यक्ति को धन से वंचित रखकर पितृ मातृ कुल जाति के साथ सम्बन्ध होने पर भी अनधिकारी बतलाया है अन्यथा–"सपिण्डता तु सप्तमे पुरुषे विनिवर्तते– सपिण्डत्व को कहकर 'जो निकटवर्ती सपिण्डी है वही धन प्राप्त करे' इस उक्ति से धन ग्रहण का अधिकार कहा जाए तो त्रयाणाम् वचन अनर्थक हो जाएगा। तीन पुरुषों को लक्ष्य में रखकर श्राद्ध का विधान भी नहीं मानना चाहिए। दायभाग संदंश के मध्य पढ़ा है और श्राद्ध का विधान वचन्तारों से विहित बताया है। यथा मनु का कथन है कि वेदपाठ से ऋषियों की, विधिपूर्वक हवन से देवताओं की, श्राद्ध से पितरों की, अन्न से मनुष्यों की और बलिकर्म से भूतों की पूजा करनी चाहिए। (मनु.3/81)

As appears from several passages.

Accordingly, having declared, while treating of inheritance, "To three must libations of water be made; to three must oblations of food be presented; the fourth in descent is the giver of those offerings; but the fifth has no concern with them;" he adds, "To the nearest kinsman (sapiṇḍa), the inheritance next belongs;" for the purpose of showing, that the fifth in descent, not being connected even by a single

oblaitons, is not the heir, so long as a person connected by a single oblations is whether sprung fromt the father's or the mother's family, exists. Otherwise, since the relation of sapiṇḍa has been declared by a distinct text, (Now the relation of sapiṇḍa or men connected by the funeral cake ceases with the seventh person); and the right of the fourth in descent to inherit is declared by the text. "To the nearest kinsman the inheritance next belongs"; the passage, which begins "To three must libations be made, etc." would be superfluous. It cannot be said, that it intended to direct the celebration of the funeral repast in honour of three ancestors : for it is inserted in the midst of a disquisition concerning inheritance; and the funeral repast is ordained by a different text. Thus Manu says, "Let the householder honor the sages by duly studying the Veda; the gods by oblations to fire as ordained by law; the manes, by pious obsequies; men, by supplying them with food; and spirits, by gifts to all animated creatures."

न च जननक्रमेणानन्तर्यग्रहणार्थ वचनम्, न तु प्रदातृत्वे-नानन्तर्यार्थमिति वाच्यम्, जननक्रमस्य वचनादनवगतेः, किन्तु उदकवत् त्रिभ्यः पिण्डदानं चतुर्थोऽधस्तनः पिण्डदाता, पञ्चमस्तु पूर्वतनो न सम्प्रदानं, नाप्यधस्तनः पञ्चमः पिण्डदातेत्यभिधाय, आनन्तर्यमभिदधानो मनुः प्रदातृत्वाति-शयेनैवानन्तर्यं ज्ञापयति॥18॥

उत्पत्ति क्रम से इन वचनों को नहीं लेना चाहिए, न ही दाता के क्रम से। यद्यपि उत्पत्ति क्रम की जानकारी होती है किन्तु यदकवत् से तीन को पिण्डदान दिया जाता है, चौथा अधस्तन पिण्डदान होता है, पूर्ववर्ती पांचवें को पिण्ड नहीं दिया जाता है, न ही अधस्तन पांचवा कोई होता है। मनु ने पिण्डदान का उल्लेख करते हुए निकटवर्ती व्यक्तियों को ही स्वीकार किया है।

Nearness of kin is not by birth.

Nor should it be pretended, that the text (of Manu, "To the nearest sapiṇḍa etc.," See 17) is intended to indicate

nearness of kin according to the order of birth and not according to the presentation of offerings : for the order of birth is not suggested by the text. But Manu, declaring, that oblations of food, as well as libations of water, are to be offered to three persons, and that the fourth in descent is a giver of oblations, but neither is the fifth in ascent a receiver of offerings, nor the fifth in descent a giver of them, thus declares nearness of kin and shows that it depends on superiority of (benefits by) presentation of oblations.

तस्मात् यो यस्तत्कुलोत्पन्नोऽतद्गोत्रोऽपि स्वदौहित्रपितृदौहित्रादिरतत्कुलोत्पन्नो वा मातुलादिर्धनिनो मृतस्य पितृमातृकुलगतत्रैपुरुषिकपिण्डदातृतया एकपिण्डसम्बन्धेन सपिण्डः, तस्य तस्याप्यधिकारार्थम् त्रयाणमिति वचनम्। आनन्तर्येण च विशेषार्थमनन्तर इति वचनं वर्णनीयम्।।19।।

इसलिए जो उस कुल में उत्पन्न हुए हैं लेकिन उस गोत्र से भिन्न अपने दौहित, पितृ दौहित्रादि अथवा उस कुल से भिन्न उत्पन्न मामादि मृतधनी के माता-पिता कुल की तीन पीढ़ी पर्यन्त पिण्डदाता क्रम से एक पिण्ड होने से सपिण्डी है। उनके अधिकार को बतलाने के लिए त्रयाणाम् वचन है निकटता के लिए ही यह वचन कहे हैं।

The kindred on the mother's side therefore inherit.

Therefore a kinsman, who is allied by a common oblation as presenting funeral offerings to three persons in the family of the father, or in that of the mother, of the deceased owner, such kinsman having sprung from his family though of different male descent, as his own daughter's son or his father's daughter's son, or having sprung from a different family as his maternal uncle or the like, (is heir) : and the text ("To three must libations of water be made etc." See 7) is intended to propound the succession of such kinsmen; and the subsequent passage ("To the nearest sapiṇḍa etc., See 17) must be explained as meant to discriminate them according to their degree of proximity.

तेन मृतभोग्यमृतदेयपित्रादित्रयपिण्डदातुः पितृदौहित्रा-देरभावे मृतदेयमातामहादिपिण्डदातॄणां मातुलादीनामानन्तर्य-क्रमेणाधिकारो बोद्धव्यः।।20।।

अतः मृतभोग्य एवं मृतदेय पित्रदिपिण्डत्रय के देने वाले पिता के दौहित्र के अभाव में मृतदेय मातामहादि पिण्ड देनेवाले मामादि का निकट क्रम से अधिकार जानना चाहिए।

On failure of paternal kindred connected by funeral oblations.

The order of succession then must be understood in this manner : on failure of the father's daughter's son or other person who is giver of three oblations (presented to the father etc.), which the deceased shares or which he was bound to offer, the succession devolves in the next place on the matternal uncle and others (namely, his son or grandson) who offer oblations to the maternal grandfather and the rest which the deceased was bound to present.

एतत्पर्यन्ताभावे तु सकुल्यः।

तदाह मनुः–

'तदभावे सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा।'

(मनु. 9–187)

सकुल्यः–विभक्तपिण्डः प्रतिप्रणप्तृतःप्रभृति पुरुषत्रय-मधस्तनं वृद्धप्रपितामहादिसन्ततिश्च।।21।।

सपण्डिों के अभाव में सकुल्य मृतस्वामी की सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। यथा मनु ने कहा है कि सपिण्ड के अभाव में सकुल्य, आचार्य और शिष्य मृत व्यक्ति के धन के अधिकारी है। सकुल्य से अभिप्राय विभक्तदायाद है। सकुल्य के अन्तर्गत प्रपौत्र से नीचे के तीन वंशज तथा प्रपितामह से ऊपर के तीन पूर्वज आते हैं।

After them, the distant kindred.

But on failure of kin this degree, the distant kinsman (sakulya) is successor, For Manu says, "Then, on failure of

such kindred, the distant kinsman shall be the heir, or the spiritual preceptor, or the pupil." The distant kinsman (sakulya) is one who shares a divided oblation (Sect. 1. See 37) as the grandson's grandson or other descendant within three degrees reckoned from him; or as the offspring of the grandfather's grandfather or other remoter ancestor.

तत्रापि प्रतिप्रणप्त्रादेरानन्तर्य पिण्डलेपद्वारेण तेषामुपकारकत्वात्, तदभावे च वृद्धप्रपितामहादिसन्ततिः मृतदेयपिण्डलेपभोगिभ्यो वृद्धप्रपितामहादिभ्यः पिण्डदातृत्वात्॥22॥

सर्वप्रथम प्रपौत्रादि तीन पीढ़ियों का अधिकार होता है क्योंकि वे पिण्डलेप के द्वारा पितरों का उपकार करते हैं। इनके अभाव में वृद्धप्रपितामहादि की सन्तति का अधिकार है।

First, the grandson's grandson and his descendants. Then the descendants of the grandfather's grandfather etc..

Among these claimants (whether ascending or descending), the grandson's grandson and the rest are nearest, since they confer benefits by means of the residue of oblations which they offer. (These descendants are therefore heirs). On failure of such, the offspring of the paternal grandfather's grandfather inherits in right of oblations presented to the paternal grandfather's grandfather and other ancestors who are sharers of the residue of oblations which the deceased was bound to offer.

एबंविधसकुल्याभावे च समानोदकाः सकुल्यपदेनैवोपात्ता मन्तव्याः॥23॥

सकुल्यों के अभाव में समानोदक मृतस्वामी के धन के अधिकारी होते हैं। मनु ने समानोदकों का पृथक् उल्लेख नहीं किया है। सकुल्यों के अन्तर्गत समानोदक आ जाते हैं।

Next remote kindred.

If there be no such distant kindred. the Samānodakas, or kinsmen allied by a common libation of water, must be

admitted to inherit, as being signified by the term sakulya (conformably with Baudhāyana's explanation of it : Sect. 1. See 37).

तेषामभावे आचार्यः, तस्याप्यभावे शिष्यः, 'आचार्यः शिष्य एव वे'ति मनुवचनात्। तदभावे सब्रह्मचारी-शिष्यः। सब्रह्मचारिण इति निर्देशात्॥24॥

इनके अभाव (समानोदक) में आचार्य, तदुपरान्त शिष्य उत्तराधिकारी है। शिष्य के अभाव में सब्रह्मचारी धन प्राप्त करता है।

After these, the preceptor, pupil, and fellow-student.

On failure of these, the spiritual preceptor (or instructor in knowledge of the veda) is the successor. In default of him, the pupil (or student of the Vedas) is heir, by the text of Manu, "or the spiritual preceptor or the pupil." (see 14) On failure of him likewise, the fellow-student; by the text (of Yājñavalkya) "a pupil and a fellow-student." (Sect. 1. See 4.)

तदभावे चैकगोत्राः, तदभावे चैकप्रवराः, 'पिण्डगोत्रर्षि-सम्बन्धा ऋक्थं भजेरिन्न' ति 28-19 गौतमवचनात्॥25॥

सब्रह्मचारी के अभाव में एक गोत्र वाला (सगोत्र) और एक प्रवर (समानप्रवर) को धन मिलता है। यथा गौतम का मत है कि 'पिण्डगोत्रार्षि सम्बन्धा ऋक्थं भजेरन्'।

Then persons bearing the same family name; and descendants from the same patriarch.

In default of these claimants, persons bearing the same family name (gotra) are heirs. On failure of them, persons descended from the same patriarch are the successors. For the text of Gautama expresses "Persons allied by funeral oblations, family name and patriarchal descent, shall share the heritage (of a childless man; or his widow shall partake)."

उक्तपर्यन्तानान्तु सर्वेषामभावे ब्राह्मणा तद्धनम् गह्णीयुः। यदाह मनुः—

'सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थहारिणः।
त्रैविद्याः शुचयो दान्ता एवं धर्मो न हीयते'।।

(मनु. 9-182)

भोगेन क्षीयमाणोऽपि धर्मस्तदीयधनस्य ब्राह्मणगमित्वेनापरधर्मप्राप्त्या आपूर्यमाणो न हीयत इति, अत्रापि धनस्य तादर्थ्यमेव पुरस्करोति।।26।।

इन सबके अभाव में ब्राह्मण को धन मिलता है। यथा-मनु का कथन है कि सबके अभाव में वेदत्रय के पढ़ने वाले शुद्ध, जितेन्द्रिय ब्राह्मण ही मृत व्यक्ति के धन पाने के अधिकारी होते हैं। इस प्रकार धर्म (मृत व्यक्ति के पिण्डदानादि क्रिया) की हानि नहीं होती। इस प्रकार के ब्राह्मण को धन देने से भोग के क्षीण होने पर भी धर्म की वृद्धि होती है।

Next Brāhmaṇas.

On failure of all heirs as here specified, let the priest take the estate. Thus Manu says, "On failure of all those, the lawful heirs are such Brāhmaṇas, as have read the three vedas, as are pure in body and mind, as have subdued their passions. Thus virtue is not lost." Virtue, which would be extinguished by the ample enjoyment (of its reward), but is renewed by the acquisition of fresh merit through the circumstance of his wealth devolving on Brāhmaṇas, is not lost. Here also the author indicates the appropriation of the property for the benefit of the deceased."

तदभावे ब्राह्मणधनवर्ज राजा गृह्णीयात्। गोत्रर्षिसम्बन्धानां ब्राह्मणानां चाभावः तद्ग्रामे बोद्धव्यः, अन्यथा राजाधिकारस्य निर्विषय- त्वापत्तेः।।27।।

ब्राह्मण के धन को छोड़कर क्षत्रियादि वर्णों के धन को राजा प्राप्त करता है। यहाँ पर गोत्र-ऋषि से सम्बन्धित ब्राह्मणों का अभाव उसी ग्राम से जानना चाहिए अन्यथा राजाधिकार के निर्विषय की आपत्ति हो जाएगी।

Lastly, the king.

In default of the, the king shall take the wealth : excepting, however, the property of a Brāhmaṇa. A failure of descendants from the same patriarch and of persons bearing the same family name, as well as Brāhmaṇas, must be understood as occurring when there are none inhabiting the same village : else an escheat to the king could never happen.

तत्र यदि त्रणाणामित्यादिना पितृ-दौहित्र-मातुलादीनामधिकारो नोक्तःस्यात्। तदा सकुल्यादीनां नियतक्रमाणां मध्येऽनुप्रवेशाभावादधिकार एव न स्यात्। न च मा भूदिति वाच्यम्। याज्ञवल्क्येन तेषां गोत्रजबन्धुपदाभ्यां दर्शितत्वात्। तस्मात् मनुनापि त्रयाणामित्यादिनैव दर्शितमिति वाच्यम्। तस्मात् यथा यथा मृतधनस्य तदुपयुक्तत्वं भवति, तथा तथा अधिकारक्रमोऽनुसरणीयः॥28॥

वहाँ पर श्रयाणमित्यादी से पिता-दौहित्र और मामा का अधिकार नहीं माना गया है। तब सकुल्यादि के नियतक्रम के मध्य में आ जाने से उनका अधिकार ही नहीं होगा, ऐसा नहीं मानना चाहिए क्योंकि याज्ञयवल्क्य ने उनके लिए गोत्रज एवं बन्धु पद का प्रयोग किया है। इस कारण मनु ने भी त्रयाणाम् को दिखलाया है। अतः मृतधनी के अधिकार के लिए जो उपयुक्त है उसी का अनुसरण करना चाहिए।

Unless this doctrine be admitted, the maternal uncle and the rest, not being specified, would have no right of inheritance.

If the right of the father's daughter's son and of the maternal uncle and the rest, be not considered as intended by the text, "To three must libations of water be made, (See 7) they would have no right of succession, since they have not a place among distant kinsmen and others, whose order or succession is specified. Nor can this be deemed an admissible inference, since they are indicated by Yājñavalkya under the terms "Gentiles and cognates" (Sect. 1. See 4). Consequently it must be affirmed, that they have been indi-

cated by Manu in this text (See 7). Therefore such order of succession must be followed, as will render the wealth of the deceased most serviceable to him.

अतएव पुत्र-पौत्र-प्रपौत्राणां तुल्यवदेवाधिकारः सिध्यति, 'पुत्रेण लोकान् जयती' त्यादिवाक्येभ्यस्तुल्योपकारश्रुतेः तत्पिण्डदानाविशेषात्। अतएव जीवत्पितृकयोः पौत्रप्रपौत्रयो-रनधिकारः सिद्ध्यति, 'न जीवन्तमपिदद्यादि'ति श्रुत्या जीवन्तं पितरमतिक्रम्य तयोः पार्वणनिषेधादनुपकारकत्वात्। अन्यथा मृतपितृकयोरिव तयोरपि स्यात्, जननक्रमेण च सपिण्डानन्तर्यात् पुत्रस्यैव स्यात्, न पौत्रप्रपौत्रयोः, न च पुत्रादीनां त्रयाणाम् युगपदधिकारप्रतिपादकं वचनमस्ति। तस्मादुपकारकत्वा-विशेषादेव तुल्यवद्धनसम्बन्धोऽभिधेयः।।29।।

अतएव पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र-इन तीनों का समान अधिकार सिद्ध होता है। "पुत्र के द्वारा इस लोक पर विजय प्राप्त करता है" इत्यादि वाक्यों से समान उपकारक होने से पिण्डदान देने का समान अधिकार है। अतः पिता के जीवित रहते हुए पौत्र एवं प्रपौत्र का अनधिकार सिद्ध होता है। "जीवित व्यक्ति को पिण्डदान न दे" इत्यादि श्रुति के वचनों से जीवित पिता का अतिक्रमण कर उनके लिए पार्वण श्राद्ध का निषेध अनुपकारी है। अन्यथा मृतपिता के समान उन दोनों का भी पिण्डदान होगा। उत्पत्तिक्रम से सपिण्डों में निकटवर्ती पुत्र का ही अधिकार होगा, पौत्र-प्रपौत्र का नहीं। पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र इन तीनों का एक साथ भी अधि कार वचन नहीं है।

On the same principle of inheritance in right of benefits conferred, is the equal succession of the son, grandson and great grandson, justified; as well as the exclusion of the two last, if their fathers be living.

Accordingly (since inheritance is in right of benefits conferred, and the order of succession is regulated by the degree of benefit); the equal right of the son, the son's son, and the son's grandson, is proper : for their equal pretensions

are declared in the text," "By a son a man conquers worlds," etc. (Sect. 1. See 31), and in other similar passages. They equally present oblations to the deceased. Hence also the grandson and great grandson, whose fathers are living, do not inherit, for they do not confer benefits, since they are forbidden to celebrate the periodical obsequies by skipping the surviving father; the law providing, that oblations shall not be presented, over-passing a living person. Otherwise these (sons and grandsons, whose fathers are living), would have he same right of inheritance with those whose fathers are deceased. Or the son alone would inherit as nearest of kin in the order of birth, to the exclusion of the son" son and son" grandson. Neither is there any express text declaratory of the equal rights of three descendants, son, grandson and great grandson. Therefore it must be inferred, that he parity in their right of inheritance arises from the equal benefits conferred by them.

एवञ्च सर्वत्रोक्तरीत्या मृतधनस्य मृतार्थत्वमनुसन्धेय-मुक्तक्रमेण।।30।।

इस प्रकार उक्त रीति से मृतधनी का क्रम जानना चाहिए।

In every case the wealth is appropriated in the manner most serviceable to the deceased.

In like manner the appropriated of the wealth of the deceased to his benefit, in the mode which has been stated, should in every case be deduced according to the specified order.

उपकारकत्वातिशयेन धनसम्बन्ध इत्यस्य निगमनम्

स चायमर्थः दायभागप्रकरणे पुत्रादीनामुपकारकत्वा-तिशयाभिधानस्य, अनन्यप्रयोजनकत्वात्।

'पितृणामनृणश्चैव स तस्माल्लब्धुमर्हति।'
इत्यानृण्यकरणस्य धनलाभहेतुत्वेन कीर्तनात्।।
'दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवत्'।

(मनु. 9-139)

इत्यनेनापि सन्तारणस्य धनसम्बन्धहेतुत्वेन निर्देशात्, पुत्रादीनाञ्च त्रयाणां सन्तारणादन्यस्य तुल्यबद्धनसम्बन्धकारणस्याभावात् 'त्र्याणामुदकमि' त्यादेश्चानर्थक्यापत्ते: क्लीव-पतित-जात्यन्धादीनाञ्चानुपकारकत्वानंशित्वाभिधानस्योपपत्तेः प्रतिसम्बन्धिनाञ्चाधिकारार्थं वचनकल्पनागौरवात्, तदर्जितधनस्य च तदुपकारतारतम्येन तादर्थ्यसम्पादनस्य न्याय्यत्वात्, उपकारकत्वेनैव धनसम्बन्धो न्यायप्राप्तो मन्वादीनामभिमत इति मन्यते।।31।।

दायभाग प्रकरण में पुत्रादि (पुत्रपौत्रप्रपौत्र) के उपकारक होने से उनका ही अधिक उल्लेख किया गया है यथा कहा गया है कि पुत्र पितरों को ऋण से मुक्त कराता है इसलिए वह सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकारी है। इस प्रकार ऋण रहित को धनाधिकारी बताया गया है। मनु का कथन है कि–'दौहित्र भी पौत्र के समान नाना का परलोक में उद्धार करता है' इस प्रकार उद्धार करने से धन की प्राप्ति होती है–ऐसा कहकर पुत्रादि तीनों उद्धार करते हैं इनसे अन्य के अभाव में त्रयाणमुदकम् इत्यादि को अनुपकारक मानने से अंशरहित बतलाकर प्रतिसम्बन्धियों का अधिकार होने से कल्पना गौरव हो जाता है। अत: मनु इत्यादि के वचनों से उपकारी व्यक्ति का ही धन में अधिकार न्यायसंगत है।

Manu and the rest assent to this doctrine.

This doctrine, (that inheritance is deducible from reasoning and founded on services rendered), must be admitted to have the assent of Manu and other sages : for there can be no other purpose of propounding, under the head of inheritance, the superior benefits derived from sons and the rest; and the exoneration of the father from debt is stated as a reason for the son's inheriting : ("By the eldest son a man is exonerated from debt to his ancestors; therefore that son is entitled to take the heritage" Sect. 1. See 32) redemption also is exhibited as a cause of succession to property : ("Even the son of a daughter delivers him in the next world like the son of a son") and there is no other reason for the

equal right of inheritance of three descendants, the son and the rest, besides their deliverance (of their ancestors); and the passage, "To three must libations of water be made etc, (See 7) would be unnecessary (if such were not the purpose); and the exclusion of persons impotent, degraded, blind from their birth and so forth, is an opposite rule as founded upon their rendering no services; (but not so as grounded on the mere letter of the law): and it is troublesome to establish an assumed precept for debarring those before whom an heir intervenes; (as must be done upon any other supposition) : and it is reasonable, that the wealth, which a man has acquired, should be made beneficial to him by appropriat it according to the degree in which services are rendered to him.

इति निरवद्यविद्याधीतेन द्योतितोऽयमर्थो विद्वद्-भिरादरणीय:॥32॥

इस प्रकार विद्योत के मत को सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है।

It is maintained by Udyota.

This doctrine, as illustrated by the irreproachable Udyota, should be respected by the wise.

अथात्रापरितोषो विदुषाम् वाचनिक एवायमर्थ:। तथापि तथोक्तं एव वचनयोरर्थो ग्राह्य इत्यस्तु किं विस्तरेण॥33॥

विद्वान इन वचनों से संतुष्ट नहीं है फिर भी उत्तराधिकार के क्रम में जो चर्चा की गई है उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। अधिक विस्तार की क्या आवश्यकता है।

And is consistent with the letter of the law.

If the learned be yet unsatisfied (with relying on reason for the ground of the law of inheritance), this doctrine may be derived from express passages of law. Still the same interpretation of both texts (of Manu, See 7 and 17) must be assumed. But let this be. What need is there of expatiating?

ब्राह्मणधनवर्जं राजा गृह्णीयात्।

तदाह मनुः–

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः।
इतरेषान्तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः।।

(मनु. 9-189)

सर्वशब्देन ब्राह्मणपर्यन्तस्योपादानम्।।34।।

ब्राह्मण के धन को छोड़कर राजा प्राप्त करे। यथा–मनु का वचन है–ब्राह्मण के धन को राजा कभी प्राप्त नहीं करता, केवल दूसरे (क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) वर्णों के धन को ब्राह्मण पर्यन्त अभाव होने पर राजा ग्रहण करता है। यह शास्त्र की मर्यादा है। सर्व शब्द से ब्राह्मण पर्यन्त का उल्लेख है।

The king takes the esheat on failure of heiars, excepting the wealth of a priest. So Manu declares.

Excepting the property of a Brāhmaṇa, let the king take the wealth (on failure of heirs), So Manu directs, "The property of a Brāhmaṇa shall never be taken by the king : this is a fixed law. But the wealth of the other classes, on failure of all (heirs), the king may take." By the term "all" is signified every heir including the Brāhmaṇa (See 26).

वानप्रस्थ-यति-ब्रह्मचारिणां धनं धर्म-भ्रातृ-सच्छिष्याचार्याः गृह्णीयु, तदभावे एकतीर्थः एकाश्रमी गृह्णीयात्।

तदाह याज्ञवल्क्यः–

वानप्रस्थ-यति-ब्रह्मचारिणामृक्थभागिनः।
क्रमेणाचार्यसच्छिष्यधर्मभ्रात्रेकतीर्थिनः।।35।।

(याज्ञवल्क्य. 1-138)

वानप्रस्थ-यति-ब्रह्मचारि के धन को धर्मभ्राता, सत्छिष्य और आचार्य ग्रहण करते हैं। उसके अभाव में एकतीर्थी, एकाश्रमी ग्रहण करते हैं।

यथा याज्ञवल्क्य का वचन है—वानप्रस्थ, यति (संन्यासी) एवं ब्रह्मचारी के धन को क्रम से धर्म भाई, सत्शिष्य एवं आचार्य प्राप्त करते हैं। इन सबके अभाव में एकतीर्थी या एकाश्रमी धन ग्रहण करता है।

Special rule of succession in the instance of religious orders : conformably with a passage of Yājñavalkya.

The goods of a hermit, of an ascetic, and of a professed student, let the spiritual brother, the virtuous pupil, and the holy preceptor, take. On failure of these, the associate in holiness, or person belonging to the same order, shall inherit. Thus Yājñavalkya says, "The heirs of a hermit, of an ascetic and of a professed student, are, in their order, the preceptor, the virtuous pupil, and the spiritual brother and associate in holiness."

प्रतिलोमक्रमेण यथासम्भवं धनं ज्ञेयम्। ब्रह्मचारी च नैष्ठिकोऽभिमतः, पित्रादिपरित्यागेन यावज्जीवमाचार्यकुलनिवासपरिचर्यानिष्ठायाः तेन कृतत्वात्, उपकुर्वाणस्य तु धनं पित्रादिभिरेव ग्राह्यम्॥36॥

याज्ञवल्क्य के श्लोक की द्वितीय पंक्ति में उत्तराधिकारियों की चर्चा प्रतिलोम क्रम से स्वीकार की गई है। ब्रह्मचारी से अभिप्राय नैष्ठिक ब्रह्मचारी है क्योंकि वह माता-पिता को छोड़कर जीवन्त पर्यन्त आचार्य के कुल में रहता है एवं व्रत का पालन करता है। उपकुर्वाण ब्रह्मचारी के धन को माता-पिता आदि प्राप्त करते हैं।

Exposition of the text.

Goods, such as they may happen to possess, should be delivered in the inverse order of this enumeration. The student must be understood to be a professed one : for, abandoning his father and relations, he makes a vow of service and of dwelling for life in his preceptor's family. But the property of a temporary student would be inherited by his father and other relations.

इति अपुत्रधनविभागः।।37।।

इस प्रकार पुत्रहीन व्यक्ति के उत्तराधिकार का विभाग कहा।

37. Conclusion.

Thus has the distribution of the wealth of one, who leaves no male issue, been explained.

।इति पारिभद्रीयस्यमहामहोपाध्यायस्य-
श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागेऽपुत्रधनाधिकारो
नामैकादशाध्याये षष्ठः परिच्छेदसमाप्तः।
एकादशाध्यायाश्च समाप्तः।।

त्रयोदशोऽध्यायः

अथ विभागकाले निह्नतस्य पश्चादवगतस्य विभागः

तत्र मनुः–

'ऋणे धने च सर्वस्मिन् प्रविभक्तं यथाविधि।
पश्चाद्दृश्येत यत्किञ्चित् तत् सर्वं समतां नयेत्॥1॥
(मनु 9–218)

विभाजन के समय छुपे हुए धन का बाद में ज्ञात हो जाने पर उसका विभाजन किस प्रकार से होता है इस संबन्ध में मनु ने कहा है कि--पिता के धन तथा ऋण का विधिपूर्वक विभाजन करने के बाद यदि पिता का कोई धन या उसके द्वारा लिया हुआ ऋण शेष रह जाए तो उसको सब भाई बराबर-बराबर बाँट ले।

If effects have been concealed and be discovered, they are subject to distribution, as ordained by Manu.

The distribution of that, which was concealed at the time of partition and is afterwards discovered, shall be now taught. On that subject Manu says, "When all the debts and wealth have been justly distributed according to law, anything, which may be afterwards discovered, shall be subject to an equal distribution."

पूर्वं यथा यस्य विभागकल्पना कृता, तत्समानैव कार्या, न पुनरपहर्तरपहर्तृतया अल्पभागो दातव्यो न दातव्य एव वेति। समतां नयेदित्यस्यार्थः, न पुनस्तत्र द्रव्ये सर्वेषां समभागार्थं वचनमिदम्, विंशोद्धारादिबाधे हेत्वभावात् ब्राह्मणक्षत्रिया-दीनाञ्च समभागापत्तेः॥2॥

इति ज्येष्ठांशमात्रं निषेधति, न तु भागसाम्यमेव बोधयति॥2॥

सम विभाजन सवर्ण संसृष्ट भाइयों के लिए कहा है। यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय भाई संसृष्ट हो जाएं तो उनकी भागव्यवस्था पूर्व में कहे हुए भाग के अनुसार होती है। पूर्व के कहे हुए वचन में ज्येष्ठांश के निषेध के लिए ही सम वचन का प्रयोग होता है। अतएव बृहस्पति ने कहा है कि–

विभक्त किए हुए भाई यदि प्रीति से पुन: एक साथ रहते हों तो पुन: विभाग में ज्येष्ठांश नहीं होता। इससे ज्येष्ठांश का निषेध ज्ञात होता है किन्तु सम भाग का ज्ञान नहीं होता है।

That is, the superior allotment in right of primogeniture is forbidden. A passage of Bṛhaspati confirms this construction.

The shares must be equal. This supposes re-union of brothers belonging to the same tribe. But, in the case of association of brothers appertaining, the one to the sacerdotal and the other to the military tribe, the rule of distribution must be understood to conform with the original allotment of shares : for the text is intended only to forbid an elder brother's superior portion as before allotted to him. Accordingly (since unequal partition, regulated, by difference of tribes, is not denied); Bṛhaspati, saying "Among brethern, who, being once separated, again live together through mutual affection, there is no right of primogeniture when partition is again made." prohibits only the assignment of a superior share to the eldest, but does not ordain equality of allotmens.

संसर्गिणश्च बृहस्पत्युक्ता:–

'विभक्तो य: पुन: पित्रा भ्रात्रा चैकत्र संस्थित:।
पितृव्येणात्र वा प्रीत्या स तु संसृष्ट उच्यते॥ इति॥3॥

बृहस्पति ने संसर्गी का लक्षण किया है कि–जो पिता, भाई एवं चाचा से विभक्त होकर पुन: प्रीति से एक साथ रहने लगे तो वह संसृष्ट

कहलाता है।

Definition of "re-united co-parcener," in a passage of Bṛhaspati.

Re-united co-parceners are described by Bṛhaspati : "He, who, being once separated , dwells again, through affection, with his father, brother or paternal uncle, is termed re-united."

परिगणितव्यतिरिक्तेषु संसर्गकृतो विशेषो नादरणीयः। परिगणनानर्थक्यात्।।4।।

गणना से निकाले हुए व्यक्तियों को विशेष रूप से संसृष्टियों (पिता-पुत्र-चाचा-भाई-भतीजे) में सम्मिलित नहीं करना चाहिए अन्यथा गणना में जो व्यक्ति आते हैं वे अनर्थक हो जायेंगे।

It is restricted to certain relations : father and son; brothers, uncle and nephew.

A special association among persons other than the relations here enumerated, is not to be acknowledged as a re-union of puceners : for the enumeration would be unmeaning.

विशेषा भ्रात्राधिकारनिरूपणप्रकरणोक्ता अनुसन्धेयाः।।5।।

भ्राता अधिकार नामक प्रकरण में ही बताए गए विशेष नियमों को ग्रहण करना चाहिए।

Other rules hold good in this as in any partition among brothers.

Other particular rules, which have been set forth under the head of partition among brothers, must be observed in this case also.

इति संसृष्टविभागः।।6।।

यह संसृष्टियों का विभाग है।

Conclusion.

Thus has the right of a re-united parcener been explained.

इति पारिभद्रीयस्य महामहोपाध्यायश्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे संसृष्टविभागो नाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः।

त्रयोदशोऽध्याय:

अथ विभागकाले निह्नतस्य पश्चादवगतस्य विभाग:

तत्र मनु:–

'ऋणे धने च सर्वस्मिन् प्रविभक्तं यथाविधि।
पश्चाद्दृश्येत यत्किञ्चित् तत् सर्वं समतां नयेत्।।1।।

(मनु 9-218)

विभाजन के समय छुपे हुए धन का बाद में ज्ञात हो जाने पर उसका विभाजन किस प्रकार से होता है इस संबन्ध में मनु ने कहा है कि–पिता के धन तथा ऋण का विधिपूर्वक विभाजन करने के बाद यदि पिता का कोई धन या उसके द्वारा लिया हुआ ऋण शेष रह जाए तो उसको सब भाई बराबर-बराबर बाँट ले।

If effects have been concealed and be discovered, they are subject to distribution, as ordained by Manu.

The distribution of that, which was concealed at the time of partition and is afterwards discovered, shall be now taught. On that subject Manu says, "When all the debts and wealth have been justly distributed according to law, anything, which may be afterwards discovered, shall be subject to an equal distribution."

पूर्व यथा यस्य विभागकल्पना कृता, तत्समानैव कार्या, न पुनरपहर्तरपहर्तृतया अल्पभागो दातव्यो न दातव्य एव वेति। समतां नयेदित्यस्यार्थ:, न पुनस्तत्र द्रव्ये सर्वेषां समभागार्थं वचनमिदम्, विंशोद्धारादिबाधे हेत्वभावात् ब्राह्मणक्षत्रिया-दीनाञ्च समभागापत्ते:।।2।।

पूर्व विभाजन के समान ही उस दृष्ट धन का विभाजन होता है और जो व्यक्ति सम्पत्ति का अपहरण करता है उसे भी अन्य दायादों के समान अंश मिलता है। उसको निरंशक नहीं किया जाता और न ही उसे अल्प अंश दिया जाता है। यहाँ 'सम' विभाजन से अभिप्राय सब दायादों में सम भाग से नहीं है अपितु प्रथम विभाजन के समान ही विभाजन के पश्चात् प्राप्त द्रव्य में से ज्येष्ठ पुत्र को विशोंद्धार भी मिलता है क्योंकि यदि ऐसा स्वीकार नहीं करेंगे तो ब्राह्मण क्षत्रियादि के लिए जो चार-तीन आदि भाग कहे गए हैं उनका उल्लंघन हो जाएगा।

The second distribution is made on the same principles with the first.

The division of it should be precisely similar to that which had been previously made; and a less share is not to be given, nor no share, to the person who concealed the property, as a punishment of his concealment. Such is the meaning of the sentence "shall be subject to an equal distribution." Nor

nt of equal shares
re is no reason
e eldest, and so
onging, one to
ne rest to other

ते।
स्थितिः'॥3॥

भाइयों द्वारा ... किया गया द्रव्य यदि विभाजन के पश्चात् दिखलाई दे तो उस दृष्टधन का भाइयों में पुनः सम विभाजन होता है। यही शास्त्र की मर्यादा है।

A passage of Yājñavalkya confirms this.

Thus Yājñavalkya says, "Effects, which have been withheld by one co-heir from another, and which are discovered

after the separation, let them again divide in equal shares : this is settled rule."

तथा कात्यायनः–

प्रच्छादितन्तु यद् येन पुनरागत्य तत् समम्।
भजेरन् भ्रातृभिः सार्द्धमभावेऽपि हि तत्सुताः॥
अन्योन्यापहृतं द्रव्यं दुर्विभक्तञ्च युद्भवेत्।
पश्चात् प्राप्तं विभज्येत समभागेन तद भृगुः॥4॥

कात्यायन के मतानुसार–

छिपा हुआ द्रव्य यदि कालान्तर में प्रकाश में आता है तो उस धन का भाइयों में सम विभाजन होता है चाहे उस समय पिता की मृत्यु हो चुकी हो। कात्यायन ने भृगु के मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि परस्पर अपहृत द्रव्य, अन्याय पूर्वक विभाजित द्रव्य या बाद में प्राप्त हुआ द्रव्य इन सबका सम विभाजन होता है।

Kātyāyana directs what has beeb ill-distributed, to be divided anew.

So Kātyāyana declares (by the close of the following text), that a divison shall be again made of that which has been distributed in an undue manner. "What has been concealed by one of the co-heirs, and is afterwards discovered, let the sons, if the father be deceased, divide equally with their brethren. Effects, which are withheld by them from each other and property which has been ill distributed, being subsequently discovered, let them divide in equal shares. So Bhrgu has ordained."

असम्यक् विभक्तस्य पुनर्विभागनिरूपणं, दर्शयति। सकृदंशो निपततीति (याज्ञ. 2-127) तु सम्यग्विभाग-विषयम्॥5॥

यदि सम्पत्ति का सम्यक् विभाजन नहीं होता तो उस धन का पुनः विभाजन किया जाता है। एक बार विभाजन होता है–याज्ञवल्क्य के इस श्लोक से सम्यक् विभाजन का संकेत मिलता है।

But a fair distribution conclusive.

But the maxim, "Once is the partition of inheritance maed," relates to the case of a fair distribution.

'पश्चात् प्राप्तमि'ति न पुनः पूर्वविभक्तमपि विभजनीयमि-त्यर्थः।।6।।

'पश्चात्–प्राप्तम्' से यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिए कि पूर्व विभाजन के समान विभाजन करना चाहिए।

And what has been already justly divided, is not distributed afresh.

"Being subsequently discovered". The meaning is, that what has been already divided, is not to be again distributed.

तथा कात्यायनः–

बन्धूनापहृतं द्रव्यं बलान्नैव प्रदापयेत्।
बन्धूनामविभक्तानां भोगं नैव प्रदापयेत्।।

शमादिना दाप्यः, न बलात्। अविभक्तेन तु तदधिकं भुक्तम्, तदसौ न दाप्यः।।7।।

कात्यायन ने इस प्रसंग में कहा है कि– अविभक्तावस्था में यदि कोई दायाद द्रव्य का अपहरण कर लेता है तो उस दायाद से बलपूर्वक सम्पत्ति नहीं लेनी चाहिए। यदि उसने अधिक उपभोग कर लिया है तो उससे सम्पत्ति वापिस नहीं लेनी चाहिए।

सामादि उपायों से सम्पत्ति प्राप्त करनी चाहिए, बलपूर्वक नहीं। इसी प्रकार अविभक्त दायाद के द्वारा यदि उस द्रव्य का अधिक उपभोग कर लिया है तो उससे वापिस नहीं लेना चाहिए।

Kātyāyana provides, that violence shall not be used to compel restitution of effects withheld; nor shall the co-heir male good what he has consumed.

So Kātyāyana says, "Effects, which have been taken by a Kinsman, he shall not be compelled by violence to restore : and the consumption of unseparated kinsmen, they shall not be required to make good." By gentle means and not by

violence, a kinsman shall be made to restore the effects taken by him. But what has been consumed by a co-heir during co-parcenery over and above his due proportion, he shall not be required to make good.

अत्र च साधारणधने परधनमप्यस्तीति तन्निह्नवे स्तेन एव भवति किल्बिषी चेति ये मन्यन्ते, तान् प्रत्युच्यतो य एव हि परस्येदमिति विशेषं जानानः परस्वे स्वत्वहेतमन्तरेणैव स्वत्वमारोपयति, स स्तेन इति लोप्रसिद्धोऽर्थः न च चात्रेदं परकीयं इदं वा ममेति विवेक्तुं शक्नोति द्रव्यस्याविभक्तत्वात्। यथा यदेव हि ममेदमिति विशेषं जानानः परस्वत्वापत्तये स्वामी त्यजति, परश्च विशेषेणेदं ममेति स्वत्वं प्रत्येति। तत्रैव दाननिष्पत्तिः। न च साधारणधने तथा सम्भवतीति, साधारणधनमदेयमुक्तम्।

तथा स्तेयमपि नैतन्मम धनं परस्येदमिति जानत एव भवतीति न साधारणधनापहारे स्तेयनिष्पत्तिः॥8॥

साधारण सम्पत्ति में से जो दूसरे के द्रव्य का अपहरण करता है वह स्तेन कहलाता है और पाप का भागी बनता है ऐसा जो मानते हैं उनको जीमूतवाहन कहते हैं कि–जो यह जानते हुए कि–यह दूसरे का धन है (मेरा नहीं है) उस द्रव्य में स्वत्व के हेतु के बिना ही स्व स्वत्व का आरोप करता है (अर्थात् पर द्रव्य का अपहरण करता है) वह स्तेन कहलाता है यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। परन्तु अविभक्त धन में ऐसी स्थिति नहीं है क्योंकि वहाँ पर व्यक्ति स्व एवं पर का विवेक करने में असमर्थ होता है। दान की निष्पत्ति वहीं होती है जब दाता जानते हुए कि 'यह मेरा द्रव्य है' दूसरे के स्वत्व की उत्पत्ति के लिए 'स्व' स्वत्व का त्याग करता है और प्रतिग्रहीता स्वीकार करता है कि 'यह मेरा धन है।' परन्तु साधारण धन में ऐसा संभव नहीं है। साधारण धन अदेय माना जाता है।

स्तेय में भी– साधारण धन का अपहार करने वाला स्तेय नहीं कहलाता क्योंकि उसे 'मम धन', परस्यदेम्' का ज्ञान नहीं होता है।

An argument against the doctrine, that embezzlement of common property is a theft.

In answer to those authors, who contend, that, in this case, as there is the property of another in the common effects, he who exbezzles them, is a thief and of course a sinner; the following argument is propounded : since the received import of the term conveys, that a thief is he, who usurps a right in the property of another, without a title (by gift, sale, or other act of the owner), being clearly conscious, that the thing belongs to another; but in the present case, the person cannot distinguish 'this is mine and that is another's,' for the goods are undivided; therefore, as donation is complete then only, when the owner, conscious that the thing is his, relinquishes it with a view to its becoming the property of another person, and that other person is sensible of his property, apprehending 'this is become mine;' but that cannot occur in respect to common goods and therefore common property is pronounced unfit to be given; so theft likewise is complete by the consciousness that 'this is not mine, but another's : therefore the crime of theft is not imputable to the act of embezzling what is common.

अपहारपदन्तु सङ्गोपनाभिप्रायम्। न हि सङ्गोपनं स्तेयमुक्तं असङ्गुप्तग्रहणेऽपि स्तेयपदप्रयोगप्रदर्शनात्।

तथात्र कात्यायनः–

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा निशायामथ वा दिवा।
तत् परद्रव्यहरणं स्तेयं तत् परिकीर्तितम्॥

अतएव राज्ञा बलात् न दाप्य इति पूर्वमुक्तम्॥ चौरत्वे तु। 'चौरं प्रदाप्य अपहृतं घातयेद्विविधैरि'ति (याज्ञ. 2-268) वचनादास्ताम् सामादिना दापनं घातनमपि कार्यम्॥9॥

अपहार पद से अभिप्राय–सङ्गोपन अर्थात् गुप्त रखना है। सङ्गोपन (गुप्त रखना) स्तेय नहीं कहलाता है। असङ्गुप्त अर्थात् अगुप्त रखने के अर्थ में स्तेय पद का प्रयोग दिखाई देता है।

कात्यायन के मतानुसार– दूसरे के द्रव्य का प्रच्छन्न रूप में या प्रकाश रूप में या दिन अथवा रात्रि में अपहरण करना स्तेय कहलाता है।

पूर्व में भी कहा जा चुका है कि राजा द्वारा बलपूर्वक नहीं दिलवाना चाहिए।

याज्ञवल्क्य के वचन के अनुसार चोर से चोरी की गई वस्तु दिलाकर अनेक प्रकार के वध (शारीरिक दण्ड) द्वारा दण्डित करे। सामादि उपायों से दिलवाकर उसका वध करे (अथवा शारीरिक दण्ड से दण्डित करो)।

Embezzlement is not theft.

But the term embezzlement or withholding (apahāra) signifies concealment; and concealment is not excactly theft; for the word theft is in use for an unconcealed taking. Thus Kātyāyana says, "The taking or another's goods, whether privately or openly, by night or by day, is termed theft." Accordingly (since the concealment of common property is not theft), it has been before declared, tha the withholder of the goods shall not be compelled by violence to restore them. (See 7). But, if it were a theft (in him who withholds common property) , then, under the text which directs, that "Having compelled the thief to restore the stolen goods, the king should smite him by various modes of condign punishment" : admitting even that he should be made to restore the goods by gentle means, still the smiting of him would be indispensable.

एतच्च मुनिभिरपहर्तुरपि विभागदानप्रतिपादनादुन्नीयते॥10॥

यहाँ पर मुनियों द्वारा (आचार्यों द्वारा) अपहर्ता को भागीदार कहा गया है अर्थात् विभाजन करने पर पुनः उसे भी अंश देने का विधान बताया गया है।

Accordingly the person embezzling has nevertheless his regular share.

This two (namely, that such is the definition of theft), appears from the sages authorising the allotment of a share

even to the withholder of common property.

तदुक्तं विश्वरूपेणापि अतः तस्करदोषो नास्तीति वचनारम्भ- सामर्थ्यात्, स्तेनधात्वर्थानिष्पत्तेरित्यभिप्रायः॥11॥

विश्वरूप ने भी यही कहा है कि– स्तेन धातु की निष्पत्ति का यही अभिप्राय है कि अपहरणकर्त्ता को तस्कर दोष नहीं लगता है।

Viśvarūpa opinion is consonant to this.

Accordingly it is observed by Viśvarūpa, 'The crime of theft is not here imputable; for the recital of the text obviates that supposition.' His meaning is, because the sense of the verb to steal is not applicable to the case.

अतएव प्रायश्चित्तकाण्डे जितेन्द्रियेण भणितं यदि स्वर्णमेव परकीयं लोहादिबुद्ध्या गृह्णाति, असुवर्णं सुवर्णबुद्ध्या आत्मीय- सदृशं परकीयमेव आत्मीयबुद्ध्या गृह्णाति सर्वत्र नापहारनिष्पत्तिः। सर्वत्र यथावस्तु परकीयबुद्धेरभावात्, तद्वदत्रापि समानम्। विभागात् पूर्व तद्वदङ्गयैकदेशविशेषगतस्वत्वस्यापरिज्ञानात्। अतो नात्र स्तेयनिष्पत्तिः॥12॥

जितेन्द्रिय के द्वारा प्रायश्चित्तकाण्ड में कहा गया है कि यदि कोई सादृश्य से दूसरे के सुवर्ण को लौह की बुद्धि से और लौह को सुवर्ण की बुद्धि से ग्रहण करता है अर्थात् सादृश्य से किसी दूसरे की वस्तु को आत्मबुद्धि से ग्रहण करता है तो वहाँ पर अपहार की निष्पत्ति नहीं होती है अर्थात् उसे स्तेय नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार संयुक्त सम्पत्ति में पर एवं स्व का भेद न होने से यदि कोई व्यक्ति वस्तु का अपहरण करता है तो उसे चोर नहीं कहा जा सकता क्योंकि विभाजन से पूर्व सबका संयुक्त द्रव्य में स्वामित्व होता है, किसी को अपने निश्चित अंश का ज्ञान नहीं होता।

And so is Jitendriya's.

Hence also it is remarked by Jitendriya, in the chapter on expiation and penance, that 'if a man seize gold appertaining to another by mistake for iron or other matter (of little value); or something which is not gold, mistaking if for

this substance; or a thing resembling some chattel of his own but belonging to another person, by mistake for his own; in all these cases there is not a complete seizure (or wilful taking of the gold) : for, in these several instance, there is not a knowledgeof its belonging to another person, being such as the thing in fact is.' In like manner. in the present instance also, (viz., in that of common property), the same hold good : for, previous to partition, a discriminative property, referrible to particular persons relatively to particular things, is not perceived. Consequently there is not in this case a complete theft.

सत्यपि च स्तेयेऽपहर्तुरपि विभागवचनदर्शनात् न स्तेयदोषः, अन्यथा सुवर्णादिनिह्नवे पतितस्य भागो न स्यात्॥13॥

यह सत्य है कि स्तेय में अपहरणकर्त्ता को भी भाग की प्राप्ति होती है इससे स्तेय दोष नहीं माना जाता है। अन्यथा सुवर्णादि का अपहरण करने पर पतित को भाग नहीं मिलता।

Admitting it to be theft, the guilt is not incurred.

Or, admitting that it is a theft, the guilt of robberry is not incurred : for the text allows a share even to the person who exbezzles the property. Else, in the case of embezzling gold or other valuable effects, the offender, being degraded from his tribe. would have not allotment.

अथ पातकहेतुसुवर्णापहारेऽपि स्तेनस्य भागः इति विशेषवचनाभावात् द्रव्यान्तरस्तेयविषयो भागविधिर्वर्ण्यते, एवं तर्हि सुवर्णादिस्तेयनिषेध एव किमिति असाधारणपरकीयमात्रद्रव्यगोचरो न व्यवस्थाप्यते, तथापि किं विनिगमनाप्रमाणमिति चेत्।

उच्यते। परद्रव्यहरणं स्तेयमिति परशब्दात् आत्मीयत्वव्यवच्छेदेनैव परकीयत्वस्यावगमात् साधारणासाधारणयोश्चासाधारणस्यैव शीघ्रप्रतीतेः। यथा 'इष्टिपूर्वकमेवादः पौर्णमासं हविरि' ति अग्नीषोमीयपुरोडाशस्यैवोत्कर्षः, नोपांशुयाजी-

याज्यस्य, अग्नीषोमीयानग्नीषोमीयस्य साधारणत्वात्॥14॥

पातक के हेतु सुवर्ण के अपहार में भी स्तेय के लिए भाग प्राप्ति का विधान है– इस विशेष वचन का अभाव होने से यदि यह कहा जाए कि जो सुवर्ण के अतिरिक्त अन्य द्रव्य का अपहरण करता है उसी के लिए यह भाग विधि कही गई। अतएव जो दायाद केवल असाधारण द्रव्य अर्थात् पर द्रव्य का का अपहरण करता है उसी के लिए यह विधि है लेकिन किस प्रमाण के आधार पर ऐसी विधि स्वीकार की जाए। कहा जाता है कि– 'पर द्रव्यहरणं स्तेयम्' यहाँ 'पर' शब्द निजी धन के अपहरण का निराकरण करके दूसरे के द्रव्य के अपहरण करने का बोध कराता है। ऐसा होने से साधारण धन और असाधारण धन दोनों के होने पर साधारण धन की शीघ्र प्रतीति हो जाती है। यथा– 'इष्टिपूर्वकमेवाद पौर्णमासं हविरिति'–यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि पौर्णमास भाग में किस द्रव्य की आहुति दी जाए आज्य की या पुरोडाश की? पौर्णमास याग अग्नीषोमीय होने से पुरोडाश का उत्कर्ष है, उपांशु याग के समान आज्य का नहीं, क्योंकि अग्निसोम तथा अनग्नीसोम दोनों में आज्य ाधारण है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि साधारण और असाधारण असाधारण का शीघ्र ज्ञान हो जाता है।

objection answered.

If it be alleged, that, since there is no text expressly ꞏhorising the allotment of a share to the thief who has nbezzled gold to an amount sufficient to cause his degra- ꞏlation from his tribe, the rule for the allotment of a share is presumed to be applicable to the case of theft of other effects : but why may not the law, which forbids the stealing of gold or the lik be the rather considered as relating only to goods appertaining to another, and not common? Still, however, there is no proof or authority on which to ground the selection (of one of these restrictions in preference to the other). The answer to this alleged objection is as follows : in the legal definition, "the taking of another's goods is theft," "another's signifies appertaining to a different person to the utter exclusion of any right of his own; for. of two sorts of property, common and several, the notion of several

property is not readily presented. Therefore the proposition is similar to that which provides for the previous performance of a sacrifice (preparatory to the sacrifice with the acid asclepias), where an oblation, such as is presented at the full of the moon, intends particularly the offering of a cake of ground rice, as used at the Agnīṣoma (one of the ceremonies performed at that period). and not the oblation of liquid butter, as practised at the Upāṅśu-yāga, for this is common to the Agnīṣoma and to sacrifices bearing other denominations.

अतएव लोकेऽपि नैवंविधविषये क्वचिद्विनिगमनादिकं दृश्यते॥15॥

इस प्रकार लोक में भी देखते हैं कि साधारण धन का अपहार करने से दोष नहीं लगता।

Bāloka's co concurrence inferred.

Accordingly, since it is not theft), there is no censure any where expressed in Bāloka on such a subject (viz., in regard to the taking of common properyty).

अतो यद् बालकवचनं, यथा मुद्गापचारे माषप्रतिनिधौ मुद्गानां माषाणाञ्च यज्ञसम्बन्धे 'अयज्ञिया वै माषाः इति माषाः निषिद्धाः, तथा आत्मीयानात्मीयहरणेऽपि अनात्मीयापहारो निषिद्धः तद्बालकवचनमेव। पूर्वव्याहृतस्य स्तेयपदार्थस्यैवाभावात्। माषगतमुद्गावयवोपादानेऽपि माषाणां यज्ञसम्बन्धो नास्तीति न शक्यते वक्तुम्, माषामिश्रितानामेव यज्ञसम्बन्धप्रतीतेः॥16॥

अतएव बालक के मतानुसार यदि यज्ञ में मुद्ग का चरु नष्ट हो जाए तो उसके प्रतिनिधि स्वरूप माष का चरु बनाना चाहिए। परन्तु दूसरी ओर निषेध वचन मिलता है–'अयज्ञिया वै माषाः' अर्थात् यज्ञ में माष का निषेध किया गया है। इसी प्रकार आत्मीय और अनात्मीय द्रव्य में जो अनात्मीय द्रव्य का अपहरण करता है उसका निषेध है। जीमूतवाहन के अनुसार यह बालक वचन है। पूर्व में कहे गए साधारण

धन के अपहरण करने पर स्तेय होता है–इस वचन का अभाव है। यज्ञ में माष का प्रयोग नहीं होता है। ऐसा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि मुद्ग का चरु बनाते समय यदि कुछ माष के दाने मिश्रित हो जाते हैं तो वह याग सम्पन्न माना जाता है और माषमिश्रित चरु से यज्ञ की प्रतीति होती है।

A remark confused.

It is a remark o Bāla, that, as in the instance of green and of black kidney beans in relation to sacrifices, where it might be supposed, that black kidney beans would be a fit substitute when green kidney beans are not procurarble, but the use of such beans is prohibited by an express passage of Scripture which declares that black kidney beans are unfit to be employed at sacrifices; so, notwithstanding the taking of that which is, and that which is not, his own, (being common), is permitted, still the taking of what exclusively is not his own is forbidden : this is puerile; for the definition of theft, as above explained, is not applicable (to the case of embezzlement of common property). It cannot be affirmed, that black kidney beans are unemployed in sacrifices; although ground particles of green beans, inter-mixed with black beans, be employed : for, in such case, mixed black beans appear to be used at the sacrifice.

इत्यन्योन्यापहृतविभागः।।17।।

यह छिपी हुई (अपहृत) सम्पत्ति का विभाजन हुआ।

Conclusion.

Thus has partition of effect, concealed by co-perceners from each other, been discussed.

इति पारिभद्रीयस्य महामहोपाध्यायश्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे अन्योन्यापहृतविभागो नाम त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः।

चतुर्दशोऽध्यायः

अथ वृत्तविभागसन्देहनिर्णयः

तत्र नारदः–

'विभागधर्मसन्देहे दायादानां विनिर्णयः।
ज्ञातिभिर्भागलेख्येन पृथक्कार्यप्रवर्तनात्'।।1।।

(नारद 13.35)

विभाग में सन्देह होने पर उसका निर्णय

इस प्रसंग में नारद का मत है कि–दायादों में विभाजन का संशय होने पर ज्ञातियों द्वारा, लेख प्रमाण तथा पृथक् कार्यों से विभाग का निर्णय होता है।

Mode of ascertaining the fact or partition, stated by Nārada.

The determination of a doubt, regarding the fact of a partition having been made, is next explained. On that subject Nārada says, "If a question arise among co-heirs in regard to the fact of partition, it must be ascertained by the evidence of kinsmen, by the record of the distribution, or by the separate transaction of affairs."

ज्ञातीनां कीर्तनं तेषु सत्सु नान्यसाक्षिग्रहणमित्येतदर्थम्। अतएव याज्ञवल्क्यः–

'विभागनिह्नवे ज्ञातिबन्धुसाक्ष्यभिलेखितैः।
विभागभावना ज्ञेया गृहक्षेत्रैश्च यौतकैः।।2।।

(याज्ञ. 2-150)

ज्ञातियों के उपस्थित रहने पर अन्य साक्षियों की आवश्यकता नहीं होती। याज्ञवल्क्य के मतानुसार विभाजन के सम्बन्ध में सन्देह होने पर ज्ञाति (पितृ-सम्बन्धी) बन्धु, (मातृ सम्बन्धी) साक्षियों अभिलेखो, पृथक् हुई भूमियों और घरों से विभाग का निर्णय होता है।

Exposition of his text. A similar passage of Yājñavalkya.

The mention of kinsmen is intended to show, that, if such be forthcoming, other persons should not be made witnesses. Accordingly (since a recourse to other witnesses is forbidden when kinsmen are forthcoming), Yājñavalkya says, "When partition is denied, the fact of it may be ascertained by the evidence of kinsmen, relatives and witnesses and by written proof; or by separate possession of house or field."

प्रथमं ज्ञातयः सपिण्डाः साक्षिणः। तदभावे बन्धुपदोपनीताः सम्बन्धिनः, तदभावे उदासीना अपि साक्षिणः तुल्यवद्भावे साक्षिपदेनैवोपात्तत्वात् ज्ञातिबन्धुपदानर्थकतापत्तेः।।3।।

सर्वप्रथम जाति सपिण्ड साक्षी होते हैं उसके अभाव में बन्धु, बन्धु के अभाव में उदासीन (संन्यासी) साक्षी होते हैं।

Order in which the various proofs are admissible.

In the first place "kinsmen or persons allied by community of funeral oblations, are witnesses. On failure of them, relatives, as signified by the term bandhu. In default of these, strangers may be witnesses. For, if they were equally admissible, the specific mention of kinsmen" and "relatives" would be unmeaning; since they are comprehended under the term "witnesses."

अतएव शंखः–

'गोत्रभागविभागेऽर्थे सन्देहे समुपस्थिते।
गोत्रजैश्चापरिज्ञाते कुलं साक्षित्वमर्हति'।।

गोत्रजैः-ज्ञातिभिरित्यर्थः। तैरज्ञाते कुलम्-बन्धुः साक्षित्वमर्हति, न पुनरसम्बन्धी, तेनाप्यपरिज्ञाते अन्यः साक्षीत्यर्थः।।4।।

शंख का मत है कि गोत्रजों में विभाजन के विषय में सन्देह होने पर जातियों के द्वारा विभाग का निर्णय होता है इनका अभाव होने पर बन्धु साक्षी होते हैं। यहाँ पर गौत्रजैः का अर्थ जाति है और कुल का अर्थ बन्धु है। कोई असम्बन्धी साक्षी नहीं होते। इनके द्वारा भी यदि विभाग का निर्णय न हो तो अन्य साक्षी होते हैं।

A passage of Śaṅkha expounded.

Hence also Śaṅkha says, "Should a doubt arise on the subject of a partition of the wealth of kindered, the family may give evidence, if the matter be not known to the relations sprung from the same race" "relations sprung from the same race" are ' kinsmen'. If the matter be not known to them, "the family" or relatives (as the maternal uncles and the rest) may give evidence : but not a stranger (while a person of the family can bear testimony), But if these also be uninformed, any other person may be witness.

अतएव मुख्यभूताः ज्ञातय एव नारदेन निर्दिष्टाः। ज्ञातृभिरिति पाठोऽनाकारः।।5।।

नारद के द्वारा मुख्य साक्षी ज्ञाति ही माने गए हैं। 'ज्ञातृभिः' इस पाठ की उपलब्धि नहीं है।

The reading of Nārada's text confirmed.

Accordingly, kinsmen are stated by Nārada (See 1) as the chief evidence : and a different reading, Jñatibhiḥ persons acquainted with the matter (instead of Jñatibhiḥ, kinsmen'), is unfounded.

तथा लिखितेन वा निर्णयः। लिखितन्तु साक्षिभ्यो बलवदेवेत्युक्तम्।।6।।

यदि जाति आदि साक्षी न हो तो लिखित प्रमाण से विभाग का निर्णय होता है। मौखिक प्रमाण (साक्षियों से) से लिखित प्रमाण बलवान होता है।

Written evidence in this case come after oral evidence.

Next the proof is by written evidence : but written proof is (in general) superior to oral testimony : being so declared (by an express passage of law : "Testimony is better than presumption; and a writing is better than oral evidence").

तथा पृथक्कार्यप्रवर्तनादपि निर्णयः। यथोक्तम् नारदेन–

दानग्रहणपश्वन्नगृहक्षेत्रपरिग्रहाः।
विभक्तानां पृथक् ज्ञेयाः पाकधर्मागमव्ययाः॥
साक्षित्वं प्रतिभाव्यञ्च दानं ग्रहणमेव च।
विभक्ता भ्रातरः कुर्युर्नाविभक्ताः परस्परम्॥
तेषामेताः क्रिया लोके प्रवर्तन्ते स्वरिक्थतः॥
विभक्तानवगच्छेयुर्लेख्यमप्यन्तरेण तान्॥7॥

(नारद 13-38-39-40)

पृथक्-पृथक् रूप से किए जाने वाले कृत्यों से भी विभाग का निर्णय होता है यथा नारद ने कहा है कि विभाजित व्यक्ति ही एक दूसरे के साक्षी, प्रतिभू ऋणदाता हो सकते हैं, अविभक्त भाई नहीं। इसके अतिरिक्त ऋण का आदान-प्रदान, पशु, भोजन, गृह, क्षेत्र, भृत्य, पाक-क्रिया, धार्मिक-क्रिया, आय-व्यय आदि पृथक् रूप से रखना विभक्त होने का प्रमाण है। इस प्रकार की क्रियाएँ जो अपने धन से करते हैं उन्हें लिखित साक्षी के बिना ही विभक्त समझा जाता है।

Next presumptive proof is admitted; as directed by Nārada.

In the next place, the proof is by the circumstance of separate transaction of affairs (See 1) as it is stated by Nārada, "Gift and acceptance of gift, cattle, grain, house, land and attendants, must be considered as distinct among separated brethern; as also diet, religious duties, income and expenditure. Separated not unseparated, brethern, may reciprocally bear testimony become sureties, bestow gifts an accept presents. Those, by whom such matters are publicly transacted with their co-heirs, may be known to be separate even without written evidence."

तथा बृहस्पतिः–

साहसं स्थावरं न्यासः प्राग्विभागश्च रिक्थिनाम्।
अनुमानेन विज्ञेयं न स्यातां पत्र-साक्षिणौ॥
बलानुबन्धव्याघातहोढं साहसभावकम्।
स्वस्थभोगः स्थावरस्य विभागस्य पृथग्धनम्॥
पृथगायव्ययधनाः कुसीदञ्च परस्परम्।
वणिक्पथञ्च ये कुर्युर्विभक्तास्ते न संशयः॥8॥

बृहस्पति के मतानुसार– साहस, स्थावर, न्यास, (गिरवी रखना) रिक्थियों का पूर्व विभाग– इनके लिए लेख्य और साक्षि प्रमाण के न होने पर अनुमान से (मौखिक प्रमाण से) ही निर्णय हो जाता है। अपि च– बलपूर्वक बाँधना, प्रहार करना एवं लूटना ये साहस के परिचायक है। स्थावर का स्वस्थ भोग (अर्थात् स्वतन्त्र उपभोग) और पृथक् धन विभाग का कारण हैं। इसी तरह धन का पृथक् आय-व्यय, पारस्परिक ऋण-ब्याज एवं व्यापार विभक्त भाइयों में ही होता है। इसमें कोई संशय नहीं है।

And by Bṛhaspati.

So Bṛhaspati : "A violent crime, immovable property, a deposit and a previous partition among co-heirs, may be ascertained by presumptive proof, if there be neither writing nor witnesses. The exertion of force, a blow, or the plunder, may be evidence of a violent crime; possession of the land may be proof of property; and separate wealth is an argument of partition. They, who have their income, expenditure and wealth distinct, and have mutual transactions of money-lending and traffic, are undoubtedly separate."

एको भ्राता ददाति, अपरश्च गृह्णाति गृहादिकम्, आय-व्ययस्थितिश्च पृथक्-पृथक् एकेन ऋणादिषु क्रियमाणेषु, अपरश्च साक्षी प्रतिभूर्वा क्रियते, परस्परं वा ऋणादिक-व्यवहारः, एको यत् किञ्चिद् द्रव्यमन्यतः क्रीत्वा वाणिज्यार्थं भ्रातरि विक्रीणीते। एवमादिका एकैकापि क्रिया परस्परं

विभक्तानामेव सम्भवति, तया विभागानुमानं धीमद्भिरनु-सन्धेयमिति।।9।।

इन भाइयों में से एक भाई देता है, दूसरा भाई गृहादि को ग्रहण करता है, आय-व्यय का अलग-अलग होना, एक के द्वारा ऋणादि की क्रिया करना (अर्थात् ऋण लेना), दूसरे के साक्षी या प्रतिभू होना आपस में ऋणादि का व्यवहार दिखाई देना, एक भाई कुछ द्रव्य किसी दूसरे से खरीदकर व्यापार करने के लिए भाई को बेच देता है। इस प्रकार एक-एक क्रिया परस्पर विभक्त भाइयों में ही सम्भव है। अत: अनुमान से भी विभाजन का निर्णय होता है—ऐसा विद्वानों के द्वारा समझा गया है।

Interpretation of the text.

One brother gives and another accepts, or they have sepa-
eir income and expenditure (of
rate; or when a loan or other af-
nother is made witness to it, or
e mutual transactions of money-
having bought certain goods from
traffic to his brother; in these and
ny such act can only take place
a presumption of partition is de-
duced from it by the intelligent.

न च येषामेताः क्रिया इत्येतच्छब्देन बह्वीनामुपादानात् मिलितानामेव गमकत्वं वाच्यम्, न्यायमूलत्वात् वचनानाम्। एकैकत्रापि च तारतम्य विशेषाविशेषात्।।10।।

इन वचनों में बहुवचन के प्रयोग से यह नहीं समझना चाहिए कि जिनमें यह सब क्रियाएँ हों वही पृथक् होंगे परन्तु एक-एक क्रिया भी यदि भाइयों में दिखलाई पड़े तो पृथक् समझा जाता है।

Any one of the stated proofs is sufficient.

It is not to be concluded from the use of the plural number in the phrase "by whom such matters are transacted" (see 7), that the concurrence of all those circumstances is required. For these texts are founded on reason; and the reason is equally applicable in every several instance.

न स्यातां पत्रसाक्षिणांर्वित्यनेन पत्रसाक्षिणोरभावे अनुमानमनुसर- णीयमित्युक्तम्।।11।।

इस प्रकार लेख्य (लिखित) अथवा साक्ष्य प्रमाण न होने पर अनुमान का ही अनुसरण करना चाहिए–यही युक्तिसंगत है।

Presumptive proof is admitted for want of direct evidence.

By saying "if there be neither writing nor witnesses", (see 8) it is intimated, that presumptive proof is to be admitted only in default of written and oral evidence.

इति पारिभद्रीयमहामहोपाध्यायश्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे वृत्तविभागसन्देहनिर्णयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः।

पञ्चदशोऽध्यायः

आचार्यगौरवपराहतदायभाग–
तत्त्वप्रबोधजनरञ्जनमत्र शक्यम्।
किन्तु प्रमाणपरतन्त्रधियां मुनीनाम्
संवादमात्रकृतये कृतिनः प्रयत्नः॥1॥

क्लिष्ट विषयों का संग्रह रूप दायभाग, आचार्य जीमूतवाहन के गौरव से परास्त हुआ अर्थात् इसके विषयवस्तु को अपनी महानता से आचार्य प्रवर ने आच्छादित किया है। लोगों को मनोरंजन कराते हुए आचार्य प्रवर ने दायभाग के तात्विक अर्थों को समझाने का प्रयत्न किया है किन्तु मुनियों की बुद्धि प्रमाण (वेदादिशास्त्र) के अधीन होती है। अतः संवाद के रूप में इस कृति को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

Gratification cannot be afforded in this work, to those whose comprehension of the principles of the law of inheritance is impeded by submission to the authority of teachers : but the author's labour has been devoted to reconcile the doctrines of sages whose intellect was governed by evidence (of holy writ).

बहुविधपूर्वनिबन्धृ–व्याख्यासञ्जातसंशयस्यैतत्।
जीमूतवाहनकृतं प्रकरणमुपपत्तये ध्येयम्॥2॥

पूर्व के बहुत से निबन्धकारों की व्याख्या में संशय उत्पन्न होने पर इस प्रकरण (ग्रन्थ) की रचना करना आचार्य जीमूतवाहन का लक्ष्य है।

This treatise, composed by Jīmūta-Vāharna, should be considered as adapted to clear the doubts which arise from the various interpretations of preceding authors.

परिभद्रकुलोद्भूतः श्रीमान् जीमूतवाहनः।
दायभागं चकारेमं विदुषां संशयच्छिदे॥3॥

परिभद्र कुल में उत्पन्न श्रीमान् जीमूतवाहन ने विद्वानों के संशय को दूर करने के लिए दायभाग की रचना की।

Thus, in the Daramaratna, or gem of the law, composed by the great doctor the fortunate Jīmūta-Vāhana, the Dāya-Bhāga, or Law of Inheritance, is finished.

इति पारिभद्रीयमहामहोपाध्याय–
श्रीजीमूतवाहनस्य कृतौ धर्मरत्ने दायभागे पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः।

॥ दायभागस्समाप्तः ॥



श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-110016